चतुर्वेदविदग्निहोत्रि-

मद्रामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहोदयानाम्

स्मृतिग्रन्थः

श्रीवेदमूर्तिरटाटेस्मृतिग्रंथप्रकाशनसमितिः

वाराणसी

आदरणीया पं. कु. प्रज्ञा देवी को
समिति की ओर से
सस्नेह भेंट।
हरीराम चन्द्र आठवले
२.९.६९.
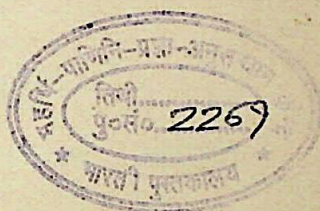
चतुर्वेदविदग्निहोत्रि—

श्रीमद्रामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहोदयानाम्

स्मृतिग्रन्थः

संरक्षक :

डा० आदित्यनाथझा

उप-राज्यपाल : (दिल्लीप्रदेशः)

प्रधानसम्पादकः

श्रीमदनन्तशास्त्री फडके

भू० पू० पुराणेतिहासविभागाध्यक्ष :

वा० सं० वि० वि० वाराणसी

सम्पादकः (हिन्दी विभाग) :—

डा० श्रीविलास गुप्त

प्रकाशकः

वेदमूर्तिरटाटेस्मृति-ग्रन्थप्रकाशनसमितिः वाराणसी

मुद्रक :

नरेन्द्रकुमारप्राणलाल आचार्यः

आचार्यमुद्रणालयः

कर्णघण्टा, वाराणसी १

स्मृति-ग्रन्थसंरक्षका:
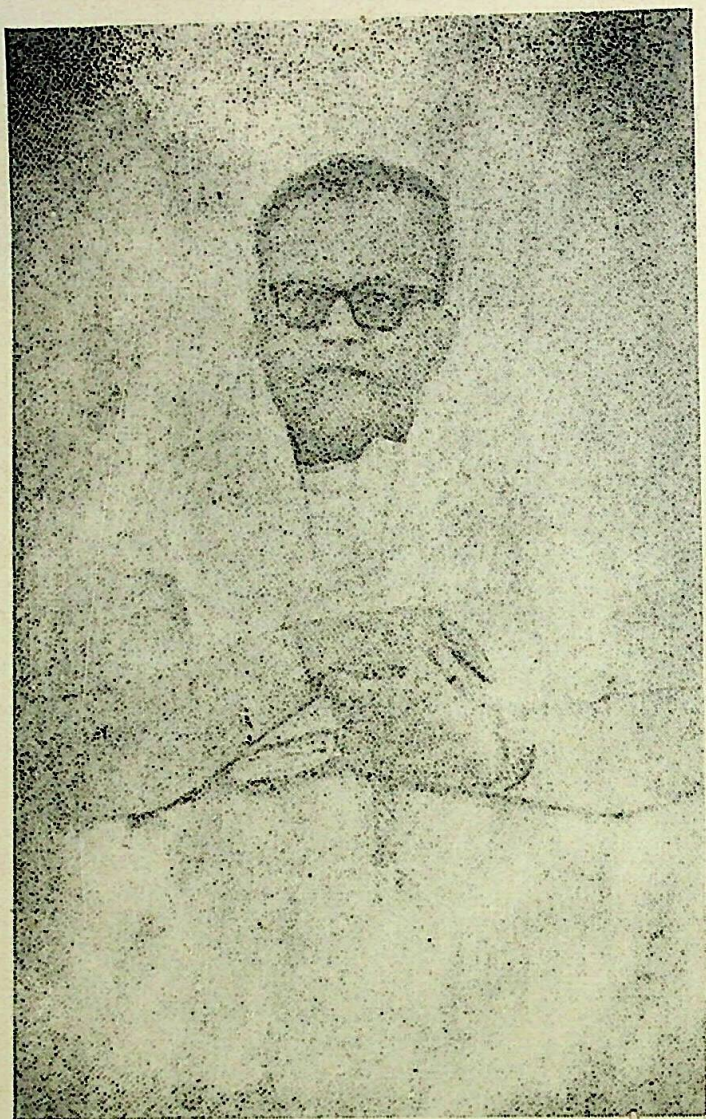
महामहिमशालिन: श्रीमन्तो डॉ० आदित्यनाथझा महोदया:,
आई० सी० एस०
उप राज्यपाला: (देहली)

मैं सभी व्यक्तियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने लेख, स्मृति तथा अन्य प्रकार के संस्मरण हिन्दी में भेजकर इस ग्रन्थ के चयन में असीम सहयोग प्रदान किया है। कुछ लोगों के लेख अथवा संस्मरण स्थानाभाव के कारण अप्रकाशित रह गए हैं जिसका मुझे हार्दिक खेद है परन्तु उन सभी का मन्तव्य किसी न किसी लेख में साकार अवश्य है। आशा है भविष्य में समिति को उन महानुभावों का जो रटाटे जी के समकालीन थे अथवा सन्निकट थे अथवा जिन्हें किंचित सम्पर्क एवं सहयोग मिला (समिति जिनसे सम्पर्क स्थापित न कर सका) वे अपना संस्मरण—लेख अवश्य समिति को भेजने की महती कृपा करेंगे जिससे रटाटे स्मृतिग्रन्थ का "परिशिष्ट" प्रकाशन भविष्य में उनके बन्धुत्व एवं सहयोग से किया जा सकेगा।

आचार्य मुद्रणालय के व्यवस्थापक श्री नरेन्द्र कुमार आचार्य ने जिस लगन एवं उत्साह से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना सहयोग प्रदान किया उसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन में विविध कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिससे ग्रंथ सम्पादन प्रारम्भिक कुछ मास तक स्थगित प्राय सा था परन्तु डा० आदित्यनाथ झा महोदय की प्रेरणा एवं पूर्ण आर्थिक सहयोग के फलस्वरूप ही कार्य में गति आई और स्मृति-ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक पं०श्रीमदनंतशास्त्री फड़के जी ने समयाभाव रहते हुए भी अपना यथेष्ट समय देकर इस ग्रंथ का प्रारूप तैयार किया और प्रकाशन का कार्य पूर्ण तत्परता से प्रारम्भ किया परन्तु मुद्रण यन्त्र निमित्तक मनुष्य सुलभ अशुद्धियाँ संभावित हैं अतः विज्ञपाठक क्षमा करेंगे।

वाराणसी — श्रीविलास गुप्त

मई १०—४—६९ — सम्पादक (हिन्दी विभाग)

शुभकामनाएँ

राष्ट्रपति सचिवालय,

राष्ट्रपति भवन,

नई दिल्ली-४

दिसम्बर२, १९६८

पत्रावली सं० १८ (२)—हि। ६८

अग्रहायण ११, १८९० (शक)

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम भेजे दिनांक १९ नवम्बर, १९६८ के आप के पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री रामचन्द्र शास्त्री जी की स्मृति में एक स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन का आयोजन किया जा रहा है।

शुभकामनाओं सहित,

भवदीय,

खेमराज गुप्त

राष्ट्रपति के अपर निजी सचिव

उप राष्ट्रपति, भारत

नई दिल्ली

प्रिय महोदय,

आपका पत्र दिनांक २ अगस्त, १९६८ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आप वेदमूर्ति रटाटे जी के संमानार्थ एक "स्मृति-ग्रंथ" प्रकाशित करने जा रहे हैं।

मैं "स्मृति-ग्रंथ" की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं भेजता हूँ।

आपका

वी० वी० गिरि

राज्यपाल सचिवालय
उत्तर प्रदेश

महोदय,

आपके पत्र दिनांक १९ नवम्बर १९६८ के सन्दर्भ में मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि श्री राज्यपाल महोदय को यह जानकर हर्ष है कि रटाटे स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति वाराणसी ने वेदमूर्ति रटाटेजी की स्मृति में एक ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

उक्त ग्रन्थ की सफलता के लिए श्री राज्यपाल महोदय अपनी शुभ कामनायें भेजते हैं।

भवदीय
सत्यनारायण श्रीवास्तव
सहायक सचिव,
कृते सचिव श्री राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

डा० सम्पूर्णानन्द

काशी विद्यापीठ,
वाराणसी २।
दिनांक दिसम्बर १९,१९६७ ई०

प्रिय महोदय—

मुझे आपका १६ तारीख का पत्र मिला। उससे यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि किन्हीं कारणों से आप के प्रयत्न करने पर मुझसे आपकी भेंट न हो सकी। वे० मू० रटाटे जी वेद विषय के इनेगिने विद्वानों में थे और मेरे ऊपर उनकी कृपा थी। आपको यदि सायंकाल सुविधा हो तो किसी दिन भी आ सकते हैं। यदि सवेरे अधिक सुविधा रहती हो तो सवेरे भी लगभग दस बजे के आ सकते हैं। आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

आपका
सम्पूर्णानन्द

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रतिष्ठितश्रीकाञ्ची-कामकोटिपीठाधिपजगद्गुरुश्रीमच्चन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीश्रीपादादेशानुसारेण श्रीमज्जयेन्द्रसरस्वतीश्रीपादैः क्रियते नारायणस्मृतिः ।

रटाटे रामचन्द्राग्निहोत्रिसंस्मरणार्थकः ।
प्रबन्धो जीयतां विद्वत्समाजनसभाजितः ॥

नारायणस्मृतिः

अनन्तश्रीविभूषितज्योतिष्पीठाधीश्वरजगद्गुरुशङ्कराचार्य-स्वामिश्रीमत्कृष्णबोधाश्रममहाराजाः

ज्योतिर्मठः, बदरिकाश्रमः

आनन्दमङ्गलाभिलाषिणः श्रीमन्तः

बहु प्रमोदमावहति श्री रटाटेस्मृति-ग्रन्थ-प्रकाशन-संकल्पवतां विपश्चितां साधीयान् चारु-विचार-प्रचारः । कृते च प्रति कर्तव्यमेष धर्मः सनातनः इति पौराणी-मुक्तिमुररीकृत्य को नाम सचेता यो वैदिक-साहित्य-सेवा-जुषां विदुषामवदात-कर्माणि स्मृतिपथं नाधास्यति । अहर्निशं वैदिकस्वाध्यायाध्यापनाध्ययनपरायणानां स्वनाम-धन्यानां रटाटेमहाभागानां वेदसाधनां स्मारं स्मारं चित्रीयते नश्चेतसि तेषां स्वभाव-शान्त-मूर्तिः । किमिव कलयामस्तेषां त्रयी-सम्बन्धिनीं सेवाम् । आशा-स्महे यत्तन्निमित्तकेनानेन कर्मणा भगवान् भूतनाथः प्रसादमेष्यतीति । प्रकाशन-समितेरयं प्रयासः सानन्दं सफलतामादधत् वेदमूर्तेस्तस्य विदुषस्तोषपात्रं भविष्य-तीति विश्वसिमि ।

श्रीमज्जद्गुरूणामादेशेन
भवदीय—
आचार्यश्यामलालशर्मा,
एम० ए०

अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरुशंकराचार्यश्रीनिरञ्जनदेवतीर्थमहाराजाः

श्रीगोवर्धनमठः पुरी

चतुर्वेदनिष्णातानां संप्रति विश्वनाथसायुज्यसंप्राप्तानां श्रीरामचन्द्रशास्त्रि-रटाटेमहोदयानां पूर्वाश्रमस्थे मयि यो महानुपकारभारः समजनि तमधुनापि गोवर्धन-पीठाधिष्ठिता वयं न विस्मरामः ।

श्रीविश्वनाथसायुज्यसंप्राप्तानां श्रीरामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहोदयानां समये श्रौत-स्मार्तादिषु निष्णातास्ते एवासन्। पुनश्चास्मिन् समये तत्सदृशाः प्रादुर्भवेयुरिति दुष्करमेव प्रतिभाति। तत्स्मृतिग्रन्थः प्रकाशमेष्यतीति सर्वथा सर्वप्रकारेणाभिनन्द-नीयमेव। यदि समय उपलभ्येत तर्हि तत्स्मरणान्यन्यान्यपि लिखिष्यामः। नोचेदिद-मेव प्रकाश्यतामिति।

निवेदयते—

श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थः

अ० श्री० वि० जगद्गुरुश्रीशंकराचार्यमेरुपीठाधीश्वराः

स्वामिश्रीमहेश्वरानन्दमहाराजाः

वाराणसी

विद्वद्वरेण्यरमणीयगुणार्णवश्रीः
श्रीरामचन्द्रविबुधेन्द्रगणाभिनन्द्यः।
दिव्याग्निहोत्रपरिपूतवरो रटाटे-
वंशावतंसनिगमागमसार्वभौमः ॥ १ ॥

नृत्यन्ति यत्र महिते महिमोन्महार्हे
वेदाश्चतुष्टयवितुष्टिभराः प्रमत्ताः।
अष्टौ तथा विकृतयः सखितां दधानाः
खेलन्ति वल्लिवलया इव मोदमानाः ॥ २ ॥

वाराणसीसुरगिरामधिवासभूमौ
विद्यालये भरतभूमियशोविभूतौ।
श्रौतप्रतिष्ठिततमाध्ययनं णिजर्थैः
संभूषयन् विरुरुचे बुधमान्यमान्यः ॥ ३ ॥

गायन्ति यस्य किल कीर्त्तिकलां ललामां
वेदज्ञवन्द्यविबुधाः प्रतिवीथिकाश्याम्।
प्रत्यक्षवेद इव यो विबभास एक-
स्तस्मै विपश्चिदसमाय शुभाशिषः स्युः ॥ ४ ॥

श्रीसंस्थान-गोकर्ण-पर्तगाली-जीवोत्तम-मठः पर्तगाली-गोमन्तकः,

काश्यां समागतानामस्माकं कर्णपथे इदमायातम्, यद् वेदमूर्तीनां संप्रति दिवंगतानामाहिताग्नीनां श्रीरामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहोदयानां पुण्यस्मृत्यर्थं स्मृतिग्रन्थः प्रकाशमेष्यतीति। अयं परमसंतोषस्य विषयः। वेदानां समुत्कर्षार्थं तत्र प्राप्त-विशिष्टकीर्तीनां स्मृतिग्रन्थप्रकाशनमिदं समुचितमित्यस्माकं सुदृढो विश्वासः। अत इदं कार्यं साफल्यं भजताम्, तेन च वेदाध्ययनशीलानां कल्याणं भवत्विति श्रीपरमेश्वरं संप्रार्थ्य सर्वेभ्य आशीर्वादं प्रदध्मः।

श्रीद्वारिकानाथतीर्थः
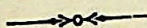
श्री १००८ मन्तः श्रीस्वामिकरपात्रिपादाः

स्वस्ति श्रीमतामधीतर्ग्वेदानां समुपासितयजुषामभ्यस्तसाम्नां गृहीताथर्वणां घनान्तवेदपाठिनां श्रौतस्मार्तोभयकर्मकाण्डविधिनिष्णातानां विद्वद्गोष्ठ्यग्रणीनां द्वात्रिंशद्वर्षं यावदाहिताग्नीनां साम्प्रतं केवलं यशःशरीरेण विदुषां मनोभूमिषु वर्तमानानां श्रीरामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहाभागानां स्मृतिग्रन्थप्रकाशनं कस्यास्तिकस्य सचेतसो न मनोमोदावहम्। वर्णाश्रमानुसारि-श्रौत-स्मार्त-मार्गमालम्ब्य वेदशास्त्रा-भ्यासपूर्वकं विद्यामधिगम्य वैदिकमार्गाचरणेन तत्प्रतिष्ठापनार्थं प्रयतितमास्तिकैर्महा-नुभावैः। एष एवैतेभ्यो वितीर्णः श्रद्धाञ्जलिरिति शम्।

श्रीमतां श्रीस्वामिकरपात्रिपादानामाज्ञावशवर्ती
मार्कण्डेयः

आश्विनकृष्णप्रतिपद् सं० २०२५
धर्मसंघः, दुर्गाकुण्डम्, वाराणसी—५
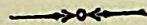
सरसंघचालक मा० स० गोलवलकर

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, केंद्र-नागपुर

आदरणीय

सादर वन्दे आपका दि० १५-२-६९ ई० का पत्र कल दि० ३-३-६९ को प्राप्त हुआ, इसके कुछ मास पूर्व वेदमूर्ति श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे स्मृतिग्रंथ प्रकाशित करने की योजना की सूचना मुझे मिलि थी। किन्तु अविरत प्रवास तथा अन्यान्य

कार्य में व्यस्त रहने के कारण मैं कुछ लिखकर भेज नहीं सका जिस त्रुटि के लिए मैं आप सब महानुभावों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

अब ग्रंथ पूर्ण रूप से प्रकाशित होने का समय निकट आ रहा है। ग्रन्थ सर्वांग पूर्ण होगा इसमें संदेह नहीं है। श्रेष्ठ विद्वद्वर इसकी निर्मिति में जुटे होने से यह ग्रंथ वेदों के संबंध में सांगोपांग ज्ञान देने वाला, वेदों के प्रति उत्कट श्रद्धा जगाने वाला एवं जिन महापुरुषों ने ऐहिक मोह त्याग कर वेदाध्ययन की परंपरा अखंडित रक्खी है उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक असीम आदर जागृत करने वाला सिद्ध होगा, यह स्पष्ट है। आपका विस्मृतप्राय धर्मजीवन तथा राष्ट्र भाव का पुनर्जागरण करने वाला यह सत्प्रयास सफल होगा ही। जिसके निःश्वसित वेद हैं उसका कृपानुग्रह इस ग्रंथ को संपूर्ण समाजमें अत्यन्त आदर का स्थान प्राप्त करा देगा यह मेरा विश्वास है।

विश्वलीलाचालक जगन्नियंताके चरणकमलों में मेरी यही प्रार्थना है। इतिशम्

विनीत,

मा० स० गोलवलकर.

पूज्यपाद अवधूत भगवान् रामजी

श्रीसर्वेश्वरीसमूह

प्रधान कार्यालय
'पो० कुष्ठ आश्रम'
वाराणसी।
दिनाङ्क ३१-१२-६८

वेदमूर्ति रटाटे स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन समिति।

प्रिय रटाटे जी, मुझे यह जानकार प्रसन्नता हुई कि आप लोग स्वर्गीय रटाटे जी के निमित्त एक स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं। रटाटे जी मेरे बहुत निकट सम्पर्क में रह चुके हैं।

स्वर्गीय रटाटे जी केवल वेद के उच्चकोटि के विद्वान् ही नहीं थे, वे तन्त्र के भी अच्छे ज्ञाता एवं साधक थे। उनकी उपासना में यह अद्भुत समन्वय था। श्री रटाटे जी रूढिगत मान्यताओं के परे थे। उनकी स्मृति में निकल रहे ग्रन्थ को सफलता को कामना करता हूँ।

सस्नेह भगवान् राम.

पं० श्रीकुबेरनाथशुक्लः

भू० पू० प्रस्तोता वा० सं० वि० वि०, एवं अन्य शिक्षाविभागाधिकारी ।

स्वनामधन्या वैदिकशिरोमणयः श्रीपं० रामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहोदयाः काशीस्थ-वदिकेषु मूर्धन्यं स्थानमलंकुर्वाणाः आसन् । एभिः सार्द्धं मम चिरकालपर्यन्तमतीव सान्द्रः सम्बन्ध आसीत् । यदाहं वाराणस्यां राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालये वाराण-सेय-संस्कृत-विश्वविद्यालये च प्रस्तोतृपदे कार्यं कुर्वन्नासम्, विविधेषु अवसरेषु, विभिन्नेषु आयोजनेषु, विद्वद्गोष्ठीषु, विद्वत्सम्मेलनेषु च श्रीरटाटेमहोदयानाम् अद्भुतं वैदिक-पाण्डित्यं दृष्ट्वा तद्गुणगणाकृष्टचेताः तेषां प्रशंसकः समभवम् ।

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वोपकुलपतिना श्रीमता आदित्यनाथ-झामहोदयेन इमे सम्मानित-प्राध्यापकत्वप्रदानेन समादृताः ।

काश्यां केन्द्रीयप्रशासन-प्रदेशीयशासनविभिन्नविश्वविद्यालयप्रतिनिधिरूपेण समागताः अनेके विशिष्टा महानुभावाः विदेशेभ्यः समागताः संस्कृतानुरागिणो विद्वाँसश्च काशीस्थविदुषां वेदपाठं श्रोतुकामाः श्रीमतां रटाटेमहोदयानामद्भुतं वेदपाठं श्रुत्वा चमत्कृतचेतस्काः आनन्दाब्धौ निमग्ना एतेषां प्रशंसकाः समभवन् ।

शीलसदाचारसौजन्यमूर्तयः सरलचेतस्काः वपुषा, वेषेण, कान्त्या च आदर्शभूता वेदमूर्तयः श्रीरटाटेमहोदयाः स्वीयेन पाण्डित्येन, गुणगणैश्च विद्वत्सु अमरभूताः सदैव स्थास्यन्तीति दृढं विश्वसिति ।

श्रीकुबेरनाथशुक्लः

विषय-सूची

सौ० सीताबाई रटाटे वे० मू० रामचन्द्रशास्त्री च

चतुर्वेदेषु निष्णातो रामचन्द्रो बुधोत्तमः ।
आहिताग्निः सपत्नीको संकल्पार्थं समुद्यतः ॥

चतुर्वेदविच्छ्रीरटाटेस्मृतिग्रन्थः

श्रुतिततिरतिरासीद्रामचन्द्रो रटाटे

स्मर्ता

योगी नरहरिनाथः शास्त्री,

विद्यालङ्कारः, कविरत्नम्, सरस्वतीस्नातकः,

गोरक्षराष्ट्रनेपालसिद्धाश्चाचलमृगस्थलीगोरक्षनाथपीठनिष्ठः ।

महाराष्ट्र-कोङ्कणस्थ-कायग्राम-टुकेकरः ।
मराठेतो रटाटे च काशीमागात् सुधीरसौ ॥ १ ॥
श्रीविनायकशास्त्रीति पौराणिककुलोद्भवः ।
श्रीकृष्णस्तस्य पुत्रोऽभूद्रामचन्द्रस्ततोऽभवत् ॥ २ ॥
रामचन्द्रस्य पुत्राश्च चत्वारो वेदसम्मिताः ।
ढुण्ढिराजोऽभवज्ज्येष्ठो मध्यो नारायणोऽभवत् ॥ ३ ॥
विनायकस्ततस्तुर्यः श्रीकृष्णः पूर्वनामधृक् ।
इतः शताब्दीपूर्वं हि काश्यामाश्रयदायकः ॥ ४ ॥
शिवराजामात्यवर्गे प्रख्यातः पन्तपेशवः ।
अमृतरावनामासौ स्वनामगणनायकः ॥ ५ ॥
गणेशघट्टे गङ्गायाः, तथा पोतनवीसके ।
वैट्ठले मन्दिरे दुर्गाघट्टे, रामस्य जन्म च ॥ ६ ॥
शाके अङ्गाङ्कर्षिचन्द्रे गृहविद्यालये स्थितः ।
मौञ्जीबन्धात् पूर्वमेव शिक्षां ज्यौतिषमेव च ॥ ७ ॥
अष्टाध्यायीमथो छन्दो रघुवंशमतन्द्रितः ।
पञ्चसर्गात्मकं कण्ठेऽधारयद् धारणान्वितः ॥ ८ ॥
उपनीतौ पृच्छ्यमाने वेदाध्ययनमादृतः ।
सुप्रतिष्ठान् समालोक्य वैदिकान् मधुरप्रियः ॥ ९ ॥
पौराणिककुले जातो वैदिकत्वमविन्दत ।
बालदीक्षितकाले च ऋचामध्यापको गुरुः ॥ १० ॥

नित्यानन्दः पर्वतीयो यजुषामभिभावकः ।
बालशास्त्री बापटोऽसौ साम्नामध्यापको बुधः ॥ ११ ॥
गुरुश्च शाक्तदीक्षाया योगादीनां निदेशकः ।
गणेशभट्टमार्तण्डो गुरुरासीदथर्वणाम् ॥ १२ ॥
तथा थत्थेऽभिधोऽयोध्यावासी न्यासी च देशिकः ।
चतुर्ष्वपि च वेदेषु रामचन्द्रस्य योग्यता ॥ १३ ॥
कृष्णगोदुग्धपानेन सार्थवाणीविशेषता ।
दिवं पितरि याते तु पाताऽभूच्छिष्यवत्सलः ॥ १४ ॥
नित्यानन्दः पर्वतीयः, स मेने पितरं च तम् ।
अयोध्याधीशसौधे च वेदानश्रावयद् बुधः ॥ १५ ॥
चतुरः पञ्च वर्षाणि पुनः काशीमुपागतः ।
साङ्गवेदः, साङ्गवेदविद्यालयमवर्धयत् ॥ १६ ॥
अथर्वाध्यापनैरिद्धैः सार्धवर्षमकुण्ठितः ।
काशीस्थे दरभङ्गाया विद्यालय उदारधीः ॥ १७ ॥
दरभङ्गानरेशेन नियुक्तोऽध्यापने वशी ।
श्रीरामेश्वरसिंहेन विद्याविनयशालिना ॥ १८ ॥
द्वात्रिंशदब्दपर्यन्तमथर्वाध्यापकोऽपि सन् ।
अन्ते सप्ताब्दपर्यन्तमृचामध्यापकोऽप्यभूत् ॥ १९ ॥
वार्धक्ये वसता गेहे वेदगौरवदक्षिणा ।
सम्मानिताध्यापकस्य द्वे शते प्रापि दक्षिणा ॥ २० ॥
विश्वविद्यालयादस्मात्तेन वाराणसेयतः ।
सप्ताब्दानष्टमूर्तिस्थो ज्योतिष्टोमास्थया स्थितः ॥ २१ ॥
द्वात्रिंशद्वर्षपर्यन्तं श्रौताधानविधानतः ।
संयुतः सहधर्मिण्या पुत्रपौत्रादिभिः सह ॥ २२ ॥
विप्रानशीतिसाहस्रान् स्वगृहेऽभोजयत् कृती ।
दीयतां भोज्यतां वाक्यमाहिताग्नेरभून्मुखे ॥ २३ ॥
श्रीपाददामोदरतो लेभे सातवलेकरात् ।
शोधनेऽथर्वणां काश्यां रामः सम्मानमागतात् ॥ २४ ॥
गोरक्षराष्ट्रनेपालप्रधानस्य च मन्त्रिणः ।
कोट्याहुतिमहायज्ञे चन्द्रशंसेरवर्मणः ॥ २५ ॥
चन्द्रबालकुमार्याश्च हेमराजनिमन्त्रितः ।
काश्यां भूलनपुर्यां हि सोऽथर्वणि विचक्षणः ॥ २६ ॥

अथर्वणां व्यधात् कृत्यं यजमानादितोषणम् ।
क्रतौ श्रुत्वा श्रुतौ दाक्ष्यं हेमराजः स्वमात्मजम् ॥ २७ ॥
साम्नां राणायनीं शाखामध्येतुं तस्य सन्निधौ ।
प्रेषयामास दत्त्वा च भूयसीं दक्षिणामपि ॥ २८ ॥
विद्याव्यसनिना तेन प्रारब्धा कौमुदी मुदा ।
अशीतिवर्षवयसा श्रीकृष्णस्य गुरोर्मुखात् ॥ २९ ॥
कण्ठविद्यापक्षपाती लेखनाभ्यासवर्जितः ।
द्वेषी प्रमाण-पत्राणां गुणानां ग्रहिलो भृशम् ॥ ३० ॥
गोसेवायां सदा सक्तो वेदाध्ययनतत्परः ।
निर्दिशन् वैदिकं धर्मं शिष्यवर्गे विशेषतः ॥ ३१ ॥
वैदिकानामभून्मान्यः कर्मकाण्डे प्रकाण्डधीः ।
याचनावृत्तिविरतो निरतो दानकर्मणि ॥ ३२ ॥
पौराणिककथास्थोऽपि मन्त्रब्राह्मणतन्त्रवित् ।
सौजन्येन च सौशील्यात् स्वजनान् सुजनानपि ॥ ३३ ॥
उन्ममज्ज स सायुज्यान्मज्जयन् शोकसागरे ।
विश्वनाथे विश्वनाथे रामचन्द्रः स वैदिकः ॥ ३४ ॥
द्वानवत्यब्दवयसि काश्यां गङ्गातटे सुखम् ।
तस्य स्मृतौ किञ्चिदुक्तं दुरुक्तं शोध्यतां बुधैः ॥ ३५ ॥
क्रतु-कृतिकृतिमध्ये सुप्रसिद्धो बुधोऽसौ
"श्रुतिततिरतिरासीद्रामचन्द्रो रटाटे" ।
अथ नरहरिनाथः प्रार्थये विश्वनाथं
श्रुतिषु भवतु भक्तिः शासकानां जनानाम् ॥ ३६ ॥

शाके १८९० शुचौ सिते नवम्याम् ।

सांम्प्रतिका ब्राह्मणाः, वेदविद्या च ।

अनन्तश्रीविभूषितज्योतिष्पीठाधीश्वर–

जगद्गुरुशङ्कराचार्यस्वामिश्रीकृष्णबोधाश्रममहाराजाः ।

ज्योतिर्मठः, वदरिकाश्रमः ।

विदितचरमेतत् भवताम्, यद् भगवतः श्रीमन्नारायणस्यादिपुरुषस्य नाभि-कमलोद्भवेन चतुर्मुखेन ब्रह्मणा त्रयीं विद्यां नारायणेनोपदिष्टां संस्मारं संस्मारमृषिभ्यः स प्रादायि। सत्स्वपि चतुर्षु वेदेषु तेषां त्रयीसंज्ञा ऋग्यजुःसामभिः निर्णीयते। अतः– "सैषा वाक् त्रेधा विहिता ऋचो यजूंषि सामानि च" इत्यादिवचोभिर्वेदानां त्रयीत्वं यत्र तत्र ब्राह्मणग्रन्थस्मृतिप्रभृतिषूपलब्धुं शक्यते, अन्यत्रापि—तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुःशब्द इति। एवंत्वेऽपि चतुर्थ-वेदस्याथर्वणोऽपि वेदत्वं न विहन्यते। यथा ऋग्यजुःसाम्नां मन्त्राणामन्यत्रान्यत्र विद्यमानानां तेषां तत्त्वमबाधितम्, तथैवाथर्ववेदस्यापि शौनकादिशाखाभेदेनाथर्व-वेदत्वं सुरक्षितमस्ति। अत एव "चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो-थर्वाङ्गिरसः"

एषां चतुर्णां वेदानां महत्त्वमपि सम्यगुपलभ्यते, मनुस्मृतौ हि—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भविष्यं भव्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥

ब्राह्मणादिचातुर्वर्ण्यस्य, ब्रह्मचर्यादिचतुराश्रमकदम्बकस्य च निखिला अपि कार्यकलापाः वेदेभ्य एव सम्पादिताः सन्ति। तत्रैव—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयश्च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥

विद्योतन्ते वेदा एव देवपितृमानवानां सनातनचक्षूंषि, नैतेषामाकलयितुं शक्नोति कश्चनापि परिमाणपरिधिम्।

तस्मादिमे परमपुरुषार्थसाधनहेतवः परमनिःश्रेयससाधकाश्च द्विजातीनामिति निर्विवादम्। शिवात्मकैरेभिरध्ययनाध्यापनादिकर्मकलापैः शिवत्वमाप्नोति पुमान्। अतो वेदशास्त्राभ्यासशालिनां ब्रह्मोचित-कर्म-जुषां विदुषां न स्पृशन्ति महापातक-

राशयोऽपि जातुचित् कमलदलमिव तोयराशयः। अत एव 'ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञेयश्च' इति पातञ्जले महाभाष्ये श्रूयते। स्मृत्यादिष्वपि—

वेदमेव सदाभ्यस्येत् तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥

इति वेदस्यैव तपःपुरस्सरं गृहीतिरुच्यते ब्राह्मणानां कृते, वेदानभ्यासपुरस्सरमन्यसदसच्छास्त्राणाभ्यासवतां श्रमिणां प्रत्युत निन्दापि श्रूयते, तथाहि

वेदाभ्यासविहीनस्य शास्त्राभ्यासरतस्य च।
न तस्य वचनं ग्राह्यम्……… ॥

न स ब्राह्मण उपदेष्टुमर्हति यो हि वेदानतिक्रम्यान्येषु केषुचिच्छास्त्रेषु कालक्षेपं विदधाति। न केवलं गर्हणीयः सः, प्रत्युत सान्वयः शूद्रत्वं गच्छति जीवन्नेव यो वेदमपहायान्यत्राचरति श्रमम्। इत्थं सर्वशास्त्रसिद्धान्तसिद्धं वेदस्योपादेयत्वं ब्राह्मणानां सर्वशास्त्रसम्मतम्।

परमाधुनिकैर्ब्राह्मणैर्न केवलं वेदस्य परित्याग एवाकारि, अपि तु तदुपदेशविपरीताचरणेन स्वशिशवोऽपि तथा कृताः, यथा वेदशब्दादपि समुद्विजन्ते। कतिपये पण्डिताः संस्कृताभ्यासजुषोऽपि वेदाङ्गैरेव तोषमापन्ना न वेदस्वाध्यायदत्तादराः दरीदृश्यन्ते। तेषामपि संख्या नातीवोपलभ्यते। भौतिक-विज्ञानचमत्कारखिलीभूतमस्तिष्काः, "तस्मात् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै" इत्यादिमहर्षिवाक्यान्यपि विस्मरन्तः, केवलं लोभ-मोह-मदिरामदान्धाः, स्वान् बालान् वेदं विस्मारयन्तः पाश्चात्यशिक्षासु दीक्षितान् विधाय न विदेशप्रेषणाद् द्राग् विरमन्ति। कथङ्कारं ते विद्वांस इह लोके परत्र च शर्मभाजो भविष्यन्तीति न विद्मः। येषां गृहेषु वेदस्यारवः सर्वा दिशः पूरयन्निव सर्वविधं श्रेयोजातमातेने, अद्य तत्रैव सो ए टि, कैट, आर ए टि, रैट, प्रभृतिशब्दाः श्रवणशष्कुलीः खण्डयन्तीवोपलभ्यन्ते। किं ते विपश्चितः परलोकविषयं न श्रद्दधति? किं सत्यापयन्ति यदयमेव लोको नास्ति पर इति? किमिव कथयामो यत्राग्रजानामीदृशी शोच्यावस्था, तत्रान्येषां वर्णाश्रमावलम्बिनां कृते नास्ति कथनस्यावसरः। अन्धीभूतचक्षुष्कस्य प्रतिपदं स्खलनं स्वाभाविकम्।

वेदाभ्यासेन सर्वमपि कामना-कदम्बकमनायासेन साधितं भवति, इति न केवलं वचोवैलक्षण्यमपि तु शास्त्रकारैः सम्यगभ्यस्यानुभूय च सध्रीचीनेन ज्ञानेनोट्टङ्कितम्—

यं यं कामं कामयते तं तं वेदेन साधयेत्। इति

साम्प्रतिकाः पाश्चात्यशिक्षाभ्यासान्धानुकरणेन परित्यक्तनित्यनैमित्तिककर्मकलापाः, नैकशो भ्रममूलतद्धारणाध्यासितस्वान्ताः, परित्यक्तकुलाचारविचाराः, नैक-

कष्टाकुला अपि द्विजा वास्तविकसुखपराङ्मुखाः सुखाभासाभ्यासमरुमरोचिसंप्रतारिता इतस्ततो बम्भ्रम्यमाणा लोचनगोचरतामागच्छन्ति । चातुर्वर्ण्यस्य मान्या अपि भूदेवा अनुपनीताश्छिन्नशिखाः समधीताङ्ग्लभाषाकतिपयाक्षराः स्वधर्मं संशयानाः केवलं धनोपार्जनदत्तादराः पूर्वजानृषीन् कुतर्कैराक्षिपन्ति । न च ते स्मरन्ति—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥

इति मनुवचनं विस्मरन्तो मृत्युमभिधावन्ति । भारतीय-संस्कृति-सभ्यतोपासकानां व्यथयन्ति च चेतांसि ।

तदेतस्मिन् विषयेऽत्र सर्वस्वभूतस्य धर्मब्रह्मप्रतिपादकस्य वेदस्याध्ययनाध्यापनयोस्तदुदितकर्मानुष्ठानस्य च प्रचुरः प्रचारः परमावश्यकः प्रतीयते शास्त्रदृष्ट्या । वेदप्रतिष्ठापितपथेन स्ववृत्तिं सम्पादयन्तो वेदप्रचारायैव वद्धपरिकरास्तपःपूतकलेवराः विप्रवर्णा जगतोऽन्धकारस्य विनाशाय सदाऽऽलोकभूता देदीप्यमानयशसोऽवतीर्यास्यां भूमौ—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

इति मनूक्तं सत्यापयन्तः कदा नेत्रगोचरीभविष्यन्तीति नः समीहितम् ।

किं भूयः उल्लिख्यते, साम्प्रतं ज्ञानवन्तोऽपि अज्ञानिन इव, विद्वान्सोऽपि मूर्खा इव, ज्ञातनिखिलतत्त्वा अपि मूकबधिरा इवोपलक्ष्यन्ते, वेदेषु वैदिकमार्गे च उदासते, एतत्सर्वं देशस्य दुर्भाग्यमेव ।

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः ॥

इति नीतिवचोऽपि व्यस्मारि । एतस्यां परिस्थितौ यदि वेदरक्षायै ब्राह्मणा एव न यतेरन् तदा कोऽन्यस्तेषां पूरयिष्यति कर्माणि ।

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥

इति मनूक्त्या स जायमान एव धर्मकोशस्य रक्षकः । यदि तेन स्वधर्मो नानुष्ठितस्तदा धर्मच्युतिरपि भविष्यति तस्य, अतो विप्रैर्वेदप्रचाराय वद्धपरिकरैर्भाव्यमिति परमावश्यकम् ।

अथर्ववेदः, तदध्ययनपरम्पराप्रसारश्च

अनन्तशास्त्रीफडके, वाराणसी।

जगति विद्यमानेषु ग्रन्थेषु भारतीयैः सुरक्षितं वेदजातं परमप्राचीनमस्तीत्यत्र न केऽपि विवदन्ते। अतस्तत् कदा प्रादुर्भूतं केन वा प्रणीतमिति विषये सुनिश्चितं न किमपि वक्तुं शक्यते। भारतीयास्तु श्रद्दधते वेदजातमनाद्यपौरुषेयं चेति। अनादि-शब्देन प्रारम्भसमयाभावः, अपौरुषेयपदेन पुरुषकर्तृकत्वाभावश्च बोध्यते, एवं चेश्वर-वन्नित्यं दोषरहितं स्वतः प्रमाणस्वरूपं चेति भारतीया विश्वसन्ति। अतिप्राचीनकालतः समायाते वेदजाते पाठभेदानामसम्भव आहिमालयमाकुमारीदेशम् इति त्वाश्चर्यं जनयति सुविचारकाणां चेतसि। अतो वेदरक्षकाणां ब्राह्मणानां महती प्रशंसा प्रतिष्ठा च प्राचीन-कालतः प्रचलति समुचिता च सा। तैस्तु पदक्रमादिदशविकृतिद्वारा महता प्रयत्नेन श्रद्धया नैकान् कष्टानूढ्वा च "ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इति वेदाज्ञा राजाज्ञेवाद्ययावत्परिपालिता। यत्र वेदस्याध्ययनपरम्परा प्रायो विलुप्ता क्वचित्स्थितापि, तथापि तत्र पाठभेदानां प्रवेशः समजनि। अनया पठनपाठनपरम्पराभावस्थित्या वेदानां पूर्वं विद्यमाना अनेकाः शाखा व्यलुम्पन्। भारते प्राचीनकालतः प्रणीतानां सर्वविषयकशास्त्राणां साक्षात्परम्परया वेद एव मूलत आश्रयभूतः। भारतीयाः श्रद्धा-लवो वेदेष्वेतद्विद्यत इति श्रुत्वैव ते विना शङ्काकलङ्कं कठिनादपि कठिनं कार्यं संपादयितुं प्रयतन्त इतीदृशी तेषां महती श्रद्धा।

वेदशब्दस्य मुख्योऽर्थो ज्ञानम्, परन्तु ज्ञानप्रदानां ग्रन्थानामपि वेदसंज्ञेति व्यव-हारः, वेदशब्देन मन्त्रभागोऽर्थात् संहिताभागः प्रोच्यते, यदा कदा मन्त्राणां विनियो-गादिबोधकानां ब्राह्मणग्रन्थानामपि वेदशब्देन ग्रहणं क्रियते, यथा बौधायनेनोक्तम् "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इति।

ऋग्यजुःसाम्नां त्रयीशब्देन व्यवहारो भवति। अथर्ववेदस्य त्रयीशब्देन ग्रहणाभावादृग्वेदादिवद्यज्ञे विशेषतयोपयोगाभावकल्पनया, चाथर्ववेदो वेदो नास्ति, जारणमारणादिक्रियाकर्तॄणां जनानां कृते नूतनः निर्मित इत्याधुनिकाः केचन संगिरन्ते। परन्तु सर्वथा नैतदुचितमनादितया स्वीकृत ऋग्वेदेऽपि तस्य सत्ताया विद्यमानत्वात्। तथाहि—

तमुत्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। ऋ० ६। १६, १४।
अग्निर्जातो अथर्वणा। ऋ० १०, २१, ५
ऋचां त्वः पोषमास्ते'''ब्रह्मात्वो वदति जातविद्यां०। ऋ० १०, ७१,११।

इत्यादिषु अथर्वणो नामोपलब्धेः, ऋचांत्व० इति मन्त्रे ऋत्विजां कर्तव्येषु ब्रह्मपदवाच्याथर्वविद्ब्राह्मणस्य कर्तव्यमपि बोधितम् । त्रयीति ऋग्वेदादित्रयाणां संज्ञायाः कारणं वेदगतमन्त्राणां त्रैविध्यात् ।

यज्ञादिकर्मसु अथर्वविदो विशेषकर्तव्यं सूत्रकारैर्बोधितम् । यदि याज्ञे कर्मणि न्यूनाधिकं यद् भवति तस्य निराकरणं कृत्वा साङ्गसम्पूर्णत्वकरणमथर्वविदः प्रधानं कर्त्तव्यं, विनाथर्वविदं यज्ञादिकर्म फलाय न कल्पते, अत एव अथर्ववेदेऽथर्वविदो दीक्षाग्रहणपूर्वकं विशिष्टं स्थानं प्रोक्तम्—

अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्ते हिंरण्यये ॥ १०।१०।१० ।

अथर्ववेदे बहवो विषया विद्यन्ते तान् विषयानाश्रित्याथर्ववेदस्य वेदेषु वैदिक-वाङ्मये च बहूनि नामान्युपलभ्यन्ते—अथर्ववेदः, ब्रह्मवेदः, भैषज्यवेद इत्यादीनि ।

अथर्ववेदस्यैकोनविंशतिकाण्डानि विद्यन्ते, विंशतितमकाण्डं च ऋग्वेदतो गृहीतमतस्तत्परिशिष्टरूपेण गण्यते, अथर्ववेदस्य नव शाखा आसन् इति पातञ्जल-भाष्यतश्चरणव्यूहादितो ज्ञायते, परंतु संप्रति शौनकीयशाखा–पिप्पलादशाखयो-र्विद्यमानत्वेन तयोर्द्वे संहिते उपलभ्येते ।

शाखाविनाशस्य कारणम् अध्ययनादिकर्तॄणां जनानां विनाश इति तु सर्वे जानन्त्येव । अत उपलब्धसंहितयोर्मध्येऽनेके पाठभेदा उपलभ्यन्ते । यद्यपि ऋग्वेद-तैत्तिरीय-शुक्लयजुर्वेदसंहितासु आकाशि आरामेश्वरं पाठभेदा नोपलभ्यन्ते, तत्र कारणं पठनपाठनपरम्परास्तित्वम् , तथापि ऋग्वेदादिवेदानामपि पूर्वमासन् अनेकाः शाखाः, संप्रति तु तासु अल्पीयस्योऽवशिष्टा बह्वयो विलुप्ता एव ।

अथर्ववेदे स्वर्गाध्यात्मविषयकाः तत्प्रापकक्रियाश्च अल्पीयस्यः सन्ति, मुख्यतया गृहस्थस्य, राज्ञः, रोगिणश्च कृते अनेकाः क्रियाः पदार्थाश्च प्रोक्ता दृश्यन्ते, तत्र किञ्चिद् दिक्प्रदर्शनं क्रियते—

अक्षिरोगः (६, १६) कुष्ठौषधिः (६,९३:,१९,३९) केशार्थम् (६,१३६-१३७) गर्भस्रावार्थम् (२०, ९६) वाजीकरणम्(४,४) विषनाशः (७,५६) सौभाग्यवर्धनम् (६,१३९) गर्भवर्धनम् (६,१७) गर्भदोषनिवारणम् (८,६) गण्डमालाचिकित्सनम् (७,७४,७६) ज्वरनाशः (१, २५,-७,११६) सुखप्रसवः (१,११) मूत्रमोचनम् (१,३) यक्ष्मरोगनाशः (१,१२;३,७३१;६,२०;८५,११,१२७१२ ;१२,२;१९,३८) रुधिरनिवारणार्थं धमनीबन्धनम् , (१,१७) दन्तार्थम् (६,२०) निद्राप्राप्त्यर्थम् (४,५) कीटनाशार्थम् (५,२३,२,३२) पिशाचनाशः (४,२०) अत्रानेककार्यार्थमनेकमणिधार-णमपि लिखितम् , तत्र केचन मणयः, औदुम्बरमणिः, (१९,३०) दर्भमणिः (१९,२८-३०)

शङ्खमणिः (४,१०) एवं स्पर्शचिकित्सा (४,१३) जलचिकित्सा (२,२३) इत्यादयोऽनेके विषया आयुर्वेदविषयकाः सन्तीति यथार्थमेवाथर्ववेदस्य भैषज्यवेद इति नाम। अथर्ववेदेऽप्युक्तम्—

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत। ओषधयः प्रजायन्ते ॥ ११,४,१६ ॥

एवं नृपाणां कृतेऽपि बहूनि विशिष्टविवेचनानि विद्यन्ते—ग्रामादीनां शत्रुतो रक्षणम् (२१,१) प्रजातुरगादिसंपत्साधनम् (२,२६;३,१०) प्रजानामैकमत्यम् (३,३०;६,७३) स्वसेनोत्साहादिकम् (११, ९-११) शत्रुनाशकरणानन्तरं स्वराज्ये प्रवेशः (३,३;४,८) अतोऽस्य वेदस्यापराक्षत्रवेदेति संज्ञा सार्थैव।

अथर्ववेदस्य गोपथब्राह्मणग्रन्थे, एवं नक्षत्रकल्प-संहिताकल्प-आङ्गिरसकल्प-शान्तिप्रभृतिकल्पेषु चाथर्ववेदस्थमन्त्राणां विषयाणां च विनियोगादिकं वर्णितं विद्यते। अथर्ववेदस्योपनिषदो मुण्डादय एकोनचत्वारिंशत् सन्ति। अथर्ववेदस्योपग्रन्थाः येऽथर्ववेदविषयज्ञानार्थमुपयुज्यन्ते, ते चैते—शिक्षा, 'अत्र वृत्तिप्रकरणसप्तस्वर-प्रकरणदिविषयाः सन्ति।

ज्यौतिषम्- अत्र शङ्कुप्रमाणतच्छायातो मुहूर्तमानादिकमस्ति। छन्दः—अत्राक्षर-प्रमाणद्वारा पादनिर्णयस्तद्द्वारा च छन्दोनिर्णयः।

निघण्टुः—वैदिकपारिभाषिकशब्दानां संकलनम्।
चतुरध्यायी—कौशिकव्याकरणसूत्राणि।
प्रातिशाख्यम्—अत्र स्वरसन्धि-विकृतिनियमसूत्राणि च सन्ति।
पञ्चपद्यालिका—संहितास्थऋचां सूक्तानुसारं संख्यादिविचारः।
दन्त्योष्ठ्यविधिः—संहितास्थव-बकारादिकथनम्।

बृहत्सर्वानुक्रमणिका—अत्र संहितास्थमन्त्राणां देवता ऋषिच्छन्दसां कथनम्।

नक्षत्रकल्पादिषु बह्वो विषया अथर्वसंहितादिस्थिताः साकल्येन विशदतयोप-वर्णिताः। एतादृशस्य सर्वोपकारकस्य अथर्ववेदस्य ज्ञाता, राज्ञा स्वराष्ट्रसंरक्षणार्थं पुरोहितो कर्तव्य इति बहु त्रवर्णितम्—

पुरोहितं च कुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम्।
दण्डनीत्यां च कुशलमथर्वाङ्गिरसे तथा ॥ याज्ञ. स्मृ.–

पुरोहितमुदितोदितं कुलशीलं षडङ्गवेदे, दैवे, निमित्तदण्डनीत्यां चाभिविनीत-मापदां दैवमानुषीणां अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकारं कुर्वीत ॥ चाणक्य.।

'तथा च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात्पुरोहितः।
अथर्वविहितं कर्म कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् ॥'

कामन्दकिय इत्यादि बहुत्र विद्यते।

२

गोपथब्राह्मणोक्ता अथर्ववेदस्य पञ्च उपवेदाः सन्ति, ते च सर्पवेदः, पिशाचवेदः, असुरवेदः, इतिहासवेदः, पुराणवेदश्चेति। (गो० १।१०) चरणव्यूहे तु 'अथर्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राणि भवन्तीत्युक्तमथर्ववेदोपवेदविषये। आस्ताम्।

अथर्ववेदपठनपाठनपरम्परालोपादथर्ववेदसंहितायामनेके पाठाः समजायन्तेति विद्वाँसः कथयन्ति। लोपस्य कारणं तु कदाचिदित्थं सम्भवति—राज्ञां समीपे अथर्ववेदविदः पुरोहितस्य सर्वदास्थितत्वेन राज्ञोऽपेक्षितानां शान्त्यादिकल्पानां समपेक्षितज्ञान एव पुरोहितप्रवृत्तिः स्वाभाविकी। किञ्चैश्वर्याधिक्ये प्रायो विद्याया ह्रासो भवतीति सर्वत्र भारते दृश्यते। किञ्च राज्ञां युद्धादिकरणार्थसंग्रामगमनेऽथर्वविदः पुरोहितस्यापि तत्र गमनावश्यकत्वेन पठनपाठनसंप्रदायलोपः संभवति। किञ्चक्षत्रियसांनिध्येन क्षत्रियकर्मणि शस्त्रादिचालनकार्यस्वाभाविकीप्रवृत्तिर्भवति, यथा द्रोणपुत्रस्याश्वत्थाम्नः।

संप्रति सम्पूर्णाथर्ववेदस्य साङ्गस्य विकृतिसहितस्य मुखतो विनापुस्तकं ऋग्वेदादेरिव पारायणकर्ता एकोऽपि ब्राह्मणः सम्पूर्णे भारते नोपलभ्यते, महते दुःखायेदृशीस्थितिः कल्पो अथर्ववेदिनो वयमिति वक्तारो ब्राह्मणाः सम्पूर्णे भारते चतुःशतसंख्याकाः कथंचिद् भवेयुः। अथर्ववेदिनां गोत्राणि-कौशिक-शावास्य-उपमन्यु-भारद्वाज, भालञ्जनाख्यानि विद्यन्ते, केचनाथर्ववेदिनः अथर्वविद्ब्राह्मणस्याभावेन ऋग्वेद, शुक्लयजुर्वेदाभ्यां च स्वकर्माणि कुर्वते। गुर्जरदेशे महाराष्ट्रे चोपलभ्यन्ते क्वचिद् अथर्ववेदिनः। महाराष्ट्रे कृष्णावेण्यासंगमनिकटस्थे खेडसंज्ञके परशुरामक्षेत्रापराख्ये ग्रामे अथर्ववेदिब्राह्मणेभ्यः मराठानृपतिशाहुसंज्ञकेन प्रदत्तं क्षेत्रदानबोधकं ताम्रपत्रमुपलभ्यते। पञ्चाशद्वर्षेभ्यः पूर्वं तत्र केचन अथर्ववेदवेत्तार आसन्। अथर्ववेदिनो ब्राह्मणा अथर्ववेदमात्मीयं मत्वा अध्ययनकार्तारः प्रायः संप्रति नोपलभ्यन्ते।

अस्यां स्थितौ पं० श्री विश्वनाथसायुज्यमचिरात्प्राप्ता रामचन्द्रशास्त्रिणो रटाटे इत्यावटंका चतुर्वेदविदः शास्त्रज्ञा अग्निहोत्रिणः काशीवास्तव्या वस्तुत ऋग्वेदिनः परन्तु अथर्ववेदाध्येतॄणां अभावं ज्ञात्वा महता कष्टेनाथर्ववेदं पठित्वा ऋग्वेदिनोऽनेकाञ्जनान् पाठयित्वा वस्तुतः अथर्ववेदस्य, तत्प्रचारस्य च समुद्धारका इति कथने नात्युक्तिलेशः। एते यत्र यत्र वा यज्ञादिकं कार्यं संभवतिस्म तत्र तत्र यज्ञादिकर्मणि स्वयं गत्वा कुत्रचित् शिष्यद्वारा च अथर्ववेदिनः कर्तव्यं कार्यं संपाद्य यज्ञादिकर्म साङ्गं सम्पूर्णं च समपादयन्। यावद्यज्ञादिक्रिया भारते प्रचलेत् तावत् स्वर्गीयरामचन्द्रशास्त्रिणां नाम अथर्ववेदस्य रक्षकत्वेन प्रचारकत्वेन च सर्वत्र स्थिरं स्यादिति निश्चितम्, अतस्तेभ्यः सश्रद्धं श्रद्धाञ्जलिं स्मारकग्रन्थस्थेन लेखेन समर्पयामीति शम्।

वालखिल्यसूक्तानि

नरहरिशास्त्री थत्ते,
एम० ए० व्याकरणाचार्यः काव्यतीर्थः
प्रोफेसर, संस्कृत-कालेज-लश्कर (गवालियर)

ऋग्वेदान्तर्गतशाकलसंहिताया अष्टमे मण्डलेऽष्टचत्वारिंशत्तमसूक्तोत्तरम् एकादशसूक्तानि वालखिल्याख्यानि ग्रथितानि विद्यन्ते। पठनपाठनपरम्परायां सर्वत्र तानि भारतवर्षेऽध्यापकैः शाकलसंहिताऽन्तर्गतसूक्तान्तराणीवाप्रसादेन प्रत्यक्षरमतिश्रद्धया सस्वराण्यध्याप्यन्ते, अध्येतृभिश्च तथैव सादरमभ्यस्यन्त इति सर्वविदितम्। अतस्तेषां वालखिल्यसूक्तानां तत्संहिताऽन्तर्गतेतरांशवदेव महत्ता न तु ततोऽल्पमपि न्यूनेत्यत्र न स्यात्कस्यचिदप्यवसरः संदेहलेशस्यापि। किमन्यत्! शाकल्यमहर्षिणा स्वयं निर्मिते शाकलसंहितापदपाठे तेषामपि सूक्तानां पदपाठस्तत्र कृत इति सकलेषु शाकलसंहितापुस्तकेषु नाप्रत्यक्षम्, अध्येतारश्च तानि पदान्यपि निरालस्यमभ्यस्यन्तीति वैदिकपरम्पराप्रसिद्धम्। किञ्च कात्यायननिर्मितायां शाकलसंहितासर्वानुक्रमण्यां तानि वालखिल्यसूक्तान्यपि तत्रैवानुक्रान्तानि यत्र संहितामध्ये तानि पठ्यन्ते।

एवं च वालखिल्यसूक्तानां वेदत्वे, शाकलशाखीयानां कृते तेषां प्रामाण्ये, सपदपाठमध्ययनार्हत्वे च नैव केषांचिदल्पाऽपि विप्रतिपत्तिः स्यादिति मन्ये।

अथापि शाकलसंहिताया यथाविधिपारायणे स्वाहाकारे (हवने) च ते वालखिल्यमन्त्राः शाकलसंहिताऽन्तर्गतमन्त्रान्तरवद्विनियोज्या वा न वेति संशीतिरुद्भवति।

शाकलसंहितास्वाहाकारे मूलभूतायां गुर्जरगोपालकृतशाकलसंहिताहोमपद्धतावन्वाधाने वालखिल्यदेवतानामनिर्देशात्पद्धतिकृतो हवनपारायणादौ वालखिल्यानां ग्रहणं नाभिप्रेतमिति ज्ञायते। पद्धत्यन्तरे च तन्नाभिप्रेतमिति वक्ष्यन्ते। क्वचन शाकलसंहितास्वाहाकारपुस्तके वालखिल्यमन्त्रा अपि लिखिता दृश्यन्ते तत्र मूलं मृग्यम्।

प्रायेण पञ्चचत्वारिंशतो वत्सरेभ्यः प्राक् काश्यां 'हाथीगली' इत्याख्ये प्रदेशान्तरे चितले-इत्युपाह्वश्रीवीरेश्वरदीक्षितैः कारीते, श्रीमहादेवशास्त्रिघाटे, श्रीवासुदेवभट्टखाण्डेकर, श्रीकाशीनाभट्टहर्डीकर, श्रीकृष्णदीक्षितमहाडकर, श्रीमाधवदीक्षितचितले-इत्येतेषां वैदिकमूर्धन्यानां याज्ञिकप्रकाण्डानां च साक्ष्ये सुतमां संपन्ने शाकलसंहितास्वाहाकारप्रयोगेऽहमपि पाठकेष्वन्यतम आसम्। तदानीं वालखिल्यघटिताध्यायपाठ-

प्रसङ्गे वैदिकतज्ज्ञाः माननीयाः श्रीमदनन्तरामभट्टपटवर्धनमहोदयाः प्रागुक्तविदुषां ससम्मति वालखिल्यसूक्तानि नैवापठन्निति जाने। तदुत्तरं काश्यां जातेषु शाकलसंहितापारायणादिषु कदाचन वालखिल्यसूक्तान्यपठ्यन्तेति श्रूयते, तत्रापि मूलं ना ज्ञासिषम्।

तत्र वालखिल्यसूक्तानामन्यशाखात आगतत्वेन खिलत्वाच्छाकलसंहिताऽवयवत्वाभावाच्छाकलसंहितापारायणादौ तेषां पाठो न प्राप्त इति तानि न पाठ्यानीत्ययं पक्षो ज्यायस्त्वमवलम्बमानो दृश्यते। तत्समर्थने विनिगमनाः, उपलब्धानि प्रमाणानि च संगृह्य 'एकः संदिग्धे कार्यवस्तुनि' इति माघोक्तिमनुसृत्य विदुषां पुरः समुपस्थापयितुं साहसं विदधे।

ये खलु पारायणादौ वालखिल्यानामुपादानैकपक्षपातिनस्ते युक्तिमिमां प्रस्तुवन्ति—तथा हि—सकलेषु आकाशीत आरामेश्वरं शाकलसंहितापुस्तकेषु नियतस्थले वालखिल्यसूक्तानां सत्त्वदर्शनात्, वैदिकपरम्परायां सर्वत्रैव तेषां शाकलसंहिताऽन्तर्गतत्वेन पठनपाठनसत्त्वात् पदपाठे सर्वानुक्रमण्यां च तेषां गृहीतत्वाच्च तेषां शाकलसंहिताऽवयवत्वसिद्धेः सकलमन्त्रपारायणादिप्रसङ्गे तदन्तर्गतवालखिल्यमन्त्राणां त्यागे पारायणादेर्न्यूनत्वापत्तिरिति।

अत्रेदं विचारणीयम्—वालखिल्यमन्त्राणामध्ययने शाकलसंहताऽध्येतॄणां कृते नाप्राप्तेऽपि, तेषां वेदत्वेऽसंदिग्धेऽपि, शाकलसंहितायाः पदपाठे तत्सर्वानुक्रमण्यां च तेषां समावेशसत्त्वेऽपि नैतत्सर्वं वालखिल्यानां शाकलसंहिताऽवयवत्वं साधयितुमलम्, खिलत्वमङ्गीकृत्यापि तेषामेव शाकलसंहिताऽवयवत्वाङ्गीकारे वदतो व्याघातात्। ये मन्त्रा यानि वा सूक्तानि शाकलसंहितोपदेशावसरे तन्मध्ये नोपदिष्टानि, अपि तु शाखान्तरे समुपदिष्टानि तानि तत्तत्कर्मसूपादेयानि मत्वा कालान्तरे तत उद्धृत्य पठनपाठनार्थं तत्संहितायां निवेशितानीत्युक्तप्रायम्। ईदृशानामेव खिलत्वं भवति। अन्यथा कस्यापि सूक्तस्य मन्त्रस्य वा खिलत्वं केनचित्प्रोच्यमानं कथं परिहृतं स्यात्? खिलान्यन्यत आगतानि, संहिताऽवयवरूपाणीति चेति मिथो विरुद्धमुभयं कथं संगच्छेत?

इदं तु ध्येयम्—वालखिल्यानि खिलान्यपि शाकलसंहितया क्षीरेण नीरमिव तथाऽऽत्मसात्कृतानि यथा तेषां खिलत्वे प्रमाणानि नोपालप्स्यन्त चेत्तानि खिलानीति न कोऽपि कथमपि परिचेतुमपारयिष्यत्। श्रीसूक्तप्रभृतीनि खिलान्तराणि तु भाषादृष्ट्या संहिताया अपेक्षया तथा वैषम्यं वहन्ति यथा तेषां खिलत्वे न कश्चित्संदेग्धि। परिशिष्टानीत्याख्याऽपि तेषामेव न वालखिल्यानामितीयमपि वैदिकपरम्परा। तथापि यद्वस्तुजातं भवेत्तदपलपितुं कः प्रभवेदिति वालखिल्यानां खिलत्वम्, शाकलसंहितायां कालान्तरे तत्समावेशश्चाङ्गीकृतत्वमापतत इति वस्तुस्थितिः।

खिलशब्दस्यानेकार्थसत्त्वेऽप्यत्र न्यूनार्थकः सः।

यथा श्रीमद्भागवते (१।४।३३)—

"तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः।"

इत्यत्र 'खिलं=न्यूनम्' इति श्रीधरस्वामी। तत्रैव (१।५।८)—

"येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्।"

इत्यत्रापि सः—विमलं भगवद्यशो विना येनैव धर्मादिज्ञानेनासौ भगवान्न तुष्येत, तदेव दर्शनं खिलं=न्यूनं मन्येऽहम्' इति। (व्याख्यायां तुष्येतेत्यात्मनेपदं मूलानुरोधेन)। प्रकृते च यच्छाकलसंहितायां न्यूनं तत् खिलमित्येनार्थः संगच्छते। एवं च खिलानामितरशाखीयत्वं सिध्यत्येव।

वालखिल्यानां खिलत्वं सायणभाष्ये तेषामग्रहणान्निश्चप्रचमेव, स्वाहाकारपद्धत्यादौ तेषामनिवेशाच्च। वक्ष्यमाणप्रमाणेभ्यश्च तेषां तत्त्वं सुसाधम्। तथा हि—यामलाष्टके त्रयोदशपटले खिलानां परिगणनप्रसङ्गे वालखिल्यनिर्देशः प्राथम्येन कृतो यथा—

"पुरा व्यासेन वेदेषु संक्षिप्तेषु चतुर्ष्वपि।
अनुवाकाष्टकाध्यायसूक्तवाक्यपदात्मसु॥
तत्र तत्र तु शिष्टानि यानि वाक्यानि सन्ति हि।
खिलानि तानि चोच्यन्ते, खिलाशिष्टानि यानि च॥
वाक्यान्युपखिलानीति कथ्यन्ते तानि भामिनि।
वालखिल्यं च राजन्यं लक्ष्मीसूक्तं च गारुडम्॥
स्वास्तिकं भौतिकं भौममायुष्यं ब्राह्ममेव च।
ऋक्खिलानि प्रकीर्त्यन्ते महान्ति वरवर्णिनि॥
पैशाचं रात्रिकाण्डं च त्रैवेण्यं स्वाप्नमेव च।
ऋक्संभूतान्युपखिलान्युदीर्यन्ति महान्ति वै॥" इत्यादि।

पुण्यपत्तनस्थवैदिकसंशोधनमण्डलप्रकाशितसायणाभाष्यसंहिताऋग्वेदपुस्तकेऽन्ते दत्ते खिलसंग्रहे वालखिल्यसूक्तानि खिलत्वेन पुनः प्रकाशितानि। प्राचीनाऽनुक्रमण्यपि तत्र खिलानां निर्दिष्टा विद्यते। वालखिल्यविषये प्रास्ताविके तत्रैवमुक्तम्—'इतरशाखागतान्याधिकानि सूक्तानि मन्त्रा वा खिलसंज्ञया प्रसिद्धाः परम्परयाऽऽगताः' इति, 'एकादश वालखिल्यसूक्तानि परिपाटीमनुसृत्याष्टमे मण्डले मुद्रापितानि तथापि काश्मीरपुस्तके खिलग्रन्थे तेषां समावेशादत्रापि तानि यथास्थलं मुद्रापितानि' इति च। तत्रैव आँग्लभाषायाम्—"Prefaee" मध्ये 'Khilas Coming in other Vedas and Brahmanas......', 'Khilas received already before the Brahmana qcriod....', 'Valakhilyas belong to the end of the R.gveda...' इत्यादि। सर्वाणि खिलान्येकस्मिन्नेव समये न संगृहीतानीत्यपि तत्र प्रतिपादितम्।

श्रीवासुदेवशास्त्रिपणशीकरसंपादिते निर्णयसागरमुद्रणालयमुद्रिते शाकलसंहितायाः पृथक्पत्रात्मके पुस्तके प्रारम्भे स्वाहाकारप्रकरणे तत्रत्यक्छन्दांसि पृथक् पृथक् परिगणय्यान्ते 'एवं सकलाः शाकलसंहितायां खिलरहितायाम् ऋचः १०४७२ इतीयं पूर्णसंख्या दत्ता सा वालखिल्यानन्तर्भाव एव घटते। वालखिल्यसाहित्ये तु सकला ऋचः १०५५२ भवन्ति। तत्र 'खिलरहितायाम् इत्यत्र 'खिलशब्देन वालखिल्यान्येवा-विवक्ष्यन्तेति नास्फुटम्। तत्रव पुस्तके वालखिल्यस्थले टिप्पनी—'वालखिल्यात्मकं भागं पाठका अस्मिन्नध्याये पठन्ति, स वेदपारायणादौ नेष्यते, खिलत्वात्', 'एषां पारा-यणादौ निषेधे···' इत्यादि।

उपर्युल्लिखितगुर्जरगोपालकृतशाकलसंहिताहोमपद्धतिपुस्तकेऽन्वाधाने वाल-खिल्यदेवतानामसत्त्वात्तासां सामान्यतो ज्ञानाय टिप्पन्यां ता उल्लिख्यान्ते'अभियुक्ताः स्वाहाकारे नेममुपयुञ्जन्ति' इत्युक्तम्। अत्रापि पुस्तके सकलर्क्संख्या वालखिल्यानि विहायैव १०४७२ इत्येवं दत्ता। देवताभेदपक्षमवलम्ब्य प्रदर्शितदेवतास्वपि वालखिल्य-देवता न निर्दिष्टास्तत्र होमाङ्ग ऋषितर्पणे च वशाऋष्युत्तरं भर्गऋषिरुक्तः वाल-खिल्यऋषयो मध्ये प्रसक्ता अपि नोल्लिखिताः।

काशिकेभ्यः श्रौतस्मार्तकर्मकाण्डपारावारीणवैदिकप्रकाण्डविद्वद्रत्नेभ्यः पानगां-वकरेत्युपाख्येभ्यो दत्तूदीक्षितेत्याख्यां वहद्भ्यः श्रीभालचन्द्रदीक्षितात्मजश्रीयज्ञेश्वर-दीक्षितमहोदयेभ्यः समासादिते शाकलसंहिताहोमपद्धत्यन्तरस्य प्रारम्भांशेऽपि मन्त्र-संख्या वालखिल्यसूक्तानि मुक्त्वैव '१०४७२' इतीयमुक्ता यथा—

"नत्वा गणपतिं साम्बं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम्।
ऋग्वेदान्तर्गतां शाखां शाकलाख्यामधीत्य वै॥
ऋग्विधानादिकं दृष्ट्वा शौनकाद्युक्तमेव च।
वैट्ठलिर्विश्वनाथश्च जड्योपाह्वोऽभिधानतः॥
तत्सूनुना भैरवेण संहिताहोमपद्धतिः।
क्रियते श्रीविश्वनाथतुष्ट्यर्थं बालबुद्धये॥
तस्माद् द्विजः प्रशान्तात्मा जपहोमपरायणः।
तपस्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकम्पया॥"
"एषाऽत्र संहिता वेदः सर्वब्रह्ममयी निचृत्।
होमांश्च जपयज्ञांश्च नित्यं कुर्वीत चैतया॥

अथ ऋग्वेदान्तर्गतशाकलसंहितामन्त्राणां खिलरहितानां द्वासप्तत्युत्तरचतुःशतं दशसहस्राणि..." इति।

श्रीश्रीपाददामोदरसातवलेकरसंपादितऋक्संहितापुस्तके ऋषिदेवताप्रकरणे वालखिल्यभागस्थऋषीननुल्लिख्य टिप्पन्यामेवमुक्तम्—अत्र वालखिल्यसूक्तानि न संगृहीतानि' इति। ततोऽग्रे बुभुत्साशान्तये तदीयदेवता निर्दिश्योक्तम्—'अभियुक्ताः

स्वाहाकारे नेमं प्रयुञ्जन्ति' इति । अन्ते च खिलसूक्तानामारम्भे टिप्पन्यां "परशाखीयं स्वशाखायामपेक्षावशात्पठ्यते तत् खिलमुच्यते" इति महाभारतशान्तिपर्व ३२३।१० (कुं०) स्थलस्था तट्टीकाकृन्नीलकण्ठस्योक्तिरुद्धृता ।

श्रीसिद्धेश्वरशास्त्रिचित्रावसंपादिते "ऋग्वेदाचें मराठी भाषान्तर" इति, पुस्तके- 'वालखिल्य ऋग्वेदाच्या परिशिष्टांत महत्त्वाचें परिशिष्ट' इति, 'वेदपारायणप्रसङ्गीं वालखिल्य म्हणत नाहींत' इति चोक्तम् ।

'खिल का अर्थ है परिशिष्ट या पीछे जोड़े गये मन्त्र । वालखिल्य ये ११ खिल सूक्त हैं ।' इति "वैदिकसाहित्य" ग्रन्थे श्रीवलदेवोपाध्यायाः । Winternitz कृत "प्राचीन भारतीय साहित्य" प्रथमभाग—प्रथमखण्डस्य हिन्दीसंस्करणे 'वालखिल्य ११ सूक्त परिशिष्ट उत्तरकालिक' इति । मैकडानल—कीथमहाशयाभ्यां निर्मिते "वैदिक इंडेक्स" पुस्तके (हिन्दी संस्करणे) द्वितीयभागे 'वालखिल्य कुछ अतिरिक्त सूक्त' इति ।

चरणव्यूहे शाकलसंहिताया वर्गसंख्या २००६ निर्दिष्टा—

'वर्गाणां परिसंख्यातं द्वे सहस्रे षडुत्तरे'

इति । वालखिल्यसंहिताया एव सा तावती भवति । वाल-विशिष्टास्तु वर्गाः २०२४ भवन्ति ।

चरणव्यूहभाष्ये महिदासोऽपि—'षडुत्तरसहस्रद्वयवर्गाः', 'सप्तदशाधिक- सहस्रसूक्तानीत्यर्थः', 'वालखिल्यानि पारायणे न सन्ति', 'सूक्तसहस्रं सप्तदशाधिकम्', 'श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठाने वालखिल्यप्रसिद्धिः, वेदपारायणे वर्ज्यमित्यर्थः, शौनकवचनात्, यथा प्रैषाध्यायः, कुन्तपाध्यायः, निविदाध्यायः, सुपर्णाध्यायश्चेति, तद्वद्वालखिल्याध्याय इत्यर्थः' इत्येवं नैकधा नैकदा च वालखिल्यानां शाकलसंहिताऽनवयवत्वं तेन पारायणादौ तेषां वर्ज्यत्वं चोवाच ।

प्रैषाद्यध्यायाः प्रागुक्ते सायणभाष्यसहित -ऋग्वेदपुस्तकेऽन्ते प्रकाशिताः, ते नैव पारायणादौ पठ्यन्ते ।

कात्यायनकृतशाकलसंहितासर्वानुक्रमण्या उपसंहारे 'तदेतत्सूक्तसहस्रं ससप्त- दशकं सपादाधिकमृग्वेदे पारायणपाठे शाकल्ये' इत्यत्र वालखिल्यसूक्तानि स्पष्टं वर्जितानि । वालखिल्यानां ग्रहणे तु सूक्तानि १०२८ भवन्ति ।

शौनकविरचितानुवाकानुक्रमण्याम्—

'एतत्सहस्रं दशसप्त चैव अष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि ।
तत्पारणे-शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः ॥'

इत्यत्रापि सूक्तानि वालखिल्यभागं परिहृत्य १०१७ कथितानि । यानि बाष्कल- संहितायामष्टौ सूक्तान्यधिकानि तान्यपि खिलेष्वन्तर्भूतानीति कृत्वा विप्राः शाकल- संहितापारायणे न पठन्तीत्युत्तरार्धार्थः । तत्र षट्त्रिंशत्तमे पद्ये प्रागुक्ते तथोक्त्वा

'वर्गाणां परिसंख्यातं द्वे सहस्रे षडुत्तरे'

इत्यष्टत्रिंशत्तमे पद्ये पुनर्वर्गसंख्या वालखिल्यानि विहाय २००६ इत्येवमुक्ता। वालखिल्यसाहित्ये तु सा २०२४ भवतीति प्रागनेकदोक्तम्। तत्रैवैकोनचत्वारिंशे पद्ये पुनः सूक्तसंख्योक्ता

'सहस्रमेतत्सूक्तानां निश्चितं खैलकैर्विना।
दश सप्त च पठ्यन्ते' इत्येवम् १०१७ इति ॥

उपर्युक्तेषु सर्वत्र वालखिल्यहानं तेषां शाकलसंहिताऽनवयवत्वादेव संगच्छते। किञ्च वालखिल्यानां खिलत्वादेव, तेषामन्यतो गृहीतत्वेन शाकलसंहिताऽनन्तर्गतत्वादेव च भाष्यकारः सायणस्तानि न व्याख्यदिति मन्तव्यमेव सर्वैः। कथमन्यथा शाकलसंहितायाः प्रतिमन्त्रमप्रमादं व्याख्यां विदधत् स मध्ये समापतितान्यपि वालखिल्यसूक्तान्येवोपेक्षेत ? निर्हेतुकमेव स तान्यत्यजदिति तु न श्रद्धेयं वचः।

किं चाश्वलायनश्रौतसूत्रारम्भे "अथैतस्य" इति सूत्रप्रतीकमादाय वृत्तिकृन्नारायणः—'एतस्येति शब्दो निवित्प्रैषपुरोरुक्कुन्तापवालखिल्यमहानाम्न्यैतरेयब्राह्मणसहितस्य शाकलस्य बाष्कलस्य चाम्नायद्वयस्यैतदाश्वलायनसूत्रं नाम प्रयोगशास्त्रमित्यध्येतृप्रसिद्धसंबन्धविशेषं द्योतयति' इत्येवं निविदादीनां संहिताबाह्यानामध्ये वालखिल्यानि परिगणयन्स्फुटमेव वालखिल्यानां शाकलसंहिताबाह्यत्वं साधयति।

अथैतरेयब्राह्मणे, ऐतरेयारण्यके, आश्वलायनश्रौतसूत्रे च वालखिल्यानामनेकत्र विनियोगोपलब्धिस्तेषां शाकलसंहिताघटकत्वं साधयितुमलमिति चेत्, तदपि न, तत्र सर्वत्रेतरशाखीयसंहितास्थानां 'देवस्य त्वा सवितुः' इत्यादीनां शतशो मन्त्राणां विनियोगदर्शनात्तेषामपि शाकलसंहिताभागत्वापत्तेः। नैव 'देवस्य त्वा' इत्यादिमन्त्राणां शाकलसंहिताऽन्तर्गतत्वं कस्यापि संमतम्। उक्तप्रायं च तत्र तेषामितरशाखीयत्वमुपर्युक्तब्राह्मणादिभाष्ये सायणेन।

तद्यथा—'पच्छः प्रथमं षड् वालखिल्यानां सूक्तानि' इत्यैतरेयब्राह्मणे (६।२४) सायणः—'वालखिल्यनामकाः केचन महर्षयस्तेषां संबन्धीत्यष्टसूक्तानि विद्यन्ते, तानि वालखिल्यनामके ग्रन्थे समाम्नायन्ते' इति। 'वालखिल्याः शंसति' इत्यैतरेयब्राह्मणे (६।२८) च सः—'वालखिल्याख्यैर्मुनिभिर्दृष्टा 'अभि प्रवः सुराधसम्' इत्यादिकेऽष्टके (=सूक्ताष्टके) स्थिता ऋचो वालखिल्याभिधाः, ता एव वालखिल्याख्ये ग्रन्थे समाम्नाताः, ताः सर्वा मैत्रावरुणः शंसेत्' इति। 'अभि प्रवः सुराधसमिति षड् वालखिल्यानां सूक्तानि' इत्यैतरेयारण्यके (५।२।४) च सायणः–'अभि प्रव इत्यादिकानि वालखिल्यानां संहितायामाम्नातानि षट्पञ्चाशदृभिर्ऋग्भिरुपेतानि षट् सूक्तानि पठेत् इति।

वालखिल्यसंहितायाः सत्तोक्ता श्रीमद्भागवते (१२। ६। ५९) "बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम्। चक्रे" इति।

नन्वेवं वालखिल्यसूक्तानां शाकलसंहिताबाह्यत्वे कथं बहिर्भूतानि तत्पदान्यपि शाकल्येन शाकलसंहितापदपाठमध्ये सन्निवेशितानि, कथं वा कात्यायनेन सर्वानुक्रमण्यां तानि सूक्तान्यप्यनुक्रान्तानीति चेत्, पदपाठसर्वानुक्रमण्योर्निर्माणात् प्रागेव तानि संगृहीतान्यासन्निति तेषां तदुभयत्र समावेशे दोषादर्शनात्ताभ्यां तान्यपि समादृतानीति भाति।

नैतच्चित्रं मन्तव्यम्। तथा हि—पाणिनिसूत्रोत्पत्तेः प्राग्वेदाङ्गत्वेनान्यदेव किमपि प्राचीनं व्याकरणं वैदिकपरम्परायां गृहीतं भवेदिति निश्चप्रचम्। पाणिनिसूत्रनिर्मित्युत्तरं तु तान्येव सूत्राणि वैदिका वेदाङ्गत्वेन जगृहुरित्यपि नाविदितम्। तस्मिन् वेदाङ्गे तदुत्तरकालोत्पन्नानि कात्यायनकृतवार्तिकानि नैव समावेशितानीत्यपि नैव तिरोहितम्। इत्थं स्थितेऽपि तत्र नैकेषु स्थलेषु पाणिनिसूत्र एव कात्यायनीयवार्तिकांशा निवेशिताः पठनपाठनपरम्परायां च गृहीता दृश्यन्ते।

तद्यथा—"समो गम्यृच्छिभ्याम्" इत्येतावत् पाणिनेः सूत्रम्। तदुपरि कात्यायनकृतेषु वार्तिकेषु "विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्", "अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्" इति वार्तिकद्वयात् स्वीयदृष्ट्या वृत्तिकारादिसम्मत्या चोपादेयांशोऽनन्तरमुद्धृत्य तत्सूत्र एव वैदिकैः समावेशित इति "समोगम्यृच्छिप्रच्छिस्वरत्यर्तिश्रुविदिभ्यः" इति बृहदाकारं तदेकमेवाखण्डं सूत्रं वैदिकपरम्परायां तैः पठ्यमानं दृश्यते। मन्यन्ते च ते तावदखण्डमेकं पाणिनिसूत्रम्। वस्तुतो नैव तदाकारं तत् पाणिनेः सूत्रमिति जानन्ति वैयाकरणाः। एवम् "नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्" इति वार्तिकात् 'ख्युन्' इत्यंशं टिड्ढेति सूत्रे समावेश्य "टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः" इतीयदेकमेवाखण्डं पाणिनेः सूत्रं वैदिका मत्वा पठन्ति। ईदृशी विद्या कतिपयेष्वेव स्थलेष्वङ्गीकृता न सर्वत्र।

तत्र केचनैवांशा वार्तिकेभ्यः क्वचिदेव गृहीताः, क्वचिच्चोपेक्षिताः, ये गृहीतास्तेऽपि सूत्रान्तर्गतत्वेन किमर्थमित्यादौ हेतुं प्रज्ञा[illegible]ज्ञा एव वक्तुं प्रभवः। परमद्य यावत् पाणिनिसूत्रमध्ये वैदिकैः पठ्यमानान्वार्तिकांशान् दृष्ट्वाऽपि ते पाणिनीया इति न कोऽपि सचेता वैयाकरणो वक्तुं पारयेत्। मम तु भाति—पाणिनिसूत्रोत्पत्त्युत्तरं यथा यथा कात्यायनीयवार्तिकांशाः प्रकाशमागतास्तेषु च ये तदानीमुपादेया इति निर्णीतास्त एव कैश्चित्सूत्रेषु निवेशिता इति।

तावता तेऽपाणिनीया अपि पाणिनिसूत्रान्तर्गतत्वेन पठ्यमाना हानिकरा वा अनुचिता वा न भवन्तु नामाभ्यासे। परं तु पाणिनिसूत्रमात्रपारायणसंकल्पे तेंऽशा यदि सूत्रेभ्यो वर्जिताः स्युस्तदा तावता पारायणे न्यूनताशङ्का तु नैव भवेदपि तु तत्र तेषामपठनमेव युक्तं भवेत्, ग्रन्थान्तरीयत्वात्।

वालखिल्यानामप्युक्तरीत्या युक्तिभिः प्रमाणैश्च ग्रन्थान्तरीयत्वसिद्धेस्तेषां पठन-पाठनादौ समावेशेऽपि ससंकल्पे सविधिक्रियमाणे शाकलसंहितापारायणे तत्स्वाहाकारे चापठनमेव तेषां श्रेयस्करं याति।

यद्यपि केचित्तैत्तिरीयसंहितान्तर्गतरुद्रपाठेऽभिषेककाले नमकाध्यायपाठोत्तरं चमकाध्यायपाठात्प्राक् "त्र्यम्बकं यजामहे" इति, अन्यांश्च कांश्चिन्मन्त्रान् पठन्ति भक्तिवशीभूताः। तथापि नैव तेषां तत्र पाठं युक्तं मन्यन्ते तज्ज्ञाः। रुद्रस्वाहाकारे च नैव कैश्चिदपि तेषां विनियोगः क्रियत इति वस्तुस्थितिः। इत्थंगतेऽपि स्वाहाकारादि-तरत्राभिषेकादौ रुद्रपाठे तेषां पाठः फलाधिक्यकर इति केषांचिदभिनिवेशश्चेदेवं शाकलसंहितापारायणे वालखिल्यपाठोऽपि न हानिकृदिति वदन्तु ते। स्वाहाकारे तु तेषां विनियोगो न कथमपि रुचिपथमवतरतीति विभावयन्तु सुधिय इत्यलम्।

वेदविद्याविमर्शः

आचार्य शेषराज शर्मा

प्रोफेसर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय एवं राजकीय

संस्कृत महाविद्यालय, काठमाण्डू, नेपाल

विदन्ति जानन्ति, विन्दन्ति प्राप्नुवन्ति वा धर्मोऽर्थकाममोक्षानेभिरिति वेदा इति व्युत्पत्या "विद् ज्ञाने" "विद्लृ लाभे" इति वा धातो "हलश्चे"ति सूत्रेण करण-घञा वेदशब्दोऽयं निष्पाद्यते।

वेदलक्षणप्रसङ्गे तत्रभवता सायणाचार्येण "इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिक-मुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद" इति प्रत्त्यपादि। स्रक्चन्दनवनितादेरपीष्ट-प्राप्तेस्तन्यौषधसेवनादेरत्यनिष्टवारणात्तत्तदतिप्रसक्तिव्यावृत्यर्थम् अलौकिकम् इत्युपाय-विशेषण संगच्छते। अत एवोक्तं

प्रत्यक्षेनानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता, ॥ इति ॥

स एवोपायो वेदस्य विषयः।

"अपौरुषेयं वाक्यं वेद" इति मीमांसकाः। पुरुषे हि भ्रमः प्रमादो विप्रलिप्सा कारणाऽपाटवं चेति दोषचतुष्टयं संभाव्यते। अतो वेदस्याऽपौरुषेयत्वादेव पूर्वोक्तदोषचातुर्विध्यस्य नेशतोऽप्यप्रसक्तिरस्ति नित्यत्वं च सेत्स्यति। तथा च वेदस्याऽपौरुषेयत्वे प्रमाणं—"वाचा विरूपनित्यया" इति। "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मा" इति च श्रुतिः।

अत्राऽर्थे पराशरस्मृतिरपि संवदति—

न कश्चिद्वेदकर्ता स्याद्वेदस्मर्ता चतुर्मुखः।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम॥ इति ॥

नैयायिकास्तु वेदस्य पौरुषेयत्वं मन्वते। तत्र तावत्तेषामनुमानं प्रमाणम्। तद्यथा—"वेदः पौरुषेयो वाक्यत्वाद्भारतादिवदिति"। तत्र पौरुषेयत्वं नाम पुरुषाऽ-धीनोत्पत्तिकत्वम्।" नैयायिकमतेऽत्र पुरुषपदेन नेतरपुरुषस्य परिग्रहः प्रत्युत परमे-श्वरस्यैव अत्राऽर्थे श्रुतिरपि प्रमाणं सा यथा—

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः (बृ० उ० २।४।५०) इति

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ इति च ॥

ते च वेदाश्चतुर्विधा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदश्चेति तत्रर्ग्बहुलो वेदः ऋग्वेदः । ऋग्लक्षणमकारि भगवता जैमिनिमुनिना—तेषामृग्यत्राऽथर्वशेन पादव्यवस्था इति । ऋक् छन्दोबद्धपदा भवतीत्यर्थः । "गीतिषु सामाख्ये"ति सामलक्षणं तेन कृतम् । ता ऋचः सगीतयः सामानीत्यर्थः । यजुर्लक्षणं च "शेषे यजुः शब्दः" इति तेनैवाऽकारि अच्छन्दांस्यगीतानि यजूंषीत्यर्थः । ऋग्वन्न यत्र छन्दांसि सामवन्न गीतयश्च तानि यजूंषीति यावत् । यजुःप्रचुरो वेदो यजुर्वेदः । ननु वेदविशेषलक्षणप्रसंगे त्रयाणामेव लक्षणानि । एवं वेदपर्याये च त्रयीशब्दोऽपि वर्तते; तदर्थश्च त्रयोऽवयवा (ऋग्यजुःसामरूपा) यस्याः सेति च वेदत्रयमेव सिद्ध्यत्यतोऽथर्वणो न वेदत्वमिति चेन्न । वेदनां मन्त्रस्वरूपमनूद्यैवैतानि लक्षणानि तत्र नाऽर्थव्यवस्थितपादत्वरूपलक्षणमथर्वण्यपि प्रसक्तमेवाऽतस्तस्य वेदत्वं न विरुद्धम् ।

एवं च त्रयीत्यत्रापि त्रयोऽवयवाः पूर्वलक्षिता मन्त्ररूपा एव गृह्यन्ते, ततः पूर्वसमाधिनैव साऽप्याशङ्का दूरीकृता । यद्वा त्रयोऽवयवाः (धर्मार्थकामरूपाः) यस्यां सा श्रुतिस्त्रयीति । संहिताऽऽत्मकेषु वेदेषु चतुर्ष्वपि प्रायेण धर्माऽर्थकामा एव प्रतिपादिता न मोक्षः । अत एवोक्तं भगवता गीतायाम्—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवाऽर्जुन । इति ।
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नाऽन्यदस्तीति वादिनः ॥ इति च ॥

मोक्षोपायप्रतिपादनं च वेदस्यारण्यकेषूपनिषत्सु च बाहुल्येन समस्ति । इत्थं च निःशङ्कमेव सिद्ध्यत्यथर्वणोऽपि वेदत्वम् । यजुरादिवेदेषु च—

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत । इत्यत्रच्छन्दःपदेनाऽथर्वविभागा गृह्यन्ते, ततोऽप्यथर्वणस्य वेदत्वं निर्विवादं सेत्स्यति ।

स च चातुर्विधोऽपि वेदो मन्त्रब्राह्मणात्मकः, "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इत्यापस्तम्बादयः ।

"प्रयोगसमवेताऽर्थस्मारको मन्त्र" इति मीमांसकाः । मन्त्रेतरभागो ब्राह्मणम्, तत्र वात्स्यायनभाष्यं यथा—

"त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि–विधिवचनान्यर्थवादवचनान्यनुवादवचनानि च" (२–१–६१) ।

इत्थं च मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदराशेः पुनस्तत्तद्भागानामध्येतृसमाख्याऽऽदिप्रसिद्धानां शाखारूपेण महान्विस्तरः ।

तत्र महाभाष्यं यथा "एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यं, नवधाऽऽथर्वणो वेदः" (पस्पशा)।

ऋग्वेदस्यैकविंशतिशाखा यजुर्वेदस्यैकोत्तराः शतशाखाः, सामवेदस्य सहस्रशाखा अथर्ववेदस्य नवशाखाः। इत्थं वेदचतुष्टयस्य महाभाष्यकारमत एकत्रिंशदधिका एकादशशतशाखाः (११३१)।

सीतोपनिषदो मुक्तिकोपनिषदश्च मते यजुर्वेदस्य नवोत्तराः शतशाखाः। चरणव्यूहकारमते षडशीतिशाखाः। अथर्ववेदस्य सीतोपनिषद्रीत्या पञ्चशाखा मुक्तिकोपनिषद्रीत्या पञ्चाशच्छाखाः, केषांचिन्मते पञ्चदश शाखाः। कलिकालस्य विकरालत्वात्साम्प्रतं वेदानां बह्वयः शाखा उत्सन्नप्रायाः। तत्र ऋग्वेदस्य शाखाद्वयमेवोपलभ्यते वाष्कलशाखा शाकलशाखा चेति। तस्य ब्राह्मणद्वयमासाद्यते तत्रैकमैतरेयं द्वितीयं कौषीतकी (शाङ्खायनाऽपरपर्याया) च। ऋग्वेदस्यारण्यकमपि द्वयमैतरेयारण्यकं कौषीतकारण्यकं समुपलभ्यते।

यजुर्वेदो द्विविधः शुक्लः कृष्णश्चेति। तत्र शुक्ले माध्यन्दिनोकाण्वशाखा च विद्यते। एवं चोभयोरपि शतपथब्राह्मणं पृथक्पृथग्वर्तते।

कृष्णयजुर्वेदे तैत्तिरीयशाखा, कठशाखा मैत्रायणीति शाखात्रितयं विराजते। तत्र तैत्तिरीयं ब्राह्मणं च समुपलभ्यते।

सामवेदस्य सर्वैरपि शाखानां सहस्रमुररीकृतम्। तासु बह्वयः शाखा अनध्यायेऽध्ययेन शतक्रतुवज्रेणाऽभिहताः प्रनष्टा इति चरणव्यूहे शौनकमहर्षिः। साम्प्रतं सामवेदस्य शाखात्रितयं समुपलभ्यते—कौथुमी, जैमिनीया राणायनीया चेति। तत्र गुर्जरदेशे कौथुमी, कार्णाटके जैमिनीया महाराष्ट्रदेशे राणायनीया शाखा वर्तते।

सामवेदे ब्राह्मणानि चाष्टौ विद्यन्ते, तानि यथा ताण्ड्यं, पञ्चविंशं, षड्विंशं, छान्दोग्यमार्षं, वंशः, सामविधानं देवताऽध्यायश्चेति।

अथर्ववेदस्य संहिताद्वयमासाद्यते पैप्पलादसंहिता शौनकसंहिता चेति। ब्राह्मणं त्वेकमेव गोपथसंज्ञकं समुपलभ्यते।

इत्थं तत्तद्वेदानामुपवेदाश्च वर्तन्ते। चरणव्यूहमते ऋग्वेदस्यायुर्वेदः उपवेदो यजुर्वेदस्य धनुर्वेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदोऽथर्ववेदस्यार्थशास्त्रम्। केषांचिन्मतेऽथर्ववेदस्य तन्त्रशास्त्रमुपवेदः। कामशास्त्रस्यायुर्वेदेऽन्तर्भाव इति मधुसूदनस्वामिपादाः। इत्थं चाऽङ्गिरूपाणां वेदानां षडङ्गानि वर्तन्ते, तानि यथा—शिक्षा, कल्पो व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो ज्यौतिषं चेति।

'ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येय' इत्यत्र श्रुतिर्यथा "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चे"ति। वेदाङ्गविभागाश्च यथा चरणव्यूहे—

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साऽङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ इति ॥

अथाऽत्र संक्षेपेण वेदाऽङ्गानां स्वरूपाणि प्रदर्श्यन्ते ।

यत्र वर्णाद्युच्चारणप्रकारादय उपदिश्यते सा शिक्षा । सा च पाणिनीय-याज्ञवल्कीय–नारदीयादिभेदैरनेकविधा । कल्प्यते = समर्थ्यते कर्मप्रयोगोऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या कल्पपदसिद्धिः । स च कल्पस्त्रिविधः—श्रौतकल्पो गृह्यकल्पो धर्मकल्पश्चेति । तत्र श्रौतकल्पे श्रौताऽग्न्याधानयज्ञाद्यनुष्ठानादिविषयाः प्रपञ्चिताः ।

गृह्यकल्पे गृह्येऽग्नौ विधेयानि बहून्यन्यानि च कर्माणि प्रपञ्चितानि ।

धर्मकल्पाश्च धर्मसूत्रनाम्ना प्रथिता आपस्तम्बधर्मसूत्रबौधायनधर्मसूत्र-वसिष्ठ-धर्मसूत्रप्रभृतयः ।

ऋग्वेदे श्रौतसूत्रद्वयमुपलभ्यते, आश्वलायनं शाङ्खायनं चेति । तत्र गृह्यसूत्रमश्वा-श्वलायनं प्राप्यते ।

कृष्णयजुर्वेदे च बौधायनीयमापस्तम्बीयं सत्याषाढीयं, मानवं, भारद्वाजं वैखानसं चेति षट् श्रौतसूत्राणि समुपलभ्यन्ते ।

शुक्लयजुर्वेदे साम्प्रतमेकमेव कात्यायनश्रौतसूत्रं गृह्यसूत्रं च पारस्करप्रणीतं समा-साद्यते । कात्यायनपारस्करयोरेकभूयत्वं च प्रतिपाद्यते कैश्चिद्विद्वद्भिः ।

सामवेदे च श्रौतसूत्रत्रयं समुपलभ्यते–लाट्यायनश्रौतसूत्रं, द्राह्यायणश्रौतसूत्रं मकशश्रौतसूत्रं चेति । अथर्ववेदे त्वेकमेव कौशिक सूत्रं प्राप्यते ।

व्याक्रियन्ते = व्युत्पाद्यन्ते, असाधुभ्यो विविच्य साधुत्वेन बोध्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम् । तच्च पाणिनीयादिकम् । प्राचीनव्याकरणानि च नवविधानि प्रसिद्धानि । तानि यथा—

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम् ।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम् ॥ इति ॥

तत्र लौकिकानां वैदिकानां च शब्दानां व्युत्पादकत्वादुपलभ्यमानव्याकरणेषु पाणिनीयं व्याकरणमेव वेदाङ्गत्वेनाऽभ्युपगम्यते सर्वैः । वैदिकं प्रतिशाख्यं च यथायथं शिक्षायां व्याकरणे चाऽन्तर्भावमर्हति । निरुक्तं नाम वेदाऽर्थनिर्वाचनसाधनं वेदाऽङ्गम् । तच्च निघण्टुव्याख्यानरूपं यास्ककर्तृत्वेन प्रसिद्धमास्ते । वैदिकलौकिकछन्दः-प्रतिपादकं शास्त्रं छन्दः—शास्त्रं, तच्च पिङ्गलमुनिप्रणीतो ग्रन्थो वेदाङ्गज्यौतिषत्वेन प्रसिद्धिमुपगतः ।

एवं चैते पुराणादयश्चतुर्दश विद्यानां धर्मस्य च स्थानानीति महर्षिणा याज्ञवल्क्येन प्रत्यपादिषत। तद्यथा—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥ इति॥

तत्र पुराणानि ब्राह्मादीन्यष्टादशसंख्यकानि, तेष्वेव सनत्कुमाराद्युपपुराणानामन्तर्भावः। पुराणेषु प्रायेण पञ्च विषया वर्ण्यन्ते। ते च यथा—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ इति॥

पुराणपदमितिहासस्याऽप्युपलक्षणं, यत इतिहासेऽपि विषयविभागाः प्रायेण पुराणमनुसरन्ति। अत एवोक्तं भगवता मनुना—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥ इति॥

किं च वेदेषु ये विषयाः सूक्ष्मरूपेण प्रतिपादितास्त एव पुराणेतिहासेषु विस्तृतरूपेण प्रपञ्चिताः। ये नामाऽऽर्यसामाजिकाः साम्प्रतं पुराणेतिहासावध्ययनाऽध्यापनपरम्पराऽभावाद्दुरूहत्वेन स्वमतिमान्द्येन च "वेदविरुद्धा" विति कथयित्वा वासाऽक्षिसङ्कोचनपुरःसरं हेयदृष्ट्या विभालयन्ति तेऽपि जात्यादिविषयाऽनुसन्धानप्रसङ्गे तावेव शरणीकुर्वन्ति।

वाल्मीकीयं रामायणं, वैयासिकं महाभारतं चेतिहासाख्यया प्रसिद्धे। पुराणेतिहासावुपनिषदि पञ्चमवेदत्वेन वर्णितौ।

"प्रमाणैरर्थनिरूपणं न्यायः।" इति लक्षणाऽनुसरणेन न्यायपदेन गौतमीयं न्यायदर्शनं, काणादं वैशेषिकदर्शनं, कापिलं सांख्यदर्शनं, पातञ्जलं योगदर्शनं च गृहीतुं शक्यन्ते। किं च पूर्वपक्षरूपेण चार्वाकदर्शनं, बौद्धदर्शनं जैनदर्शनं चोपादेयानि भवन्ति।

मीमांसा नाम वेदाऽर्थविवेचकं दर्शनम्। सा च द्विविधा—पूर्वमीमांसोत्तरमीमांसा च। तत्र पूर्वमीमांसा जैमिनीया सा च वैदिकविधिविवेचनी। एवं चोत्तरमीमांसा वैयासिकीब्रह्मनिदर्शनी।

धर्मशास्त्रं च मन्वादिप्रणीतं बहुविधम्। तच्च वेदार्थस्मरणोत्तररचितत्वात्स्मृतिपदेनाऽपि व्यपदिश्यते।

पाशुपतवैष्णवादीनां दर्शनानां धर्मशास्त्रेऽन्तर्भावः, पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि वेदोपाङ्गानीति प्रस्थानभेदे मधुसूदनसरस्वतीचरणाः।

वेदाऽङ्गानि प्रतिपादितपूर्वाणि । वेदाश्च शेषित्वेन प्रथममेवोपपादितानि । एवं निरुक्तपूर्वाः पुराणादयश्चतुर्दश विद्यारूपेण व्यपदिश्यन्ते । तत्र चाऽऽयुर्वेदाद्युपवेदानां च संयोजनेनाऽष्टादशविद्या, परिगण्यन्ते । तत्र च वेदानां स्वतः प्रामाण्यमितरेषां तु वेदमूलकत्वेनेति मीमांसायां तत्र तत्र प्रपञ्चितम् ।

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्डनोतिश्चेति चतस्रो विद्या इति कौटिल्यमतम् । तत्राऽऽन्वीक्षिको न्यायविद्या केषांचिन्मते वेदान्तविद्या । त्रयी पुरैवोक्ता विस्तरेण । वार्ताया दण्डनीतेश्च तत्र तत्र पुराणेषु रामायणे महाभारते चाऽन्तर्भावः ।

एवं च व्याख्यातपूर्वाश्चतुर्दशाऽपि विद्या अतिविस्तीर्णवेदाऽर्थस्मरणपुरःसरं रचितत्वाद्भगवत्पादैः शङ्कराचार्यैस्तत्र स्मृतिनाम्ना व्यपदिष्टाः ।

इत्थं च कालप्रभावेणोत्सन्नानामतिगहनानां वेदानामर्थबोधनप्रसारणयोः समनन्तरप्रतिपादिताश्चतुर्दशाऽपि विद्याः शेषरूपेणाऽतिमहत् साहाय्यमाचरन्तीति सूक्ष्मेक्षिकया विलोकनशीलानां विमलमतीनां विदुषां नैव तिरोहितमिति सर्वमवदातम् ।

इत्थं चाऽत्र लघुनिबन्धनेऽतिशयसंक्षेपेण वेदविद्याविमर्शः प्रस्तुत इति निवेद्य विरम्यते ।

संभ्रमभ्रमनिबन्धनमत्र दूषणं च यदि जातु भवेद्धै ।
मर्षयन्तु विबुधा गुणगृह्याः प्रार्थयत्याविरतं द्विजशेषः ॥
आजीवनं श्रुतिततिः परिशीलिता यैराधानमिष्टिरपि यैः समनुष्ठिता च ।
प्राध्यापनेन च सुकीर्तिरुपार्जिता यैस्तुष्यन्त्वनेन विबुधोत्तमरामचन्द्राः ॥
सत्तन्त्रयोगपरिशीलनपूत्तचित्ते प्राणोपमे लघुसहोदरपूर्णचन्द्रे ।
स्वःसंस्थिते प्रबलमन्युकुलाऽऽकुलोऽपि कुर्वे कृतिं प्रियविनायकशास्त्रिवश्यः ॥

इति शम् ।

अस्माकमिन्द्रः

रामचन्द्र मालवीयः एम. ए. व्याकरणशास्त्राचार्यः

भू. पू. प्रस्तोता वा. सं. वि. वि. वाराणसी ।

निखिलस्यापि भूमण्डलस्य वाङ्मयेषु भारतीयं वाङ्मयं मूर्धन्याभिषिक्तमिति नातिरोहितं विपश्चिदपश्चिमानाम् । तत्र कारणम् "अपौरुषेयाः वेदाः" एव । तदुपबृंहणार्थञ्च यानीतिहासपुराणानि समुपलभ्यन्ते तेष्वपि मनसो विमुग्धकरमपूर्वं ज्ञानं विज्ञानञ्च सङ्गृहीतं विद्यते यज्जिघृक्षवः सहृदया अहर्निशं कृतभूरिपरिश्रमा अपि पारं गन्तुमक्षमा तीर एवावतिष्ठन्ते । तत्र तावत् सर्वत्रैवेन्द्रस्याख्यानमवश्यमुपलभ्यते । तथा च चतुर्ष्वपि वेदेषु प्राथम्यमुपगते ऋग्वेदे वर्त्तमानासु ऋक्षु प्रायशस्तुरीयो भाग इन्द्रस्यैव गुणकर्मानुवर्णने प्रयुक्तो दृश्यते । तत्र प्रथमाष्टक एव तावदिदमुपन्यस्तं यत्तस्मिँस्तस्मिन् फलदातरि देवान्तरे ये स्तोत्रविशेषा उत्कृष्टाः सन्ति तैः सर्वैरपि वज्रयुक्तस्यास्येन्द्रस्य योग्यां स्तुतिं विदधातुं नैव शक्यम् ।

तुंजे तुंजे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विंधे अस्य सुष्टुतिम् ।

पुनश्च—

न हि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।

अन्यच्चाष्टमाष्टके—

क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्वं ऋषयोऽतमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥

अद्भुतोऽत्र महिमा अस्येन्द्रस्य विगीतो विद्यते । यतो हि यथानुश्रूयते द्यौरस्य पिता पृथिवी च माता ते उभे अपीन्द्रः स्वकीयाच्छरीरादजनयत् । अत एवात्राष्टके बहुवारभिन्द्राणी स्वाशयं व्यनक्ति "विश्वस्मादिन्द्र उत्तर" इति ।

विभुरयमिन्द्रो नारूपवान् किन्तु सुरूपः सुविभूषितः सुशक्तिसम्पन्नश्च । अस्य हनुः चिबुकं नासिका वा परमशोभनाऽत एवायं वेदे बहुत्र "सुशिप्र" शब्देन सम्बोधितः । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः इत्युक्त्वा अयं वज्रहस्तो बहुभिर्हैमैरलङ्करणैश्चालङ्कृतो विभाति । शत्रुवधायायं सततं स्वकीये दक्षिणे हस्ते वज्रं धारयति तथा रथ्यानश्वानानयति । देवाः अस्मै भृशं सोमं ददति यत्पीत्वा परितृप्तोऽयं यदा युद्धायोद्यतो भवति तदा लोके यथा कश्चन गर्वोन्नतो वीरः स्वकीयं श्मश्रु स्पृशति तथैवायमपि सोल्लासः स्वकीयानि श्मश्रूणि पुनः पुनर्धुनोति । तथा च सप्तमाष्टके मन्त्रः—

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम्।
प्रश्मश्रुदो धुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥

अयमद्भुतः सोमपायी। अत्र सोमपाने न कोऽप्येनमतिवर्त्तितुं समर्थः। अयमिन्द्रः एकवारमेव त्रिंशत्संख्याकानि सोमेन पूर्णानि पात्राणि पीत्वा निःशेषमकरोत्। तथा च श्रुतिः—

एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतम्।

इन्द्रः सोमस्य काणुका। (अष्टममण्डल ७७ सूक्त मन्त्र ४) उत्पत्तिसमकालमेवायं सोमं पातुं सर्वथा समर्थं आसीदित्यपि "जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ०" इति मन्त्रेण प्रतीयते।

दशममण्डलस्य सप्तविंशतितमे सूक्ते अयमिन्द्रः पत्तो जगार प्रत्यंचमत्ति० इति मन्त्रेणादित्यात्मनास्तुतस्तथा सप्तवीरासो अधरादायन्निति मन्त्रेण प्रजापतिरूपेण चाभिष्टुतोऽस्ति। पुनश्चाष्टाविंशतितमे सूक्ते सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मास्मैतादृगप गूहः समर्ये इति मन्त्रेणायमन्तरात्मना स्तुतो वर्त्तते।

अतुला ह्यस्य शक्तिर्विपुलश्च धनमस्य समीपे येन सर्वेऽपि देवा एनमाराध्य स्वीयं संरक्षणं धनप्राप्तिं च कामयन्ते। सम्पत्तिविषयिण्यभ्यर्थना तु बहुषु स्थलेषु समुपलभ्यते अत एवायं मघवा धनवानित्युच्यते।

विष्णुना साकमयमिन्द्रः वृत्रम्, अहिम्, शुष्णम्, नमुचिं शम्बरञ्च हन्ति। एते खलु दैत्यस्वरूपाः जलवृष्टिमवरुन्धन्ति येन वृष्ट्यभावे जगतः संक्षयः सम्भाव्यते। वृत्रो नाम मेघासुरः इति सायणव्याख्यानम्।

त्रिशोको नामर्षिरेनमाराध्य शतमनुचरान्प्रापितवान्। कुत्सश्च रथं लब्धवान्। अयमेव मघवा त्रिशीर्षाणमक्षिषट्कोपेतं त्वष्टुः पुत्रं विश्वरूपमवधीत्।

"स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्"

यथा लोके व्याधो वनान्तर्गतमृगान्वेषणाय श्वानं विसृजति तथैवेन्द्रः पणिभिर्देवानां गोष्वपहृतासु तदन्वेषणाय सरमां देवशुनीं प्राहिणोत्। तया निवेदितासु मघवा तमसुरं हत्वा ताः गाः अलभत।

अयमिन्द्रः आर्यान् विदुषोऽनुष्ठातॄन् जानाति तथाच ये दस्यवः तेषामनुष्ठातॄणामुपक्षपयितारः शत्रवस्तानपि विजानाति संहरति च सुखाय तेषाम्।

इन्द्रः सूर्येण सहान्धकारमपनयति विषमाञ्च पृथिवीं समां करोति। एवं सर्वथा परोपकारकृदयमिन्द्रः प्रतिभाति।

इन्द्रवृत्रयोर्युद्धन्तु भारतीये वाङ्मये बहुविश्रुतं विद्यते। तत्र यास्को बहूनां पूर्वाचार्याणां मतमुद्धरन्नाह—

तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्र उपमार्थेन युद्धवर्णाः भवन्ति। अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णाः ब्राह्मणवादाश्च। विवृद्ध्या शरीरस्य स्रोतांसि निवारयाञ्चकार। तस्मिन् हते प्रसस्यन्दिरे आपः।

सायणस्तु वृत्रस्यावरकस्य वृष्टिनिरोधकस्य मेघस्यासुरस्य वा हन्ता इन्द्रः वृत्रहा इत्युच्यते इत्याह।

वृत्रमाश्रित्य वर्तते विवादो व्याख्यानेषु पाश्चात्यानाम्। तत्र द्वितीये मण्डले एकोनविंशतितमे सूक्ते समायात्येको मन्त्रः।

> अस्य मंदानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिंद्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
> प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमंत॥

अत्र सोमपानेन हृष्यन् मधुकरः वज्रमादायोदकस्यावरकमुदकेनावृतं वाहिं वृत्रं मेघं वा विवृश्चत् येन नदीनां जलानि समुद्रं गन्तुमुपाक्रमन्।

अस्मिन् विषये एकं मतमाश्रित्योच्यते यदिन्द्रः सूर्यस्वरूपः स हि जगतो दृष्टेः आवरकमन्धकारमपाकुर्वन् तीक्ष्णं प्रकाशं प्रसारयति। तदेव वृत्रापाकरणं भवति।

अन्यमतानुसारन्तु दानवरूपेण भयङ्करेण शीतेन नदीनां जलं यदा हिमजडं भवति तदा ग्रीष्मसवितृस्वरूपः इन्द्रः स्वोष्मणा तज्जलं प्रचारयति। बन्धमोक्षं च करोति।

गोः गवां वा मोक्षः सूर्यरश्मीनां मोक्षः इत्यादि व्याख्यायते।

पौराणिकानां मते तु प्रतिमन्वन्तरमिन्द्रपदं परिवर्तितं भवति। अयमिन्द्रः शतक्रतुरित्याख्यायते। तथा च यो हि नृपतिः शतमश्वमेधानां पूरयति स एव तत्पदवीमारोहति। अयं सप्तमो मन्वन्तरः। अत्र पुरन्दरो मेघराजः। शची चास्य पत्नी जयन्तः पुत्रो जयन्ती च पुत्री।

वृष्टेरयमेव प्रभुर्नियन्ता च हरिताश्वैः संयुक्तं रथमारुह्य मातलिनाम्ना सारथिना संयुक्तः सर्वत्र सोल्लासं व्रजति। वृत्रयुद्धप्रसङ्गो यादृशो मनोहारी श्रीमद्भागवतस्य षष्ठे स्कन्धे समुपलभ्यते न तादृङ्मनोरमोऽन्यत्र। भारतीया संस्कृतिः इन्द्रमाश्रित्याद्यावधि निर्बाधं प्रवहति यस्यां हीन्द्रस्य पदवी सर्वातिशायिनी।

अन्ते च वयं स्मरामः

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु।

दर्श-पूर्णमासौ ।

श्रीकृष्णशर्मा

दिवङ्गता वैदिकविद्वद्वरा आहिताग्नयो रटाटे श्रीरामचन्द्रशास्त्रिणो महोदयाः काश्यां सङ्ख्यावत्सु सङ्ख्याततरा आसन्निति के न जानन्ति ? तेषां कीर्तिरूपा मूर्तिरद्यापि विद्यत एव हृद्यानन्दयन्ती विद्यावताम् । आहिताग्नित्वात्तेषां स्मारकौ दर्श-पूर्णमासौ स्वसम्बन्धादिह भवेतामिति, सङ्गतिमाश्रित्य सूत्रभेदेन दर्श-पूर्णमासपदवाच्यप्रधानयागसङ्ख्याभेदः जिज्ञासूनां विवेकाय प्रदर्श्यते ।

तत्र तावद् यागो नाम देवतोद्देशेन द्रव्यत्याग इति, एवं त्यक्तस्य द्रव्यस्य प्रणीते अग्नौ प्रक्षेपस्तु होम इति च प्रसिद्धमेव । तत्र "य एवं विद्वान् पौर्णमासीं यजते, य एवं विद्वानमावास्यां यजते" इति च विद्वद्वाक्याभ्यां ये केचन यागा द्विधा समुदायीकृता "दर्श-पूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत" इति विधिना विधीयते, ते सूत्रभेदेन सङ्ख्यया यथा—

"अग्निमग्नीषोमाविति पौर्णमास्याम् । अग्नीषोमयोः स्थान इन्द्राग्नी अमावास्यायामसन्नयतः । इन्द्रं महेन्द्रं वा सन्नयतः । अन्तरेण हविषी विष्णुमुपांश्वैतरेयिणः" इत्याश्वलायनश्रौतसूत्रम् । अत्र च नारायणकृतविवृतिः "ऐतरेयिणः शाखाविशेषास्त उपांशुयाजमुभयोरपि पर्वणोरन्तरेण हविषी इच्छन्ति" इति । तथा चैतरेयिणामाश्वलायनानाम् आग्नेयोपांशुयाजाग्नीषोमीया इति त्रयः समुदिताः पूर्णमासः । दर्शोऽपि आग्नेयोपांशुयाजौ, यथाधिकारं तत ऐन्द्राग्नाः, ऐन्द्रो वा माहेन्द्रो वा कश्चित् तृतीय त्रय एव समुदिताः । एवं षट् सम्पद्यन्ते । उपांशुयाजोऽत्र वैष्णव एवेत्यन्यदेतत् ।

"संस्थाप्य पौर्णमासीं वैमृधमनुनिर्वपति" इति विहितो वैमृधयागस्तु पूर्णमासस्याङ्गम्, न प्रधानम् । मीमांसायां (अध्या० ४ पा० ३ अधि० ११) तथा व्यवस्थापनात् । तथैव चापस्तम्बश्रौतसूत्रम्—"आग्नेयोष्टाकपालोऽग्नीषोमीय एकादशकपाल उपांशुयाजश्च पौर्णमास्यां प्रधानानि, तदङ्गमितरे होमाः" इति । अत्र हरदत्ताचार्यवृत्तिः— "यद्वा वैमृधः पौर्णमासाङ्गमिति ख्यापयितुमयमारम्भः" इति । नातः षट्त्वानुपपत्तिः ।

अथ बौधायनश्रौतसूत्रम्—"आश्राव्याग्निं यजेति । वषट्कृते जुहोत्यथ चतुर आज्यस्य गृह्णान आह प्रजापतय इत्युपांशु अनुब्रूहीत्युच्चैराक्रम्याश्राव्याह प्रजापतिमित्युपांशु यजेत्युच्चैर्वषट्कृतेजुहोति, अथोपस्तीर्योत्तरस्य पुरोडाशस्यापरार्द्धादवद्यन्ना-

ह्यग्नीषोमाभ्यामिति पौर्णमास्यामिन्द्राय वैमृधायेति च, इन्द्राग्निभ्यामित्यमावास्यायामसन्नयतः, इन्द्रायेति सन्नयतो महेन्द्रायेति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति।" (प्रश्न। सं० १६)

तथा च बौधायनानामपि—

आग्नेयोपांशुयाजौ दर्शपूर्णमासयोः समानौ। तृतीयश्चाग्नीषोमीयः पूर्णमासे, दर्शं चैन्द्राग्न ऐन्द्रो माहेन्द्रो वेति पूर्वेण समानमेव विज्ञायते। वैमृधयागस्तु न प्रधानमित्युक्तमेव पुरस्तात्। तथा च षडेव। उपांशुयाजः परं प्राजापत्य इत्येतावदेव। किं च"अथोपस्तीर्य द्विः पुरोडाशस्यावद्यन्नाहेन्द्रायानुब्रूहीति महेन्द्रायेति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति, द्विः पुरोडाशस्यावद्यति, द्विः शृतस्य द्विर्दध्नोऽभिधारयति प्रत्यनक्त्याक्रम्याश्राव्याहेन्द्रं यजेति महेन्द्रं यजेति वा यदि महेन्द्रयाजी भवति, इति (प्रश्न १ सं० १७) तत्रैव ऐन्द्रे माहेन्द्रे च सान्नाय्ये सह पुरोडाशोऽप्यस्तीत्यन्यदेतत्।

अथ कात्यायनश्रौतसूत्रम्—

"आग्नेयं चतुरो मुष्टीन्, एवमग्नीषोमीयम् (२-३-२३°/०२१) पुरोडाशान्तरेण अग्नीषोमीयावुपांश्वाज्यस्य विष्णुर्वा, अमावास्यायां होत्राम्नानात् (२-३-२३°/०२४) तत्रैव पुनः सान्नाय्यमधिकृत्य "ऐन्द्रं भवति माहेन्द्रं वा" इति (४-२-१०)

अत्र वृत्तिः—"दर्शेष्टौ आग्नेयैन्द्राग्नपुरोडाशयागयोर्मध्ये अग्नीषोमा वाज्येनोपांशु यजेत, अथवा विष्णुमाज्येनोपांशु यजेतेति विकल्पः। व्यवस्थितोऽयं विकल्पः। सान्नाय्ययाजिनोऽग्नीषोमीययागः। असान्नाय्ययाजिनो विष्णुर्देवता, शाङ्खायनसूत्रे तथैवोक्तत्वादिति" (१-८-८) तथा च कात्यायनसूत्रानुसरणे—आग्नेयोपांशुयाजाग्नीषोमीयाः पूर्णमास इति, आग्नेयोपांशुयाजौ द्वौ, तृतीयः ऐन्द्राग्न ऐन्द्रो माहेन्द्रो वेति दर्शश्चेति पूर्वेण समानमेव। केवलमुपांशुयाजेऽग्नीषोमौ विष्णुर्वेति देवताविकल्पो व्यवस्थित इति। एवं उक्ता दर्शेऽप्युपांशुयाजपक्षाः।

अत्र दर्शे उपांशुयाजमधिकृत्य भाट्टचिन्तामणिः "जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यदन्वंचौ पुरोडाशौ। उपांशुयाजमन्तरा यजति" इति विधावन्तरा पदार्थं परामृश्य दर्शपूर्णमासयोरुभयोरपि उपांशुयाजपक्षं लक्षयति। यथा—"अत्रान्तरा पदस्य पौर्णमासीस्थपुरोडाशद्वयान्तरालपरत्ववत् अमावास्यास्थहविर्द्वयान्तरालपरत्वस्यापि सम्भवात् अमावास्यायामप्युपांशुयाजः कार्य इति भगवानाश्वलायनः। न च पुरोडाशद्वयनैरन्तर्यप्रयुक्तजामितापरिहारार्थत्वस्य पूर्वमुक्तत्वादमावास्यायां तदभावात् कथमुपांशुयाजविधानमिति वाच्यम्। भगवद्बोधायनेन सान्नाय्ये पुरोडाशस्यापि विधानात्, सर्वेषां मते असन्नयत ऐन्द्राग्नपुरोडाशसत्त्वेन च तदुपपत्तेः। न च पाक्षिकैन्द्राग्नमा-

दाय नित्यवच्छ्रुतान्तरालसम्पत्तिर्न युक्तेति वाच्यम्। तर्हि पौर्णमास्यामप्यन्तरालाना-पत्तेः। असोमयाजिनोऽग्नीषोमीयनिषेधेन पाक्षिकत्वस्य तुल्यत्वात्। एवं च पूर्वाधि-करणोक्तं समप्राधान्यं अमावास्यासंयुक्तविद्वद्वाक्येन चतुर्णामनुवादात् सप्तानामिति द्रष्टव्यम्" इति।

अत्र दर्शे तृतीयस्थाने ऐन्द्राग्नं सान्नाय्ययागं वेति द्वयगणनया चतुर्णामिति, सप्तानामिति च। असोमयाजिनोऽग्नीषोमीयपुरोडाशनिषेध आपस्तम्बसूत्रे दर्शयिष्यते।

अथ हिरण्यकेशिश्रौतसूत्रम्—

"अग्निमावह प्रजापतिमावहाग्नीषोमावावह""""इति पौर्णमास्याम्। नामा-वास्यायामुपांशुयाजो विद्यते। ऊर्ध्वमाग्नेयस्यावाहनादिन्द्राग्नी आवहेत्यसन्नयतः, इन्द्र-मावहेति सन्नयत इन्द्रयाजिनो, महेन्द्रमावहेति महेन्द्रयाजिनः। (सत्या० श्रौ० सू० प्र० २१ पटल २)

तथा च हिरण्यकेशिनाम्—

आग्नेयोपांशुयाजाग्नीषोमीयास्त्रय एव पूर्णमासः। दर्शस्तु-आग्नेयः प्रथमः, द्वितीय ऐन्द्राग्नो वा ऐन्द्रो वा, माहेन्द्रो वा यथाधिकारं कश्चिदिति द्वावेव। एवमाहत्य पंचैव। उपांशुयाजः प्राजापत्य इत्यन्यदेतत्।

अथापस्तम्बश्रौतसूत्रम्—

"नासोमयाजिनो ब्राह्मणस्याग्नीषोमीयः पुरोडाशो विद्यते" इति। "नासोमयाजी सन्नयेत्, सन्नयेद्वा, नागतश्रीर्महेन्द्रं यजेत।" "त्रयो वै गतश्रियः शुश्रुवान् ग्रामणीः राजन्यः इति।" और्वो गौतमो भारद्वाजस्तेऽनन्तरं सोमेज्याया महेन्द्रं यजेरन्, यो वा कश्चित्" "आज्यहविरुपांशुयाजः पौर्णमास्यमेव भवति" इति च।

अत्र च विषये मीमांसायां अध्या० ५ पा० ४ अधि० ४–८ योः पूर्णमासे अग्नीषोमीयपुरोडाशस्य दर्शे सान्नाय्यस्य च सोमोत्तरत्वमेवेति निर्णीय, भाट्टदीपिकाया-मुच्यते—"यत्तु याज्ञिकानां प्रागप्यनुष्ठानम्, तच्छाखान्तरे सान्नाय्याग्नीषोमीययोः प्रागपि विधानादवगन्तव्यम्" इति। तत्र च प्रभावली–"शाखान्तर" इति। तत्-सन्नयेत् "तथा" "अग्नीषोमाविति पौर्णमास्या" मित्याश्वलायनसूत्रे सोमयाज्यसोमयाजि-साधारण्येन च सान्नाय्याग्नीषोमीययोर्विधानादित्यर्थः। तत्र येषामाश्वलायन–कात्यायन-हिरण्यकेशि-बोधायनानां सूत्रे विशेषेणाम्नातं तेषामेवासोमयाजिनोऽग्नीषोमीयानुष्ठानम्। येषान्त्वापस्तम्बानां सोमयाजिब्राह्मणस्याग्नीषोमीयः पुरोडाश इत्यापस्तम्बसूत्रात् असो-मयाजिनो निषेध एव, तेषामसोमयाजिनो न तदनुष्ठानम्। अथवा सर्वेषामेव विकल्पः इति तु वादान्तरम्"। इति।

"नागतश्रीरित्यादेरयमर्थः कृतः। सोमयाजी संवत्सरमिन्द्रं यजेतेति, ततः पश्चात् महेन्द्रमिति श्रूयते। तत्र गता प्राप्ता श्रीर्येषां ते, शुश्रुवःप्रभृतयः, ये चाताथभूता अपि औवंप्रभृतयः सोमयाजिनस्ते महेन्द्रमेव, नैवेन्द्रं सम्वत्सरमपि यजेरन्। अन्ये तु सोमयाजिनः इन्द्रमेव ऊर्ध्वमपि यजेरन्, नैव महेन्द्रम्। अथवा—सर्वेषामेव सम्वत्सरादूर्ध्वं महेन्द्रो विकल्प्यत इति।

तथा चापस्तम्बानाम् :—

आग्नेयोपांशुयाजौ केवलं द्वावेव वा, अग्नीषोमीयस्तृतीयोऽपि वेति त्रयोऽपि वा यथाधिकारं पूर्णमासः। दर्शस्तु आग्नेयः एकः, द्वितीयश्च ऐन्द्राग्नो वा ऐन्द्रो वा माहेन्द्रो वेति द्वावेव। एवमाहत्य चत्वार एव वा पंचैव वा दर्शपूर्णमासौ न षट्, इति।

एवं प्रायः प्रथिताभिप्रायाणां केषांचन सूत्राणां भेदेन सङ्ख्याभेदो निवेदितः। अथैतेषां फलसम्बन्धमधिकृत्य किंचित्समाहृत्य लेखः समुपसमाह्रियते।

ननु पौर्णमास्यधिकरणे विद्वद्वाक्याभ्यां द्विधा समुदायीकरणं साधयित्वा समुदायीकृतानां षण्णामेव फलसम्बन्ध इति व्यवस्थाप्यते। तत् कथं पंचैव वा चत्वार एव वा यागाः फलाय कल्पेरन्निति चेत्।

नहि तत्र षण्णामेवेति व्यवस्थाप्यते। किंतु "दर्श—पूर्णमासाभ्यामिति" द्विवचनेन समुदायद्वयस्यैव फलसम्बन्ध इत्येव व्यवस्थाप्यते यथाश्रुतम्। समुदायद्वयं च त्रिकद्वयेन वा द्विकद्वयेन वा त्रिकेनैकेन द्विकेनैकेन चेति मिलित्वा वा यथासूत्रम्। अत एव भाट्टचिन्तामणौ "षण्णामिति। पौर्णमास्यमावास्यासंज्ञकसमुदायद्वयस्येत्यर्थः। अत एवासोमयाजिनो यजुःशाखिनः पौर्णमास्यामग्नीषोमीयस्य, अमावास्यायामुपांशुयाजस्य चाभावेऽपि, आश्वलायनानामसोमयाजिनामग्नीषोमीयसत्त्वेऽपि तेषाममावास्यायामुपांशुयाजसत्त्वेऽपि च तत्तदधिकृतसमुदायद्वयस्य फलसम्बन्धसिद्धिः। षट्त्वविवक्षणे तेषां फलसम्बन्धानापत्तेरिति हिरण्यकेशिसूत्रव्याख्याने विस्तरेण प्रपंचितमस्माभिः"। इति। तस्मात् षण्णामिति सम्भवस्थलाभिप्रायमात्रम्।

अत एव पंचमस्य चतुर्थे चतुर्थाष्टमाधिकरणयोरग्नीषोमीयपुरोडाशस्य सान्नाय्यस्य च सोमोत्तरत्वमेवेति निर्णीय, ततः पूर्वं दर्शपूर्णमासयोः यस्य यावत्स्वधिकारस्तस्य तावद्भ्यः एव फलसिद्धिरित्यभिप्रेयते। तथा परस्तादपीति सर्वं समंजसम्।

इत्थमस्मिन् स्मारकग्रन्थे आहिताग्नेस्तस्य महानुभावस्य स्मारककृतौ दर्शपूर्णमासौ मीमांसकयाज्ञिकहृद्गतं तत्त्वं स्म जू घुषतान्तरामिति। शम्।

शिवस्तुतिः

श्री १००८ मेरुपीठाधीश्वर शंकराचार्य
श्रीमहेश्वरानन्द सरस्वती, वाराणसी ।

यं नत्वा कृतकृत्य एष निवहः सञ्जायते प्राणिनां
तं नत्वा कुसुमैश्चिराय गमितः संस्मर्यतां दर्पकः ।
इत्यन्तःप्रियताप्लुतामृतझरीवर्षो सहर्षोऽस्ति यः
तस्मै श्रीगुरवे सगौरवगिरो मान्याय मन्यामहे ॥ १ ॥
आर्त्तानां परिरक्षणाय करुणापूराय पूर्णात्मने
दीनोद्धारपरायणाय वरदोत्तंसाय दिग्वाससे ।
सर्वेशाय सुमङ्गलाय गिरजाधोशाऽऽशुतोषाय ते
शश्वत् प्राञ्जलयः सबाष्पनयना वार्ताय वर्त्तामहे ॥ २ ॥
ईष्टे विश्वमलीयसां त्रिजगतां चेष्टार्थमाचेष्टते
सृष्टिर्वेष्टयते विभूतिविभवैर्भास्वद्विभाभास्वरैः ।
चष्टे लोकविभावनाव्यवहितं वेदान् विधात्रे स्वय-
स्तस्मै सर्वविमुक्तिदाय विगलद्बाधाय नाऽऽधामहे ॥ ३ ॥
जीर्णारण्यमिव त्यजन्ति यमिनः कान्तं गृहं काञ्चनं
सर्वं कर्म समर्पयन्ति गृहिणः कृत्वा तपो दुष्करम् ।
तीर्थव्रातमुपासते सुकृतिनो यम्प्राप्तुमेकान्तिन-
स्तस्मै दर्पकदर्पदारणलसद्विद्याय विद्यामहे ॥ ४ ॥
वैकुण्ठो वरिवस्यया प्रमुदितां गङ्गां समर्प्याङ्गजां
मोहिन्याऽद्भुतरूपया रहसि यं लावण्यलीलार्णवम् ।
सन्तोष्येश्वरतामशिश्रियदसौ श्रीविश्वनाथो विभु-
र्भूयाद् भूरिविभूतिभाग्यभृतये वो भूर्भुवर्भासितः ॥ ५ ॥
श्रीरामप्रमुखाँस्त्रीलोकजयिनः पुत्रान् दिगीशप्रभान्
प्रापत् पङ्क्तिरथो यमेकमनिशं विश्वेशमाराधयन् ।
सोऽयं सर्वजगत्पतिः परतरो योगाधिपानामपि
प्रारब्धं परिवर्त्य नैजचरणाम्भोजे स्थितिं साधयेत् ॥ ६ ॥
काम्योऽकिञ्चनकाञ्चनाद्रिरपरो यश्चिन्तितो जातुचित्
सद्यो द्योतयते दयार्द्रहृदयः स्वान्तं नितान्तं सताम् ।
शश्वद् विद्यत एव यस्य महिमा नेदिष्ठ एवाऽस्त्यसौ
दैन्यं न्यग् विदलय्य मामशरणं शीर्णं शरण्यो नयेत् ॥ ७ ॥

दारिद्र्यं नहि दन्दहीति कुटिला मोहिन्यजन्या यथा
नाक्षेपा द्विषतां सृजन्ति विषमं क्षोभं यथा सङ्गिनः ।
व्यग्रत्वाय न जायतेऽत्र निखिलं यादृक् त्वदङ्घ्रिच्युति—
स्तद्वेनिर्मलनिर्निमित्तकरुणाक्षीणं क्षणं वीक्ष्यताम् ॥८॥

क्वोत्तंसः ससुपर्वणां गुणगणालङ्कारचूडामणिः
सृष्टिस्थानलया यदीक्षणवशात् प्रादुर्भवन्ति क्षणात् ।
कायं मन्दमतिः कवित्त्वयशसां प्रेप्सापरीतान्तरः
किन्तु श्रीकरुणानिधिः स भगवान् साफल्यमाधास्यति ॥९॥

सन्तापं शमयन् निभालनवशाद् वृष्टिं विनाप्याहरन्
निर्वाणं परमं जयन्नतितरां गाढान्धकारोदयम् ।
कामाद्यङ्कुरसम्भृतं क्षितिभरं संशोषयन् सर्वतो
नव्यः कोऽपि घनाघनोऽभ्युदयते तृप्यन्तमापीयताम् ॥१०॥

धन्याय ध्वनिनास्महे त्रिभुवनाध्यक्षाय वीक्षामहे
वर्ण्याय प्रवृणीमहे जनिजुषां प्रेष्ठाय तिष्ठामहे ।
गौरीशाय रमामहे दशरथाराध्याय बुध्यामहे
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रवंदितपदद्वन्द्वाय वन्दामहे ॥ ११ ॥

वेदानामशतैर्नमो विदधते प्रामाणिकं कुर्वते
स्वात्मानं न परं नमन्ति कथमप्येकान्तनिष्ठां गताः ।
तस्मै सर्वमहेश्वराय महसे शश्वत्प्रकाशात्मने
शेषाशेषविशेषवैभवभृते भूयो नमस्कुर्महे ॥ १२ ॥

उज्जीर्णं धनुरुत्क्षिपन् रघुपतिः क्षिप्तं विशीर्णं पुन-
र्यस्यापारकृपोन्महीयसितरां कीर्तिं चिरस्थायिनीम् ।
सार्द्धं श्रीमिथिलाधिराजसुतया सौन्दर्यसारश्रिया
सानन्दं समगच्छदद्भुतगुणे तत्रास्मि नित्यं नतः ॥ १३ ॥

सर्वं स्वस्वनिरूपकाधिकरणत्वेनाभिमन्तव्यतां
यातेऽभावमनश्वरं वहति यत्तज्जाड्यतः सिध्यति ।
सीमित्वाद् विषयत्वतश्च विरुधि-प्रत्यक्-परैक्याश्रये
पूर्णे ब्रह्मणि शाश्वते भवतु मे साक्षात्कृतिः केवले ॥ १४ ॥

मूर्तिर्या प्रथते समस्तजननी, या जीवनं प्राणिनां
या सञ्चूर्णयते तमस्ततिमिदं या प्राणदा प्राणिनाम् ।
शब्दो यं समवैति ये जनयतो नक्तन्दिवं स्पर्धया
या प्रत्यक्त्वविभाविताभिरभितः श्लिष्टो मदिष्टं स्पृशेत् ॥१५॥

शेषाय प्रणतोऽस्मि यो भगवतः शीर्षे किरीटायते
कण्ठे माल्यगुणायते कटितटे काञ्चीयते शोभनः ।
सौभाग्यात् कटकायते चरणयोर्हस्तेऽङ्गुलीयायते
फूत्कारैर्गिरिजापराधशमने यस्तालवृन्तायते ॥ १६ ॥

श्रीभक्तप्रवरान् मृकण्डुतनयं शैलादिनन्दीश्वरं
श्वेतं धातृविधानतोऽल्पवयसः संस्थास्यमानायुषः ।
पोतान् दुग्धमुखाँस्तपस्यभिरतान् कृत्वा चिरञ्जीविनः
कार्त्तान्तीमथ वागुरां शमयते मृत्युञ्जयायाऽऽद्रिये ॥ १७ ॥

पीयूषांशुसुधासरोवरभरे तद्ब्रह्मरन्ध्राद्भुते
व्युत्तानास्यसहस्रपत्रविकसत्पद्मासने शोभनम् ।
सौन्दर्योदितसागरप्रमदया गौर्या समालिङ्गितो
गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गभङ्गसुभगो विश्वेश्वरः श्रीयताम् ॥ १८ ॥

सान्द्रानन्दरसाप्लुतः स भगवान् सर्वज्ञचूडामणि-
श्चन्द्रोद्भासितमूर्धजः स्मितसुधासाराभिवर्षी घनः ।
धीरैर्गन्धसमीरणैः समुदयन् इजम्पैः समासेवितो
ध्यातव्यः करुणारुणः प्रभुवरो देवाधिदेवः शिवः ॥ १९ ॥

सैकः सेव्य उमानुरागरसिकस्तं संश्रयन्ते सुरा-
स्तेनोत्तम्भनमस्य सर्वजगतस्तस्मै समर्प्यं समम् ।
तस्मान्नन्दति युक्तयोगिनिवहस्तस्यार्चनाऽऽनन्दिनी
तस्मिन्नायततां सदा मम मनो नित्योत्सवे ब्रह्मणि ॥ २० ॥

रे रे मत्त मनोगजेन्द्र सुहृदो मे स्वल्पमाकर्ण्यता-
मध्युष्टाधिकतां स्पृशन्ति दिवसा नैष्यन्ति ते सर्वथा ।
अद्यत्वेऽपि तथैव ते यदि दृशा विद्येत चेत्सङ्गिनी
तर्ह्युत्तालचतुर्भुजः शरणदो न द्वैभुजी रक्षिका ॥ २१ ॥

दीनं हीनमतिं प्रतप्तमनिशं दुर्वासनादूषितं
दोषाक्रान्तमपारदुःसहपरीवादाभिभूतं शठम् ।
अन्तःसान्द्रमलीमसं पशुपते ! हे नाथ ! सर्वेश्वर !
भ्रान्तं मामनुकम्पया विपुलया सद्यः समाश्वासय ॥ २२ ॥

कान्यत्र प्रव्रजामि कस्य शरणं गच्छामि को रक्षकः
कस्मै स्वां कथयामि दैनिकदशां को दत्तदृष्टिर्भवेत् ।
तद्विश्वम्भर ! दीनहीनदलितोद्धारव्रतं गृह्णते
तुभ्यं स्वात्मसमर्पणं प्रविदधे सर्वात्मना हे प्रभो ! ॥ २३ ॥

नो दर्शैर्न च पौर्णमासरचनैरग्नीनुपासिष्महि
प्रोच्चैर्विश्वजिता यजामहि न वा सर्वस्वदानोद्धुराः ।
नैवाऽऽतन्महि सर्वयाजकगणं सत्रं सहस्रं समा-
स्तस्मात् ते चरणाम्बुजे निपतितं गौरीपते !! पाहि माम् ॥२४॥

सर्वैर्यः समुपास्यते चरणयोर्देवैर्हरीन्द्रादिभि-
र्यो वेदैरधिशय्यते शतमुखैः शश्वन्तमद्भिर्विभुः ।
स्वाराज्यं च परित्यजन्ति यतयो यद्भूय बद्धस्पृहा-
स्तस्मै विश्वधुरन्धराय गिरिजाधीशाय नित्यं नमः ॥ २५ ॥

नृत्यद्भूतपिशाचभैरवगणं कालीकलासंकुलं
भ्राम्यद्रुद्रसहस्रबाहुविकटं प्रेङ्खत्क्वणत्किङ्करम् ।
भेरीमड्डुमृदङ्गझर्झरघनध्वानाद्भुतं ताण्डवं
माद्यन्नन्दिगणेशषण्मुखमुखं भार्गं भवेद् भूतये ॥ २६ ॥

साट्टङ्कारमहाट्टहासविगलद्धारासहस्रोद्धुरा
ब्रह्माण्डातिविशङ्कटोदरलसत्कल्लोलमालाकुला ।
अस्तव्यस्तसमस्तसृष्टिविकटा गङ्गाप्रपातोद्धता
यस्याऽनन्तजटाटवीविघटिता सर्वेश्वरः सोऽवतात् ॥ २७ ॥

ध्येयश्चन्द्रकिशोरशेखरधरो गङ्गोत्तमाङ्गः शिवः
काकोलाङ्कितकण्ठनीलसुषमो नेत्रत्रयी सुन्दरः ।
सर्पोद्भासितबाहुवल्लिवलयो भस्माङ्गरागोल्लसन्
सर्वज्ञः करुणार्णवः स्मितसुधामाधुर्यधुर्यो विभुः ॥ २८ ॥

प्रासादे नवहेमरत्नरचिते सिंहासने दुर्लभे
कैशोराकृतिरुज्ज्वलच्छविभरालङ्कारकान्तो हरः ।
चञ्चच्चारुचतुर्भुजो जयरवैर्देवाधिदेवैः स्तुतः
स्मर्तव्यो गिरिराजराजतनया नेत्रोत्सवानन्दितः ॥ २९ ॥

कश्चन्द्रस्य सुभाग्यमाकलयितुं शक्नोति यो मुग्धया
श्रीगौर्यैककरेण रात्रिकरहो गोप्तुं समुत्सार्यते ।
कन्दर्पैककलाविलासरसिकेनेशेन हस्तान्तरै-
राकृष्टो भवति क्षणाद् विस्मरैर्ज्योतिष्प्ररोहैर्नवैः ॥ ३० ॥

विष्णुं नर्मवचोभिरात्मजनुषं सम्मानसम्भाषणै-
रिन्द्रं सुस्मितवीक्षणैः सुरगणाँस्ताम्बूलदानादिभिः ।
दिव्या अप्सरसः कलासु कुशलाः सङ्गीतनृत्ये क्षणै-
रानन्दोत्सवनिर्भरो विजयते सर्वेश्वरो मोदयन् ॥ ३१ ॥

खेलन्कौतुकमण्डपे गिरिजया मेनां समुल्लासयन्,
सर्वा वञ्चनतत्पराः प्रहसिता रामा जयन् सर्वतः ।
सौन्दर्याद्भुतसागरः स्मितसुधासिन्धुः प्रसन्नः शिवः
शैलाधीश्वरसंस्तुतोत्सवरसः प्रीणातु विश्वेश्वरः ॥ ३२ ॥

तं नित्यं प्रणमामि तस्य शरणं गच्छामि तं प्रार्थये,
तं सुप्तः प्रलपामि तस्य पुरतो नृत्यामि तं संश्रये ।
तोष्टूयेऽयुतशस्तमेव च दरीदृश्येनुतं सर्वत-
स्तं विश्वेशमुमेशमेकमभितः शश्वत्प्रपत्तुं यते ॥ ३३ ॥

कस्माद् वृद्धतमाय दुश्चरमिदं चीर्णं तपः सुन्दरी
प्रकान्तः परिपृष्ट एव विभवत्येतां विभङ्क्तुं क्रियाम् ।
एतच्चञ्चलचातुरीयचरमां प्रौढिं प्रमत्तो गृणन्
संश्लिष्यन् मुहुरद्रिराजतनयां लोलः शिवः श्रीयताम् ॥ ३४ ॥

बाहुभ्यां तरितुं समर्थयति यः कल्लोलमालाकुलं
पारावारमपारनक्रमकरग्राहाकुलं साहसी ।
सोऽपि त्वच्चरणारविन्दमधुराधारं विना न क्षमी
कैवल्यं समवाप्तुमीश तदिमं भक्त्याऽनुगृह्णातु माम् ॥ ३५ ॥

तं पश्चादनुसन्दधामि, पुरतः पश्यामि लीलोत्सवं
ध्याने पादरवं शृणोमि समये तं भोजयन् विस्मये ।
स्वप्ने तं पदयोः स्पृशन् प्रतिदिनं जागर्मि मर्माहत-
स्तन्मे श्रीगिरिशन्ततान्तमनसः शान्त्यै स्वमाविष्कुरु ॥ ३६ ॥

सोढुं शक्यत एव नैष समयः स्तोकोऽपि काकोलिकं
सन्तापं जनयल्लुँठत्प्रतिभटः कुर्वीय किं धूर्जटे ।
विक्षुब्धोऽस्म्यति विह्वलो विलुलितः पीडाभिरान्दोलितः
तन्मां धाव दयानिधे पशुपते त्वामेकमेवाश्रितम् ॥ ३७ ॥

का ते वल्गति मूर्धनि प्रियतमा, नित्यं त्वया दृश्यते,
मीमांसां चिररक्षितां प्रकटये, सा न्यायमादेक्ष्यति ।
किन्तु त्वद्वचनामृतैरपगतामेतां विधित्से विभो
अङ्गीकृत्य न सञ्जहामि विहसन् क्रीडाहरः पातु वः ॥ ३८ ॥

मातुं न प्रभवन्ति यद्गुणगणा ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
शुष्कं नीरधिसप्तकं भूतमभूद् यत्क्लेशलेशाम्बुभिः ।
यस्याऽज्ञावशगा त्रिलोकजननी शक्तिः पराम्बा शिवा
सोऽयं सर्वजगत्प्रभुः स भगवान् पुष्णातु नः शङ्करः ॥ ३९ ॥

नेमे कालघटाटवीविघटिता अंशाः, प्रयान्त्यग्रतः
किन्त्वेतान्निजजीवनस्य शकलान् लुम्पन्ति शालावृकाः ।
मित्र त्वं शिथिलं श्रितस्तटमिमं साद्यस्कपातोन्मुखं
स्मारं स्मारमिदं द्रुतं व्रज सखे ! गौरीशपादाम्बुजम् ॥ ४० ॥

बाह्यं यद्युपलभ्यते कथमपि स्तोकं जगन्मण्डलं
नान्तर्विस्तृतमीक्ष्यतेऽतिविपुलं साभासमत्यद्भुतम् ।
नेत्रादेः स्फुरणं तथा शकुनयः स्वप्नाः प्रमिण्वन्ति तत्
सर्वस्यास्य निदानमीशमनिशं शैवं महो मन्महे ॥ ४१ ॥

विद्वांसोऽपि सुनिर्वृता अपि पराक् सर्वं प्रतीचिस्थितं
पश्यन्तोऽपि यमेव सुन्दरवरं मुग्धेन्दुचूडामणिम् ।
रत्नालङ्कृतिमञ्जुलं प्रमुदितं सिंहासनाधिष्ठितं
गौरीशं स्पृहयन्ति तं प्रभुमिमं विश्वेशमेकं भजे ॥ ४२ ॥

सूक्ष्मो योऽनभिवीक्षितः, श्रुतिगणैर्यापि योऽन्विष्यते
प्राचार्यैर्निरचायि यो न विविधैस्तर्कायुधायोधनैः ।
सोऽयं दिव्यदयानिधिः प्रभुवरो भक्तैः समभ्यर्थितो
लावण्यामृतसागरोऽभ्युदयते श्रीविग्रहः शङ्करः ॥ ४३ ॥

स्यूता वर्ष्मणि मारुतस्य कणिका नीरस्य तद्विग्रहे
धाम्नस्ताभिरलं न कोऽपि भवितुं शक्नोति सिद्धः कृती ।
किन्तु प्राक् प्रकटीकृताभिरितिवन्नैरूप्यसारूप्ययो-
र्वैशिष्ट्यं समवेक्ष्यते तदिह नो साम्बे रतिर्ब्रह्मणि ॥ ४४ ॥

सोमः सप्रमथः सनन्दिगणपस्कन्दो दयाम्भोनिधि-
र्भिल्लो यस्य कृते बभूव भगवान् युद्धात् तुतुक्षुः शिवः ।
यस्मै साधु समर्पयन्निजमहासंहारमस्त्रं विभु-
स्तेन प्रह्वयताऽर्जुनेन मुदितो दृश्येत दृश्याधिपः ॥ ४५ ॥

वाग्मीत्यत्र पदे गणेशयुगली साध्वी किमेकाथवे-
ति प्रश्ने विहिते कचेन ऋषिणा प्रोक्तं दधीचा द्वयम् ।
गादेशेनमिनेकमेतदपरं ग्मिन्प्रत्ययादुत्थितं
शृण्वन्वादमिमं विवाहमहसि प्रीतो हरः पातु वः ॥ ४६ ॥

चञ्चद्रत्नमरीचिवीचिनिचये वैवाहिके मण्डपे
माङ्गल्यध्वनिवाद्यमञ्जुमहिते विद्वत्प्रकाण्डाञ्चिते ।
ईशः पीठवरस्थितः सुरगणे सानन्दमासेदुषि
प्रादुर्भूतमिदं गिरोऽवतरणं शृण्वन् ममेष्टो विभुः ॥ ४७ ॥

शर्वः श्रीपरमेश्वरः, सुरगणाः शर्वं सदोपासते,
शर्वेण प्रथिता श्रुतिर्भगवती, शर्वाय शश्वन्नताः।
शर्वाद् विश्वमुदेति विस्तृतमिदं, शर्वस्य सर्वे वशाः,
शर्वे याति विलीनतां तदखिलं त्वं ब्रह्म शर्व प्रभो ॥ ४८ ॥

चैतन्यात्मकमेकमद्वयमतद्भिन्नं महाशक्तिमत्
कूटस्थं परमास्पदं कणकणव्याप्तं स्वसंवेदनम्।
सर्वोपाधिविवर्जितं श्रुतिमहैदम्पर्यनिष्ठाश्रितं
ब्रह्मानन्दमुपस्तवीमि सुचिरं नित्यं शिवं सुन्दरम् ॥ ४९ ॥

कोऽर्थो नश्यति नाभिधीयत इदं पृष्टो वचश्चन्द्रमा
इन्द्रेणोऽत्तरयाम्बभूव जनितोऽभावोऽवचिच्छेद याम्।
कर्त्रादीनधिरोहति प्रतियुनक्त्येषा क्रियाऽभीप्सिता
ध्यायँस्तर्कपरम्परामिति मुदा पूर्णेश्वरो दृश्यताम् ॥ ५० ॥

सान्द्रानन्दसुधासमुद्रलहरी लावण्यलीलोल्लसन्—
नैजोत्सङ्गविराजमानसुभगां गौरीं रहो दुर्लभाम्।
माद्यद्यौवनसुन्दरारुणरुचं क्रीडाविलासोत्सवै—
र्व्रीडां दूरगतां विधातुमभिकः खेलन् हरो मोदते ॥ ५१ ॥

श्रूयेथा भगवन्नमोघुकमनः श्रूयेमहि प्राक् च्युता
अङ्गैः षड्भिरुपासितोऽयमपरे स्पृष्टाः कर्णैर्नापितैः।
त्रैलोक्यश्रियमुद्वहन्नविरतं त्वन्ये न शौवस्तिकाः
किन्तु त्वच्चरणारविन्दमधुरास्वादैर्न मुच्येमहि ॥ ५२ ॥

श्रीविश्वेश्वर विश्वनाथ करुणाम्भोधे परानन्दथोः
कैलासाधिपते गणाधिपगुरो देवाधिदेव प्रभो।
श्रीनारायणसेव्यमानचरणाम्भोजप्रपन्नार्त्तिहन्
नित्यं रक्ष गिरीन्द्रजाप्रियतम त्वन्मात्रबद्धोत्सवम् ॥ ५३ ॥

पत्त्रैस्त्वं सहकारमञ्जलरवैर्जोगर्ज्यसे मागधै—
र्मन्दं प्रातरुपेत्य दक्षपवनैरुद्वाह्यसेऽङ्ग व्रजे।
नित्यं मुग्धमधुव्रतैः स्तुतिकथालापैः समाराध्यसे
नूनं प्राग् गिरिराजराजतनयाधीशः समार्चि त्वया ॥ ५४ ॥

यैस्त्वं नासि समर्चितो न च नुतो नाध्यायि यैः सादरं
नान्विष्टोऽनिशमास्थया प्रतिगुहं पुण्याचलानां पुनः।
तीर्थानि प्रपतद्भिराश्रितयमैर्नोपासि गाढं विभु-
स्तैः किं श्रान्तिपरायणरपि सुखं भुज्येत कोट्युद्भवैः ॥ ५५ ॥

वश्या तस्य सरस्वती भगवती देवी रमाऽग्रे स्थिता
श्रीकृष्णोऽभ्युपपद्यते तमनिशं देवा नमस्यन्ति तम् ।
सूर्यादिग्रहमण्डलो विनयते यत्स्वान्तमादित्ससे
क्वेथं दीनदयानिधिः प्रभवतो लभ्योभवत्तः परः ॥ ५६ ॥

बृंहन्त्यद्भुतमञ्जुमण्डपमणिच्छायच्छटोद्यद्घटा-
नागानां मदशालिनां कलकलः संश्रूयते वाजिनाम् ।
जेतॄणां हरितो हरेर्मदुरया दैनन्दिनः सुन्दरो
वाद्यैर्मङ्गलशंसनैः प्रतिदिनं जागर्त्ति रीशः स्रजे ॥ ५७ ॥

त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गरिङ्गणरमाम्भोधिप्रगर्जारवा
उत्तालप्रतिनिस्स्वनप्रतिपदव्याप्ताभ्रगर्भोद्धुराः ।
नित्यं सौरभमम्बुजाक्षविलसद्वाञ्छासमाचुम्बितम्
श्रीशम्भोश्चरणारविन्दभरितं गायन्ति नित्योत्सवाः ॥ ५८ ॥

तीर्थं यान्ति शुचिव्रताः प्रतिदिनं दानं समातन्मते
स्वप्नेऽपि स्पृहयन्ति नो परवधूं पूर्तेष्टमाबिभ्रते ।
अत्यर्थं तप आचरन्ति शुचयोऽर्थेपूपकारे रता-
भक्तास्ते भगवन् स्वभावमधुरा विद्याव्रतस्नायिनः ॥ ५९ ॥

आशुष्यत्तनवः पटच्चरभृतः श्वभ्रप्रविष्टेक्षणाः
क्षुत्तृड्विह्वलचेतसो दश दिशः शून्याश्चरन्तो नराः ।
सर्वाग्रे पशवो भ्रमन्ति परितः क्रन्दन्ति मुह्यन्त्यथो
दुर्भिक्षे ग्रसति प्रभोऽत्यकरुणे कस्त्वामृते रक्षकः ॥ ६० ॥

शीघ्रं रक्षतु नाथ भारतमिदं प्राकम्पनैर्झम्पनैः
पाश्चात्यैः परिपीडितं विलुलितं दुर्भिक्षभीमाक्रमैः ।
वाता वान्तु मनोहराः फलभरैः शस्यैश्च भूः शोभतां
कारुण्यामृतसागरः प्रभुवरः प्राणन्तु सम्यग्जनाः ॥ ६१ ॥

किं क्रन्दामि समुच्चकैः किमथवा शृङ्गाद्रिरेरुन्नता-
दाक्रोशन्निपतामि किं ज्वलनसात्कुर्वे स्वमुन्नासितः ।
पीडाभिः परितोऽनिशं कवलितो विन्दे क्षणं नो शमं
तन्मां दीनदयानिधे निजकृपालेशेन निर्वापय ॥ ६२ ॥

च्चयं तिष्ठति भूतले गगनमुड्डीनो विदूरं खगो
धावत्येवमपास्य मुग्धमधुरं दुग्धात् सुधा फेनिलात् ।
मृद्वीकारससिन्धुसारविमदीकारक्रियाकौशलं
स्वात्मानन्दमहोत्सवं विभुभवं माया जगद् भ्राम्यति ॥ ६३ ॥

दैन्योदन्वति हैमनीव रजनी भीषेव सार्पी शुके
पद्मिन्यां तुहिनावलीव कलिला वात्येव घोरा घने ।
सामुद्रः प्रबलः प्रवाह इव वा पोतव्रजेऽल्पे मयि
व्रातः प्रेतपुरन्दरोद्भटभटः प्रत्यूहमुद्वर्षति ।। ६४ ।।

स्थेयं कुत्र क आश्रयोऽत्र विपदां निस्तारणे सक्षमः
काकोलप्रखरप्रतापदहनज्वालावलीढं जगत् ।
उल्लाघं कुत आबभूव तमिमं निर्व्याजबन्धुं शिवं
जिज्ञास्यं बलिनां बलं श्रयत भो व्यर्थैः किमन्यैः श्रमैः ।।६५।।

शेते यद्वदलिः प्रिये कमलिनी क्रोडे प्रमाद्यन्निशि
माकन्दीयमरन्दलुब्धमधुपः सङ्क्रीडते माधवे ।
उद्यद्वारिद वृन्दमेत्य कृषकः संमोदते धूर्जटे
तद्वत्ते चरणाम्बुजं श्रितवतां नेदीय एतत्समम् ।। ६६ ।।

दन्ता उत्पतिता दृशौ विलुलिते कैश्यं श्रिताश्वेतिमा
पादौ न व्रजतः स्थिरौ कटितटी निम्ना प्रविष्टा दशाम् ।
दन्त्योच्चारणवैभवं व्यपगतं न स्मर्यते पश्चिमं
तन्नाथाऽभ्युपपद्य मामशरणं कैवल्यमुज्जागृयाः ।। ६७ ।।

मल्लीभिः कटकं पदाङ्गुलिलसद् भूषा स्फुटा यूथिका-
श्चम्पाभी रशनावलीं विरचितां हैरण्यपद्मैः स्रजः ।
केयूरौ नवनीलनीरजमयं शेफालिकाः कर्णिके
दूर्वा श्रीफलकर्णिकारमुकुटं ध्येयो दधानो हरः ।। ६८ ।।

लिङ्गं नीलमणिप्रभं प्रपुरतः संस्थाप्य रत्नाञ्चितं
सश्रद्धातिशयं समर्च्य रुचिरं शैवैः सहस्राह्वयैः ।
हैमैर्मानससारसैरनुदिनं स्वाराध्य जात्वेकल-
न्यूनां पूरणपुण्डरीकनयनो जातो हरिः शाम्भवः ।। ६९ ।।

श्री रामेश्वर मर्णवोत्तरतटे साम्राज्यप्राज्यक्रमै-
र्दिव्याचार्यदशाननोक्तविधिना तन्नाशसङ्कल्पतः ।
श्रीसीतासहितो रघूद्वहविभुः सम्पूज्य तद्दक्षिणां
जन्यक्रौर्यमथो ददत्ससुषमोऽन्वग्राहि शैवाशिषा ।। ७० ।।

धेनुर्दोहवती गृहं धनभरैः पूर्णं सुतो धार्मिकः
पत्नी स्नेहवशा तनुर्बलवती स्वस्था चरित्रं शुचि ।
बुद्धिः शास्त्रपरा सहायसुहृदः शश्वद्धिताधायिनः
सर्वं श्रीशितिकण्ठपुण्यचरणाम्भोजात्समासाद्यते ।। ७१ ।।

श्रीकण्ठोऽन्धकमर्दनः पशुपतिर्भीमो मृडानीश्वरः
शम्भुः शूलधरः शशाङ्कमुकुटो गङ्गोत्तमाङ्ग. शिवः ।
ईशो धुर्जटिरीश्वरो गिरिशयः शर्वः पिनाकायुधः
श्रीविश्वेश्वर आशुतोष इति यन्नामानि तस्मै नमः ॥ ७२ ॥

ग्रीष्मे मध्यनभस्युषर्बुधनिभज्वालावली ताण्डवं
कुर्वाणैः किरणैस्तपत्यविरतं व्रघ्ने मुदा कर्षकः ।
कोलिच्छाय उपास्य तोक्म चणकौ भृष्ट्वा निवेद्याश्रुभि-
र्वप्रैतोषयतीश ते प्रियतरो भक्तो न तादृङ् नृपः ॥ ७३ ॥

नारी सत्यपतिव्रता श्वशुरयोः पूजारता पुत्रिणी
प्रातः स्नानपरा कुटुम्बभरणोत्साहा यथार्थव्यया ।
श्रीगौरीव शिवं पतिं परिजनं पुत्रं यथा बिभ्रती
श्रीलक्ष्मीः सुखसम्पदाऽभ्युदयते व्यर्थैः किमन्यैः श्रमैः ॥७४॥

जानीतेऽभिसमीक्षते स्पृहयते युङ्क्ते समालम्बते
शेते सन्तनुते ह्नुते विहरते सञ्चेष्टते वेष्टते ।
ईष्टे कामयते चिनोति जनयत्युद्दीप्यते खेलति
प्रब्रूते नयते विदीव्यति हरः सर्वादधाति क्रियाः ॥ ७५ ॥

शम्भो नाथ कृपानिधे पशुपते पूर्णाधिनाथ प्रभो
भूतेश प्रमथेश्वर त्रिपथगाकल्लोलमालावले ।
सर्वज्ञाद्भुतलील भक्त वरद प्रत्यक्ष देवाधिप
श्रीकण्ठप्रणतार्त्तिदारणविभो संरक्ष विश्वेश्वर ॥ ७६ ॥

बन्धुस्त्वं तनयस्त्वमेव जननी त्वं वत्सला त्वं पिता
त्वं शिष्योऽथ गुरुस्त्वमेव सरलस्त्वं मे सखा त्वं पतिः ।
त्वं वैद्यस्त्वमसि प्रपन्नशरणं त्वं सन् सतीर्थ्यः परः
सर्वं त्वन्मयमेकमद्वयमिदं विश्वेश वीक्षामहे ॥ ७७ ॥

माया ते त्रिगुणाभितिष्ठति करे वेदत्रयी वा किमु
जातिस्थातिलयावली किमथवा तेजस्त्रयं दीप्यते ।
कालज्वालकरालजालजटिलं कल्पान्तशूलं दधत्
संशीतीर्जनयन्नजस्रमशुभं मुष्णातु कृष्णाधवः ॥ ७८ ॥

यस्मिन् खेलति खेलति त्रिभुवनं शेते शयाना स्थितौ
सन्तृप्यत्यथ तृप्यति प्रभुवरे जागर्त्ति जाग्रत्यथो ।
आञ्छत्याञ्छति याति याति सकलाधीशे समष्ट्यात्मके
सान्द्रानन्दसुधाम्बुधौ भवतु मे दृष्टिस्त्वयि ब्रह्मणि ॥ ७९ ॥

सव्याद्यस्य जनार्दनोऽजनि विभोर्ब्रह्माऽथ दक्षाङ्गतो
रुद्रो वक्षस आबभूव महती शक्तिर्विमर्शादभूत् ।
श्रीलक्ष्मीरुदपादि विश्वजननी तस्यास्ततः शाम्भवं
ज्योतिः किञ्चन चारुचारिचरितं चञ्चूर्यते चित्रितम् ॥ ८० ॥

लोकानुग्रहकातरं विहरते ज्योतिः परं शाङ्करं
येन त्रातुमभीप्सितो द्विजशिशुर्गोमायुगृध्रेक्षितः ।
मृत्युग्रासमुपागतः पितृवनं प्राप्तः पुनर्जीवितः
सोऽयं श्रीकरुणार्णवो विवृणुतां मृत्युञ्जयाभिज्ञताम् ॥ ८१ ॥

शैवो मे जनकस्तथा च जननी शैवी च शैवः सुतः
शैवो भ्रातृगणोऽथ मान्यगुरवः शैवाश्च शैवः सुहृत् ।
शैवः सङ्घ उमापते प्रवचनं शैवं च शैवी मतिः
शैवो देश इदन्तदाभिलिखितं शैवं समं जायताम् ॥ ८२ ॥

वृक्षा गुल्मलताः पयोधरधराः गावोऽनला वायवो
नार्योऽथो पुरुषाः सरांसि सरितो भूमिः पशूनां गणः ।
कीटाः शष्पसमूह एतदखिलं भूतं शिवं मन्दिरं
शश्वत्साम्बशिवात्मकं विमृशतां भक्तिश्च मुक्तिः पुरः ॥ ८३ ॥

नो चेष्टा न च विग्रहो नहि तथोपायो न चोपाश्रयो
नोपादानमतर्क्यशक्तिविभवः सर्वं करोति क्षणात् ।
विश्वेशो व्यवतिष्ठमानमतुलं पारम्परीनिर्मलं
नित्यो वाङ्मनसातिगः स्फुरतु मे सस्वप्रकाशः शिवः ॥८४॥

ऐकागारिककेलिकौतुककलालावण्यपुण्यार्णवः
शिल्पानल्पविकल्पकल्पनपुराचार्यक्रियाकोविदः ।
प्रत्यग्त्रातविचित्रचित्रचरितप्रत्येकसाक्षी क्षणो
ध्यानोत्कर्षणकृष्णविष्णुभगवान् सर्वः स शर्वोऽवतात् ॥८५॥

नीलाम्भोधरसच्छविर्भवतु वा क्षीराब्धिफेनोज्ज्वलो
गङ्गातुङ्गतरङ्गभङ्गसुभगो बर्हावतं सोऽस्तु वा ।
कस्तूरीमलयोद्भवप्रमुदितो भस्माङ्गरागोऽथवा
पूर्णब्रह्मणि तात्त्विके भवतु मे नो भेददृष्टिः शिवे ॥ ८६ ॥

विष्णुं ब्रह्मसनातनं प्रजपतां शाक्तं महः पश्यतां
सिन्दूरारुणविग्रहे विहरतां माङ्गल्यलीलोत्सवे ।
सप्ताश्वं श्रयतां समस्तभजतां शैवे परे ब्रह्मणि
प्रश्रान्तिः शममेति विश्वरजसां यद्वत्परस्मिन्नणौ ॥ ८७ ॥

मार्तण्डेऽभ्युदिते न तिष्ठति तमस्तापः सहस्यागमे
मौनं कोकिलचञ्चरीकनिकरे किं धीयते माधवे ।
तद्वच्चन्द्रधरे विभूतिविभवे कोट्यर्कविद्युत्प्रभे
प्रत्यक्त्वं समितेऽन्धकारमुदयेत् किं स्वप्रकाशे शिवे ॥ ८८ ॥

लीलालोलविशालबाहुवलयः कम्पोत्तराङ्गच्छटो
रक्ताक्षश्चलकुण्डलावलिलसद्व्यालोलगण्डस्थलः ।
पादाक्रान्तमहीधरः प्रविकसन्मुक्तोदबिन्दुर्हरो
मथ्नन् क्षीरनिधिं सुधाप्लुततनुर्देवैः स्तुतः पातु वः ॥ ८९ ॥

येनाभञ्जि हरिर्वतारविसरैर्युध्यन् परैः कौशलैः
सर्वेऽजायिषतामराभगमदो दन्तैर्व्यपारोप्यत ।
उत्सिक्ताग्रसरः प्रजापतिरुपामायि स्वयं केतुना
क्रीडन्नीशपराङ्मुखीकृतमखे वीरः शिवः सोऽव्यताम् ॥९०॥

सम्पातोमयकाशुशुक्षणिमुखे किं वा पनीपद्यतां
शूकाकीर्णकरालकालकुहरे लोलुठ्यतां वा विभो ।
आहो कर्त्तरिकां प्रहृत्य सहसा चेच्छिद्यतां स्वं शिरो
दर्शिष्ठा यदि मा त्वमेककरुणापारीण नीराशय ॥ ९१ ॥

कश्चित्काम उपाददीत पुरतः पादौ न, नार्थाः परा
बाभायुर्यत ईप्सितान्यपि पुरस्कर्तुं विदध्युः क्षणम् ।
रागो निष्ठितिमानमापिपदसौ शेषस्त्वानुग्रहो
गौरीनाथ जगद्गुरो क्वनु कदा लालभ्यतां मादृशैः ॥९२॥

बुद्धिर्नास्मि न चास्मिता न हि मनो नो वेन्द्रियं मातनु-
र्बाहीकाः सुतदारबन्धुसुहृदो दूरेऽर्थगेहादयः ।
तद्दूरे मूढ विचिन्तय क्षणमिह कास्से विधस्से च किं
मायामाशु जहाहि याहि चरणाम्भोजं शिवब्रह्मणः ॥९३॥

किं नित्यं किमनित्यमस्थिरमिदं किं सज्जसेऽस्मिन्सखे
निर्णीतं चिरजीविभिर्यदखिलं दन्दह्यमानं जगत् ।
तन्निर्भर्त्स्य समस्तमाशु सुलभे सिद्धे स्वतः सर्वतः
स्वैक्यानन्दघने चिदात्मनि रसे लीयस्व तुर्ये शिवे ॥९४॥

नोक्तः पश्यत एव भाति पुरतः श्रेयानसावाश्रमो
विश्रान्तिः परमा विजायत इतः श्रौतो ध्वनिः श्रूयते ।
आँ ज्ञातं चिरजीवनः कुलपतिर्मृत्युञ्जयाऽऽलिङ्गितो
मार्कण्डेयतपस्विशेखरमणिर्यत्रास्ति मुख्योऽधिपः ॥९५॥

श्रीनारायणरामकृष्णविधयो रामस्तथा भार्गवो
दुर्वासा अथ बाणरावणबलिर्जाबालिरप्यर्जुनः ।
मार्कण्डेयशिलादपुत्रभृगवः श्वेतः श्रुतिर्गौतमो-
ऽगस्त्यो नारदमीनजात्मज इमे शैवा जगद्विश्रुताः ॥९६॥
शास्त्रेभ्यः श्रवणं सदा पशुपतेर्नाम्नां तथा कीर्त्तनं
शश्वत्संस्मरणं पदाम्बुजपरीचारः सपर्याऽद्भुता ।
प्रह्वाणं शुभदासभूपमसमं सौहार्दमैकान्तिकं
पूर्णस्वात्मसमर्पणं प्रभजतां पन्थान एते श्रुताः[1] ॥९७॥
ईशाख्याष्टकमेतदद्भुततमं रुद्रोपदिष्टं मुहुः
शश्वद् हे शिव भो महेश्वर तथा रुद्राङ्ग विष्णो जपन् ।
तल्लीनश्च पितामहप्रमुदितः संसारवैद्यः स्मरन्
सर्वज्ञापरमात्मनित्यमुदितो जीवन् विमुक्तो भवेत् ॥९८॥
नित्यानाश्रयतो यमाँश्च नियमान् साम्बिभ्रतः शक्तितः
पद्माद्यासनसम्भृतान् विदधतः प्राणान् वशे पातुकान् ।
प्रत्याहारपरान् धृतिम्प्रणयतो निध्यायिनो योगिनो
ज्योतिः शैवमुदेति वृत्तिरहिते व्योमेव रिक्ते कुटे ॥९९॥
वृद्धोक्षः प्रकृतिर्महत्तव करे खट्वाङ्गमाहङ्कृति-
र्जाता पर्शुरभून्मनोऽजिनमथो भस्मेन्द्रियाण्यासत ।
तन्मात्राण्युरगावली भजतपाः कोटिं करोटिं गता
लीलालालितलोकमङ्गलवपुः स्वान्तः स्फुरत्तां स्पृशेत् ॥१००॥
ये पूर्वे गुरवो निजोग्रतपसा पूर्णप्रकाशात्मनो
भग्नप्रावरणा परां परिगता नीरागभूमिं शुभाम् ।
भूयः प्राप्तऋतम्भरा विचरणभ्रष्टाः प्रसङ्ख्याजुष-
स्त्वां पश्यन्ति विभो तथा क्व नु कदा भूयासुरस्मादृशः ॥१०१॥
चौक्षो वाऽशुचिरस्मि दम्भभरितः सम्यग्विधाने रतो
दान्तः संकुसुको भवामि भगवन् किं वा वदान्यः शठः ।
मूढो वा विदुषां वरो भवदनुक्रोशैकबद्धस्पृहो
दूरे मां कुरु सन्निधापय पुना रोदीमि ते पादयोः ॥१०२॥
तेजोवर्ष्मतया तवेश भजतां संप्रेप्सितव्यं भवे-
दाहो गाढतमोऽभिलाषपदवीं नेयं प्रसङ्ख्यायिभिः ।
तद्धि स्वान्तविसाररोधनविधौ साह्यं परं सीदति
तत्ते सद्गुणनिर्गुणत्ववरणे मह्यं द्वयं रोचते ॥१०३॥

---

[1]—यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः श्रुतिः ।

किं वैकं सगुणं सुगन्धसुरसं सौन्दर्यनिष्ठाञ्चितं
शम्भुं भूषणभूषणं गिरिजया वाप्तं तपोभिः परैः ।
भक्तानुग्रहकातरं स्मितमुखं देवाधिदेवं विभुं
तं नित्यं प्रलपामि दिग्विदिशयोः पश्यामि तं कामये ॥१०४॥

निश्शेषाः श्रुतयस्तथा स्मृतिततिः काव्यर्येश्च सर्वा गिरः
शिष्टाऽऽचारपरम्परा अथ दृशस्तत्त्वप्रमाकोटयः ।
विद्यावृद्धमहर्षयः परपरं ब्रह्माश्रिताः संविदं
तत्राकर्षणमञ्जुलं वयमिमं कामेश्वरं संश्रिताः ॥१०५॥

गौर्यासेचनमिन्दुशेखरगणं सौन्दर्यविस्मापनं
मोहिन्या अपि मोहनं छविभरैः सम्पूरयन्तं जगत् ।
सुस्मेरास्यसरोरुहं सुषमया नीराजितं सर्वदा
चन्द्रार्धोज्ज्वलभालमद्भुतशिवं वन्दे महो मञ्जुलम् ॥१०६॥

नामाद्यक्षरसंयुतं श्रुतिगतं शब्दं विलोक्याऽऽदराद्
धन्यं स्वं मनुते सुपर्वनिवहो नाम्नां शतैः सन्ततम् ।
वेदार्थं प्रणमन्ति सादरभरं सर्वज्ञमेकं हरं
सोऽयं श्रीगिरिराजराजतनया धीशः शिवः सेव्यताम् ॥१०७॥

कश्चित्सृष्टिविधानकर्मनिपुणः शश्वत्प्रजाः सूयते
रक्षाकर्मठतां विभर्त्ति निपुणामन्यो बलाम्भोनिधिः ।
सार्द्धं संहरते क्षणाज्जगदिदं ताभ्यां समग्रं वशी
सोऽयं सर्वहरो महेश्वरपरब्रह्माऽस्तु नः श्रेयसे ॥१०८॥

इति षट्शार्दूले प्रथमो यूथः

श्रीरामचन्द्रवरवैदिकशास्त्रिरत्न-
प्रज्ञाप्रकाश उदितोरुयशोऽञ्चितश्रीः ।
राटाट इत्युपपदः कृतधीरथर्वा
मूर्तोऽभवत् सुमनसां महतां महार्हः ॥ १ ॥

संमानितः प्रवरशासनमाननीयै-
र्वैदिप्रकाण्डपरिमण्डलमण्डनीयः ।
तस्य स्मृतौ विरचिते महिते हितेऽस्मिन्
ग्रन्थेऽभ्यदायि परिटङ्कयितुं निबन्धः ॥ २ ॥

कूर्मपुराणम्

श्रीबदरीनाथ शुक्लः, एम्० ए०, न्यायवेदान्ताचार्यः,

वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालये प्राध्यापकः

वेदविद्यानामनन्यनिधयो विद्वत्प्रवराः श्रीरामचन्द्ररटाटेमहोदया आत्मनः समये वाराणस्या विशिष्टासु विभूतिष्वन्यतमा आसन्। पवित्रतरे महाराष्ट्रवैदिक-ब्राह्मणकुले प्रादुर्भूय यथासमयं प्राप्तव्रतबन्धाः कुलक्रमागतेन सदाचारसंस्कारेण सम्पन्नाः शैशव एव श्रौताध्ययनविधौ समर्पितसर्वस्वाः श्रमक्रमाभ्यां मूलतोऽर्थतश्च वेदविद्यायाः स्वायत्ततां मितेनैव समयेन सम्पाद्य यौवनोद्भेदकाल एव रटाटे-महाशयाः काश्या वैदिकविद्वन्मण्डलीषु गणनीयं स्थानमाप्नुवन्। ते हि समग्रं जीवनं वेदानामध्ययनाध्यापनयोः वेदसम्मतसदाचारानुपालने च यापयन्तो वाराणसेयसंस्कृत-विश्वविद्यालयस्य प्रारम्भिके वर्ष एव तदीये सम्मानितप्राध्यापकपदे विश्वविद्यालयस्य प्रथमोपकुलपतिभिः विद्वत्सम्माननैकरसैः महापुरुषैः श्रीमद्भिरादित्यनाथझामहोदयैः सबहुमानं न्ययुज्यन्त। चरमे वयसि वर्तमाना जरया शिथिलीकृतकलेवरा अपि पण्डितप्रवरा नैकमप्यहो वेदाध्यापनाद् व्यरमन्न वा विश्वविद्यालयस्य कस्मिन्नपि कार्य-क्रमे यथाकालमुपस्थितौ कदापि पश्चात्पदा अभवन्। श्रीरटाटेमहाभागानामसाधारणै-र्विद्वद्ब्राह्मणगुणैराकृष्टचित्ततया 'पुराणमात्मा वेदानाम्' इति सत्यामुक्तिं मूर्ध्ना दधानो वेदार्थोपबृंहणसाधनयोरितिहासपुराणयोः पुराणस्य किमपि विशिष्टं महत्त्वमाकलय्य तेभ्यो महताऽऽदरेण प्रश्रयेण च श्रद्धाञ्जलिं समर्पयन् तत्सभाजने कूर्मपुराणस्य परिचयं संक्षेपेण प्रस्तौमि।

कूर्मपुराणमष्टादशमहापुराणेषु पञ्चदशम्। यथोक्तम्—

ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च।
शैवं भागवतं चैव भविष्यं नारदीयकम्॥१३॥
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च।
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥१४॥
कौर्मं मात्स्यं गारुडं च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्॥१५॥
इदन्तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥२१॥

अयमर्थो मत्स्यपुराणस्य त्रिपञ्चाशत्तमेऽध्याये श्रीभागवतस्य द्वादशस्कन्ध-त्रयोदशाध्यायेऽन्यत्र चानेकत्र सन्दृब्धो विद्यते ।

अथ धर्मार्थकाममोक्षाख्यस्य चतुर्विधपुरुषार्थस्य माहात्म्यं समुद्रमन्थनाय देवासुरैः मन्थनदण्डत्वेन प्रयुक्तस्य मन्दराचलस्य धारणाय कूर्मविग्रहं गृहीतवता विष्णुना शक्रस्य सन्निधौ ऋषिभ्य इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन लक्ष्मीकल्पस्य वृत्तमुपजीव्य वर्णितम् ।
यथोक्तम् —

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ॥४६॥

इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ ।
अष्टादश-सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥४७॥

(म० पु० अ० ५३)

अस्मिन् ब्राह्मी, भागवती, सौरी वैष्णवी चेति धर्मार्थकाममोक्षवर्णनपराश्चतस्रः संहिताः सन्ति ।
यथोक्तम्—

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः ।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः ॥२॥

(कू० पु० अ० १)

तत्र प्रथमा ब्राह्मी संहिता षट्सहस्रश्लोकात्मिका । तस्याः पूर्वभागे त्रिपञ्चाशदध्यायेषु पुराणोपक्रमः, लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः, ब्रह्मशिवयोः प्रादुर्भावः, असतां मोहने लक्ष्म्या नियोगः, वर्णाश्रमाचारः, जगदुत्पत्तिः, कालसंख्या, प्रलयान्ते सनकादिभिः स्तुतेन विष्णुना वाराहरूपेण धरोद्धारः, सर्गः, शम्भुचरितम्, पार्वतीसहस्रनाम, योगः, भृगुवंशः, स्वायम्भुवस्य देवादीनां च जन्म, दक्षयज्ञविघातः, दक्षसृष्टिः, कश्यपवंशः, आत्रेयवंशः, कृष्णचरितम्, व्यासपाण्डवकथा, युगधर्मः, व्यासजैमिनिकथा, वाराणस्याः प्रयागस्य च माहात्म्यं, त्रैलोक्यं, वेदशाखाश्च इत्यमीषां विषयाणां निरूपणं निबद्धमस्ति । उत्तरभागे क्रमशः एकादशाध्याये त्वीश्वरगीता त्रयोविंशत्यध्यायेषु च व्यासगीता ग्रथिता वर्तते । गीतयोरनयोः बहूनां दार्शनिकसिद्धान्तानां, वर्णाश्रमधर्माणां, सदाचाराणां, भक्ष्याभक्ष्यवस्तूनां, श्राद्धानां, द्विजातिवृत्तीनां, प्रायश्चित्तानां, कतिपयेषां तीर्थानामनेकेषां विप्रकीर्णविषयाणां च वर्णनं विद्यते । इत्थं ब्राह्मयां संहितायां संहितान्तरविषयाणां संक्षिप्तं स्वविषयस्य धर्माख्यपुरुषार्थस्य च विस्तृतं विस्पष्टं च वर्णनं वर्तते । द्वितीया भागवती संहिता चतुःसहस्रश्लोकात्मिका पादपञ्चके विभक्ता

च। तस्यां चतुर्णां वर्णानां वर्णवाह्यानां च वृत्तिवर्णनमुखेनार्थाख्यः पुरुषार्थो वर्णितोऽस्ति। तृतीया सौरी संहिता द्विसहस्रश्लोकात्मिका। चतुर्थी वैष्णवी संहिता च पञ्चसहस्र-श्लोकात्मिका। अनयोः संहितयोः क्रमेण कामः मोक्षश्च प्रतिपादितौ स्तः।

इदानीं कूर्मपुराणस्य ब्राह्मी संहितैव समुपलभ्यतेऽन्यास्तिस्रः संहिता लुप्ताः। सम्पूर्णस्य कूर्मपुराणस्य श्लोकसंख्या मात्स्ये ब्रह्मवैवर्ते चाष्टादशसहस्रश्लोकात्मिका भागवते नारदीये च सप्तदशसहस्रश्लोकात्मिका च प्रोक्ता। एतेन पुराणस्यास्य श्लोक-परिमाणे चिरपूर्वमपि वैमत्यमासीदिति प्रतीयते। अधुना यदाऽस्य केवलमेकैव संहिता प्राप्यते तदाऽस्य श्लोकसंख्याया इदन्ताऽवधारणं दुश्शकं नातिप्रयोजनकं च।

ब्राह्मी संहिता स्वमुख्यविषयेण धर्मेण संहितान्तरविषयाणामर्थकाममोक्षाणामपि प्रतिपादिका, चतुर्वेदसमाना, परमेश्वरस्य ब्रह्मणो बोधिका, पुराणप्रतिपाद्यतया प्रसिद्धानां सर्गप्रतिसर्गवंशमन्वन्तरवंशानुचरितरूपाणां सर्वविषयाणां निरूपिका वेदज्ञब्राह्म-णैर्धार्यतया रोमहर्षणेन सूतेन संस्तुता च। प्रतीयतेऽस्माद् वैशिष्ट्यादेव संहितेयं लोकेन पठनपाठनयोः परिगृहीता अन्याश्चोपेक्षिताः। अत एव चेयमद्यावधि सुरक्षि-ताऽन्याश्च नष्टाः।

यथोक्तम्—

इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता।
भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया ॥२३॥

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः।
माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः ॥२४॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं पुण्या दिव्या प्रासङ्गिकी कथा ॥२५॥

ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैर्वेदपारगैः।
तामहं वर्णयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा ॥२६॥

(कू० पु० अ० १)

धर्मः—

धर्मो नाम स पदार्थो येन स्थावरजङ्गमात्मकस्य समग्रस्य जगतो जननं धारणं च भवतः, तस्य प्राप्तिश्च कर्मणा ज्ञानेन च जायते। यदि मानवः कर्मज्ञानाभ्यां रहितो भवेदथवा केवलं कर्ममात्रनिरतो ज्ञानमात्रनिष्ठो वा भवेत्तदा जगतो धारणार्थम-पेक्षिताया धर्माख्यायाः शक्तेराविर्भावो नैव प्रभवेत्। यः कर्माणि नानुतिष्ठेद् ज्ञानं च नोपार्जयेत्स नितान्तमशक्तो भवेत्। किं कर्तव्यं, कथं कर्तव्यं, किमर्थं कर्तव्यं कैस्साध-

नैश्च कर्तव्यमित्यादिकमज्ञात्वैव यो यन्त्रवद् विचेष्टेत, यो वा कृत्स्नमिदं जानन्नपि कर्मणः पलायेत, स जगतः सुव्यवस्थायाः सम्पादने सहायको भवितुं नैव क्षमेत। सुव्यवस्थाया अभावे च न कश्चिज्जनो न च कश्चित्समाजो न वा कश्चिद्देशः काञ्चिदुल्लेखयोग्यामैहिकीमामुष्मिकीं वाऽभ्युन्नतिं कर्तुं शक्नुयात्। अतो जगद्धारणक्षमायाः शक्तेः प्रादुर्भावाय कर्मणो ज्ञानस्य चोभयस्यैवावलम्बनमावश्यकम्। यथोक्तम्—

धर्मात्संजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः।
धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ६१॥
कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः॥ ६२ उत्तरार्धम्॥
तस्माज् ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाश्रयेत्॥ ६३ पूर्वार्धम्॥
(कू० पु० अ० २)

धर्मो हि मुख्यतया द्विविधो विश्वधर्मो देशधर्मश्च। विश्वधर्मः स कथ्यते यो विश्वहिताभिप्रायेण संपूर्णस्य विश्वस्य मनुष्यैरनुष्ठेयो भवति। अयं धर्मो भारतीयवाङ्मये चातुर्वर्ण्यधर्मत्वेन व्यवहृत्य व्युत्पादितो विद्यते। यथा—

क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च॥ ६५ उ०॥
आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा।
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः॥ ६६॥
देवताऽभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः।
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता॥ ६७॥
सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ ६८ उ०॥
(कू० पु० अ० २)

तीर्थानुसरणम्—दुष्प्रवृत्तेस्तरणार्थं प्रेरणाप्रदाः साधका विद्वांसस्तत्साधनाभूमयश्च तीर्थाः, तदनुसरणं तन्निर्देशेन वर्तनं तन्निवासश्च। आस्तिक्यम्—कर्मणः फलव्याप्तौ विश्वासः, देवताभ्यर्चनम्—देवताः—जगतो विशिष्टहितकर्तारः, तदभ्यर्चनं—कृतज्ञताज्ञापनादिना तत्सम्माननम्। ब्राह्मणानां पूजा—विश्वहितार्थं निर्लोभभावेन ज्ञानविज्ञानाद्यर्जने निरन्तरं लग्नानां सत्पुरुषाणां समीचीनः सत्कारः। अकल्कता—मानवताहितविरुद्धच्छलराहित्यम्।

अयमेव धर्मो योगदर्शने सार्वभौममहाव्रतत्वेन विज्ञापितो वर्तते, यथा—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।
(यो० द० साधनपादे ३०,३१ सू०)

अनेनैव धर्मेण विश्वस्य विभिन्नेषु राष्ट्रेषु विश्वबन्धुत्वभावनाया उद्बोधनं सौहार्दपूर्णस्य सम्पर्कस्य स्थापनं पञ्चशीलानुसारेण वर्तनभावनाया उदयश्च सम्पद्यते।

देशधर्मः स उच्यते यस्तत्तद्देशस्य संस्कृतेरनुरोधेन तत्तद्देशमात्रस्य मनुष्यैरनुष्ठेयो भवति। यथा भारतवर्षस्य देशधर्मो वर्णाश्रमधर्मः। भारतस्य सनातन्यां संस्कृतौ मनुष्यजीवनविषय इयं धारणा बद्धमूला विद्यते यन्मनुष्यो न केवलं पृथिव्यादि-भूतानां सादिः सान्तश्च सन्निवेशविशेषः, न च केवलमैहिकी प्रियोपलब्धिरेव तज्जीवनस्य लक्ष्यम्, अपि त्वनादिकालतो देहादिभिः सम्पृच्यमानोऽपि तेभ्योऽतितरां भिन्नो भौतिकसाधननिरपेक्षाया अनवद्याया निरतिशयायाः स्पृहणीयस्थितेश्चाधिकारी। तस्या आयत्तीकरणं च शास्त्राचार्यपरम्पराप्राप्ताया जीवनपद्धतेरनुसरणाधीनम्। एतद्धारणानुसारेण भारतस्य मनुष्यसमाजो वर्णशब्दव्यवहार्यासु ब्राह्मणादिषु चतसृषु श्रेणिषु चिरपूर्वतो विभाजितो वर्तते। प्रत्येकं मानवस्य जीवनावस्थाश्च ब्रह्मचर्यादि-चतुराश्रमेषु विभक्ताः सन्ति। तत्र अध्ययनम्, अध्यापनम्, यजनम्, याजनम्, दानं प्रतिग्रहश्चेति षट् कर्माणि ब्राह्मणस्य, दण्डयुद्धाभ्यां सहितमध्ययनादित्रयं क्षत्रियस्य, कृषिवाणिज्योपेतं पूर्वोक्तत्रयं वैश्यस्य, शिल्पकर्मादिसहिता ब्राह्मणादिवर्णत्रयस्य शुश्रूषा तदीयकर्मसु सहयोगदानात्मिका शूद्रस्य धर्मसाधनं प्रोक्तम्। भिक्षाचरणम्, गुरुसेवा, स्वाध्यायः, सन्ध्याकर्म, अग्निकार्यं च ब्रह्मचारिणः, अग्न्युपासना, अतिथि-सत्कारः, यज्ञः, दानं देवपूजनं च गृहस्थस्य, होमः, मूलफलाशनम्, स्वाध्यायः, तपो न्याय्यः संविभागश्च वानप्रस्थस्य, भिक्षाशनम्, मौनम्, तपः, ध्यानम्, सम्यग्ज्ञानं वैराग्यं च सन्न्यासिनो धर्मसाधनं कथितम्। यथा—

यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः॥ ३८ उ०॥
अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः!
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः॥ ३९॥
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते।
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्॥ ४०॥
कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञादिधर्मतः।
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्॥ ४१॥
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम्॥ ४२ उ०॥
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुङ्गवाः!
होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च॥ ४३॥
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम्।
भैक्षाशनं च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः॥ ४४॥
सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः।
भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च॥ ४५॥
सन्ध्याकर्माग्निकार्यं च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम्॥ ४६ पू०॥

(कू० पु० अ० २)

वर्णधर्मस्याश्रमधर्मस्य च परिपालनं सर्वविधाया देशोन्नतेर्मूलम्। तयोरुपेक्षयैव देशः साम्प्रतं नानाविधाभिरव्यवस्थाभिः पर्याकुलः। वर्णधर्मस्य यथोचितापरिपालनादेव तत्तद्वर्णेषु कर्मसाङ्कर्यं प्रवृत्तम्। तेन च तत्तत्कर्मकौशलस्यावसादो वृत्तिसङ्घर्षश्च राष्ट्रेऽभिव्याप्तः। एवमाश्रमधर्मोपेक्षया वैवाहिकवैषम्यस्य, दुर्बलसन्ततीनां जन्मनः, अकालमृत्योः, जनसंख्याया दुर्वहस्य भारस्य यथाकालं कर्मावसरालाभेन जनानां वृत्तिकष्टस्य च दुस्समाधेयसमस्याभिः राष्ट्रं नितान्तं ग्रस्तम्। धर्मोपेक्षयैव जगति क्वचिदर्थकामयोर्दुर्भिक्षं क्वचिच्च कथञ्चित्सतोरपि तयोर्मोक्षप्रातिकूल्यं सङ्घर्षस्रष्टृत्वं च। तस्मादसंशयमेतद् यदस्माद् दुस्तरात्समस्योदधेः राष्ट्रस्योद्धरणार्थमर्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थत्रयसाधनस्य धर्मस्यावलम्बनमेव श्रेयः। तदवलम्बनेनैव मानव इहामुत्र च सुखं शान्तिं चाधिगन्तुमर्हति। यथोक्तम्—

धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते॥ ५४ उ०॥
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः॥ ५५॥
सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः॥ ५६॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।
यस्मिन् धर्मसमायुक्तौ ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ॥ ५७॥
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते।
धर्मात्सञ्जायते मोक्षो ह्यर्थात्कामोऽभिजायते॥ ५८॥
एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्ये प्रदर्शितम्।
य एवं वेद धर्मार्थकाममोक्षस्य मानवः॥ ५९॥
माहात्म्यं चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते।
तस्मादर्थं च कामं च त्यक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्॥ ६०॥
धर्मात्सञ्जायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः॥ ६१ पू०॥
(कू० पु० अ० २)

अर्थः कामश्च

अर्थः किल कामस्य मूलम्, कामश्च वैषयिकं सुखम्, तच्च द्विविधम् ऐहिकं पारत्रिकं च। ऐहिकं तद् यद् भूलोकस्य विषयैः साध्यते भौतिकेन वर्तमानदेहेन भुज्यते च। पारत्रिकं तद् यल्लोकान्तरे तत्रत्यैर्विषयैर्जन्यते, तत्रत्येन देहेनास्वाद्यते च। उभयविधयोरेतत्सुखयोः सन्निपत्य साधका विषया अपि क्वचित् कामशब्देन व्यवह्रियन्ते, यथा श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धस्य द्वितीयाध्याये दशमश्लोके 'कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता' इत्यत्र।

क्वचिद् विषयाभिलाषोऽपि कामशब्देन शस्यते, यथा मनुस्मृतेर्द्वितीयाध्याये—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ९४ ॥

इत्यत्र प्रथमेन कामशब्देन ।

ऐहिकपारत्रिकयोरुभययोः कामयोर्जनयित्री विषयसामग्री यस्य बलेन सुलभा भवति, स एवार्थपदेन संज्ञायते । एतदनुसारेण वित्तम्, बुद्धिः, श्रमः शक्तिश्चेति वस्तुचतुष्टयमर्थपदार्थपरिधौ प्रविशति । तत्र वित्तं बुद्धिश्रमशक्तिभिर्विना सार्थकं सुरक्षितं च न भवति, परं बुद्धिश्रमशक्तयो विना वित्तेनास्तित्वमेव नासादयन्ति । एवमन्योन्यसापेक्षत्वसाम्येऽप्यस्माद् वैशिष्ट्याद्देवैतेषु वित्तस्यैवार्थत्वेन सर्वजनीना प्रसिद्धिरस्ति । एषामर्थानां मिथः साध्यसाधनभावो विद्यते । वित्तवता वित्तस्य धर्म्येण विनियोगेन बुद्ध्योतरत्त्रयम्, बुद्धिमता बुद्धेः धर्म्येण विनियोगेन बुद्धिभिन्नत्रयम्, श्रमवता श्रमस्य धर्म्येण विनियोगेन श्रमातिरिक्तत्रयम्, शक्तिमता शक्तेः धर्म्येण विनियोगेन शक्तिभिन्नत्रयं च स्वायत्तीकार्यम् । विनियोगे धर्म्यत्वं च सर्वहितभावनापूर्वकत्वम् । इत्थं धर्मो वित्तादीनां चतुर्णां स्वरूपसामञ्जस्ययोर्निर्वाहयितृत्वादर्थस्य सापेक्षं साक्षात्सुखौपयिकानां भवनवहानोद्यानपानाशनसाधनपरिजनकलत्रतनुजादिसत्कुटुम्बाद्यात्मकविषयाणामुपस्थितावपि केषाञ्चित्प्रतीयमानस्य कामभोगाभावस्य प्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्वात् कामस्य च मूलं मन्यते । ऐहिकं सुखं यथैहिकविषयसाध्यं तथैव पारत्रिकं सुखं पारत्रिकविषयसाध्यम् । पारत्रिको विषयश्च श्रौतस्मार्तकर्मात्मकधर्मसाध्यः, स च धर्मः शास्त्रं शास्त्रज्ञानं शास्त्रनिष्ठा धनं चेति चतुर्विधार्थसाध्यः । इत्थमुभयविधयोः कामयोरर्थमूलकत्वं घटते । यदि भागवती संहिता सौरी संहिता च समुपलब्धे अभविष्यतां तदाऽर्थकामयोर्विषये विस्तृततरः प्रकाशः प्राप्तोऽभविष्यत् परं ब्राह्मयां संहितायां यः कश्चन संकेतोऽर्थकामयोः सम्बन्धे प्राप्यते, स बुद्ध्या विविच्यमानः कथिताशयमेव प्रमाणयति । वर्णाश्रमव्यवस्थाऽपि तमर्थमेव प्रपुष्णाति ।

मोक्षः

मोक्षो हि मनुष्यस्य स्पृहणीयतमः परिपूर्णश्चरमो विकासः । अयमेव अन्ययधाम परमपद-शाश्वतपद-परशान्ति-परमुक्ति-ब्रह्मस्थिति-निर्वाण-निःश्रेयस-कैवल्य-स्वात्मलाभ-पारमैश्वर्य-मोक्षापवर्गादिशब्दैस्तत्र तत्र व्यपदिष्टः, इमं विकासं प्राप्ते मनुष्ये कापि विकृतिः, काप्यल्पता कापि संकीर्णता कोऽपि तापः कोऽपि कामः, कोऽपि बाधः कोऽपि वा कल्मषो न तिष्ठति, ईदृशं विकासमासाद्य मानवो नितान्तं तृप्तः, सर्वथा चरितार्थः सर्वबन्धविनिर्मुक्तः, स्वाभाविकस्वरूपसम्पन्नः, अनावृतसच्चिदानन्दात्मभावः समभिव्यक्तपरेशसामग्र्यश्च सम्पद्यते । अतोऽस्य संसिद्धेः पथि प्रस्थितः पुमान् पुरुषधौरेयतया धन्यमूर्धन्यतया च स्तूयते । यथा हि प्रसिद्धिः—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंसारसमुद्रसेतौ लीनं परब्रह्मणि यस्य चेतः॥

मोक्षाख्योऽयं विकासो मनुष्येण कथं लब्धव्य इति प्रश्नस्योत्तरं कूर्मपुराणस्य प्रथमेऽध्याय इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनप्रसङ्गे विस्पष्टं प्राप्तुं शक्यते।

इन्द्रद्युम्नः पूर्वजन्मनि कश्चिद् राजाऽऽसीत्। स यथाधर्मं सुचिरं पृथिवीं परिपाल्य भव्यतमान् भूयसो भोगानुपभुज्य च मृत्योरनन्तरं विप्रवंशे प्रादुरभूत्। अस्मिन् जन्मनि महादेवमनन्यनिष्ठया समाराधयतस्तस्य लक्ष्म्या दर्शनमजायत। लक्ष्मीरात्मानं नारायणाभिन्नां नारायणस्य मायां विज्ञाप्य कर्मयोगसहितेन ज्ञानेन नारायणाराधनं मोक्षस्य कारणमब्रवीत्। ततः स लक्ष्म्या कथितेन विधिना नारायणं समाराधयत्। प्रीतो नारायणः प्रकटीभूय परं तत्त्वम्, विभूतिम्, कार्यम्, कारणं मत्प्रवृत्तिं च विज्ञाय जगतो मायामयत्वं ज्ञात्वा सर्वसङ्गपरित्यागेन आत्माद्वैतभावनया भक्तिज्ञानाभ्यां सहितेन वर्णाश्रमाचारलक्षणेन कर्मयोगेन महेश्वरमाराध्य मोक्षं प्राप्तुमर्हसीति तमुपादिशत्। स च परब्रह्मस्वरूपं परं तत्त्वम्, तस्य नित्यैश्वर्यरूपां विरतिम्, जगद्रूपं कार्यम्, अव्यक्तरूपं कारणम्, सर्वभूतेष्वन्तर्यामितया स्थितं नारायणम्, सृष्टिस्थितिसंहारात्मिकां तत्प्रवृत्तिम्, भक्तिम्, ज्ञानम्, अद्वैतभावनां वर्णाश्रमाचारात्मकं कर्मयोगं च नारायणादेव परिज्ञाय सर्वसङ्गपरित्यागपूर्वकं नारायणोक्तप्रकारेण महेश्वरं सम्यगाराध्य परमं योगं प्राप्नोत्। ततः स मानससरस उत्तरस्यां दिशि स्थितं पर्वतं गत्वा तत्र पितामहस्य ब्रह्मणो दर्शनमकरोत्। ब्रह्मणा सस्नेहं परिष्वक्तस्य तस्य देहादात्मज्योतिर्निर्गत्य सूर्यमण्डलं प्राविशत्। तत्र वेदान्तेषु निर्वर्णितं हिरण्यगर्भाख्यं द्वारमासाद्य स्वात्माभिन्नं पारमेश्वरं तेजोऽभिवीक्ष्य तदात्मकं मोक्षाख्यमव्ययं धाम प्राप्येन्द्रद्युम्नः पूर्णात्मतालाभेन कृतार्थतामश्रयत्।

अनेनाख्यानेनेदं स्पष्टं ज्ञायते यद्वर्णाश्रमधर्मपालनमेव मोक्षप्रासादारोहणस्य प्रथमं सोपानम्। एतदतिक्रम्य मनुष्योऽभीप्सितं स्थानं न प्राप्तुमर्हति। यथोक्तम्—

यदीच्छेदचिरात्स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्।
वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः॥ ९९॥
पूजयेद् भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया।
चतुर्णामाश्रमाणां तु प्रोक्तोऽयं विधिवद् द्विजाः॥ १००॥
(कू० पु० अ० २)

एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
न ह्येतत्समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ २८॥
(कू० पु० अ० ३)

न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ।
स्वधर्मपालको नित्यं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १३ ॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः ।
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम् ॥ १४ ॥
(कू० पु० अ० ३)

ब्रह्मार्पणबुद्ध्याऽनुष्ठीयमानो वर्णाश्रमधर्म एव कर्मयोगः, ब्रह्मार्पणं च येन दीयते, यस्मै दीयते यच्च दीयते तत्सर्वं ब्रह्मैवेति बुद्धिः, मनुष्यो न किमपि करोति, सर्वं ब्रह्मैव करोतीति बुद्धिः, अनेन कर्मणा परमेश्वरः प्रीणात्विति बुद्ध्या कर्माचरणम्, परमेश्वरे कर्मफलानां सन्न्यासो वा । यथोक्तम्—

ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते ।
ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम् ॥ १५ ॥
नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा ।
एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥
प्रीणातु भगवानीशः कर्मणाऽनेन शाश्वतः ।
करोति सततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिदं परम् ॥ १७ ॥
यद्वा फलानां सन्न्यासं प्रकुर्यात्परमेश्वरे ।
कर्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥
(कू० पु० अ० ३)

वस्तुतः फलत्यागेन कर्मणामनुष्ठानार्थमेव मनुष्यो जायत इति धारणैव यथार्थं ब्रह्मार्पणम् । फलत्यागो नाम फले स्वस्वामित्वमप्रतिष्ठाप्य समाजार्थं तस्योपकल्पनम् । ईदृशं कर्म कर्तुर्मोक्षप्रदम् अन्यादृशं च बन्धप्रदम् । यथोक्तम्—

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं सङ्गवर्जितम् ।
क्रियते विदुषा कर्म तद् भवेदपि मोक्षदम् ॥ १९ ॥
अन्यथा यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यान्यपि द्विजः ।
अकृत्वा फलसन्न्यासं बध्यते तत्फलेन तु ॥ २० ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम् ।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्माप्नोति चिरात्पदम् ॥ २१ ॥
कर्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्विकं तथा ।
मनः प्रसादमन्वेति ब्रह्मविज्ञायते नरः ॥ २२ ॥
कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग्योगोऽभिजायते ।
ज्ञानं च कर्मसहितं जायते दोषवर्जितम् ॥ २३ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यत्र तत्राश्रमे रतः।
कर्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात् ॥ २४ ॥
सम्प्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यं तत्प्रसादतः।
एकाकी निर्ममः शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते ॥ २५ ॥
(कू० पु० अ० ३)

अयमर्थो हिमवन्तमुपदिशता देव्याऽपि परिपोषितः। द्वादशाध्याये तया स्पष्टमुक्तं यद् देवी ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन च प्राप्या भवति। एतेषां साधनानामभावे कोटिप्रयत्नैरपि सा दुरासाद्या। श्रौतं स्मार्तं च वर्णाश्रमात्मकं कर्मैव अध्यात्मज्ञानसाहित्येन मोक्षस्य मूलम्। धर्मादेव भक्तिः सुलभा। धर्मस्य च यज्ञादिलक्षणस्य वेदादेव प्रकाशः। वेदश्च भगवत्याः परा शक्तिः। सा च ऋगादिरूपेण सर्गादौ प्रजायते। वेदरक्षणार्थमेव ब्राह्मणादीनां सृष्टिः। वेदातिरिक्तं किमपि शास्त्रं धर्मे प्रमाणं नास्ति। अतो वेदमुपेक्षमाणा ब्राह्मणादयो दण्डार्हाः। वेदबाह्ये वाङ्मये रतो जनश्च सम्भाषणानर्हः। वेदमूलकाद् धर्माज्ज्ञानाच्च ब्रह्मसंबोधो निष्पद्यते। यथोक्तं भगवत्या गिरीशं प्रति—

ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि।
प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ! नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥ २५३ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्कर्म वर्णाश्रमात्मकम्।
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥ २५४ ॥
धर्मात्संजायते भक्तिर्भक्त्या संप्राप्यते परम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः ॥ २५५ ॥
नान्यतो जायते धर्मो वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत् ॥ २५६ ॥
ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते ॥ २५७ ॥
तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः।
ब्राह्मणादीन् ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत् ॥ २५८ ॥
ये न कुर्वन्ति यद्धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मिताः।
तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत् ॥ २५९ ॥
न च वेदाद् ऋते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभिः ॥ २६० ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥ २७४ ॥
(कू० पु० अ० १२)

ईश्वरगीता

ईश्वरगीतात एव कूर्मपुराणस्य ब्राह्मयाः संहिताया उत्तरार्धं प्रारभ्यते। अस्यां गीतायां पराशरपुत्रेण महर्षिणा व्यासेन सूतं तस्य श्रोतॄन् ऋषींश्च प्रति तदुत्कृष्टं दार्शनिकं ज्ञानमुपदिष्टं यद् बदरिकाश्रमे नारायणस्य प्रस्तावमनुरुध्य सनत्कुमार-प्रभृतीन् योगीश्वरान् प्रति भगवता महादेवेनोपदिष्टमासीत्। तत्र सनत्कुमारप्रभृती-नामयं प्रश्नोऽविद्यत यत्—

किंकारणमिदं कृत्स्नं ? को नु संसरते सदा ?
कश्चिदात्मा च ? का मुक्तिः ? संसारः किन्निमित्तकः ॥२६॥
कः संसारपतीशानः ? को वा सर्वं प्रपश्यति ?
किं तत्परतरं ब्रह्म ? सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥२७॥
(कू० पु० ई० गी० अ० १)

अस्य प्रश्नजातस्योत्तरं परमेश्वरेण यत्प्रोक्तं तस्यैवास्यामेकादशाध्यायात्मिका-यामीश्वरगीतायां निबन्धनं विहितमास्ते। तत्र किंकारणमिदं कृत्स्नमिति प्रश्नस्योत्तरे प्रतिपादितं यत्समग्रं जगद् मायामहेश्वरोभयकारणकम्। महेश्वरं मायां च कारणम-वाप्य सर्वं जगज्जायते। यथोक्तम्—

आत्माऽयं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ॥४॥
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः।
स कालोऽत्र तदव्यक्तं स च वेद इति श्रुतिः ॥५॥
अस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते।
स मायी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः ॥६॥
(कू० पु० ई० गी० अ० १)

को नु संसरते सदेति प्रश्नस्योत्तरे प्रोक्तं यन्न कश्चित् परमार्थतः संसरति, यतो हि यदि कश्चिद् यथार्थतः संसरेत्तदा न कदापि स विमुच्येत, प्रपञ्चपरमात्मनोः कश्चिद्वास्तवः सम्बन्धो वारूवमैक्यं वा नास्ति। तौ परस्परमत्यन्तं विलक्षणौ भिन्नौ च।
यथोक्तम्—

न चाप्ययं संसरति न संसारमयः प्रभुः।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ॥७॥
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्त्ता न वागपि ॥८॥

न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः ।
न च कर्ता न भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ ॥९॥
न माया नैव च प्राणा न चैव परमार्थतः ।
यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते ॥१०॥
तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः ।
छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ ॥११॥
तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः ।
तथाऽऽत्मा मलिनः सृष्टो विकारी स्यात्स्वरूपतः ॥१२॥
न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ॥१३ पू०॥

(कू० पु० ई० गी० अ० १)

कश्चिदात्मेति प्रश्नस्योत्तरे गदितं यत् सर्वव्यापकः सर्वेन्द्रियरहितः सर्वाधारः द्वैतवर्जितः शाश्वतः निर्गुणज्ञानात्मकः परमेश्वर एव सर्वभूतानामात्मा । आत्मा परमात्मनो नैव भिन्नः ।

यथोक्तम्—

स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरः परः ।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ॥६॥

(कू० पु० ई० गी० अ० ३)

का मुक्तिरिति प्रश्नस्योत्तरे पद्यमिदमध्येयम्—

एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम् ।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः ॥११॥

(कू० पु० ई० गी० अ० १०)

'संसारः किन्निमित्तकः' इति प्रश्नमुत्तरयता भगवताऽभिहितं यद् आत्मविषयकमज्ञानमेव संसारस्य निमित्तम् । अज्ञानं च अन्यथा ज्ञानम् । तत एव प्रकृतिपुरुषयोः सङ्गमः । तन्मूलकादहंकाराविवेकाच्च पुरुषस्य कर्तृत्वावभासः । तदुपजीवकमनात्मन्यात्मविज्ञानं सर्वविधस्य दुःखस्य निदानम् । रागद्वेषपुण्यापुण्यप्रभृतयो दोषास्तत एव जाताः । यथोक्तमीश्वरगीतायां कौर्म्यां द्वितीयाध्याये—

तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम् ॥ (१६ उत्तरार्धम्)
अज्ञानादन्यथाज्ञानात्तत्त्वं प्रकृतिसङ्गतम् ॥ (१७ पूर्वार्धम्)
अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद् दुःखं तथेतरत् ॥ (२० उत्तरार्धम्)
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः ।
कर्माण्यस्य महान् दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थितिः ॥२१॥

कः संसारपतीशान इति प्रश्नमुत्तरयता परमेश्वरेणोक्तं यत्—

ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः।
ओङ्कारमूर्त्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः ॥९॥
(कू० पु० ई० गी० अ० ८)

को वा सर्वं प्रपश्यतीति प्रश्नस्योत्तरे समाख्यातं यत्—

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः।
करोति कालो भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम् ॥२६॥
(कू० पु० ई० गी० अ० ४)

किं तत्परतरं ब्रह्मेति प्रश्नोत्तरे भगवतोदीरितं यत्—

अहं तत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः (६पूर्वार्धम्)
(कू० पु० गी० अ० १०)

इत्थमीश्वरगीतायाः समग्राया आलोचनेनेदमेव सिध्यति यद् भगवान् महादेव एव केवलः सत्यभूतः पदार्थः। स एव स्वाभिन्नाया मायाशक्तेः साचिव्येन सर्वमिदं त्रिगुणात्मकं जगत् सृजति रक्षति संहरति च। तदज्ञानादेव जगति सर्वविधस्य दुःखस्य समुद्भवः। स च ब्रह्मणो विष्णोः देव्याश्चाभिन्नः। तत्तुष्टिभावनया कृतैः वर्णाश्रमकर्मभिः तस्य परितोषः, कर्तुर्विशुद्धिः, साध्येन परमात्मना साधकस्य जीवात्मनः कल्पितान्यत्वनिरासः, तेन च तस्य कृतार्थता। ईश्वरगीतायामुपसंहृतं व्यासगीतायां चानुमोदितं पूर्वार्धे च समुपक्रान्तं प्रोक्तपूर्वं ज्ञानमेव कूर्मपुराणस्य प्रतिपाद्यम्। मनुष्यो धर्ममार्गणार्थं समुपार्जयन् कामं चोपचिन्वन् मोक्षार्थमवहितश्चेष्टेतेत्येप एव कूर्मपुराणस्योपदेशनिष्कर्षः।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्

श्रीश्रीकृष्णमणित्रिपाठी पु० वि० अ० वा० सं० वि० वि०

प्राणिमात्रस्य सततं भवति सुखेच्छा स्वाभाविकी, परं लौकिकैरुपायैर्न सम्भवति निरतिशयसुखस्यावाप्तिः। अतस्तदुपलब्धयेऽपौरुषेयवेदबोधितेतिकर्तव्यता-श्रयणमेव श्रेयस्करं मन्यन्ते वेदविदो विद्वांसः। वस्तुतः प्रत्यक्षेण अनुमित्या वा यस्यार्थस्य अवगतिर्न संभवति सोऽर्थो वेदादेवावगम्यते। एतदेवास्ति वेदस्य वेदत्वम्—

प्रत्यक्षेणानुमानेन यस्तूपायो न लभ्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदिता॥

वेदपुराणयोरैक्यम्

मनुष्यो महानपि बुद्धिमान् कथं न स्यात् किन्तु तस्मिन् भ्रमप्रमादकर्णा-पाटवादीनां सम्भावना भवत्येव। अतो मानवरचितं ग्रन्थमधीत्य निर्भ्रान्तं पूर्णञ्च ज्ञानं न भवितुमर्हति। वेदा न केनापि पुरुषेण प्रणीताः, नापीश्वरेण निर्मिताः सन्ति। परं परमेश्वरनिश्वासवन्नित्या अनादयोऽनन्ता अपौरुषेयाश्च सन्ति। अपौरुषेयत्वादेव वेदा समस्तपुरुषोदयशङ्कापङ्ककलङ्काङ्किता न भवन्ति। प्रलये परमेश्वरेऽन्तर्हितास्ते सर्ग-समये ईश्वरस्य निश्वासरूपेण निःसरन्ति। सर्वप्रथमं ब्रह्मा वेदानां ज्ञानं प्राप्नोति ततो यो य ऋषिर्यादृशीं तपस्यां कुरुते तस्य तस्य समक्षं तदनुरूप एव वेदस्यांशः प्रादुर्भवति। ततः स ऋषिः स्वकीयं शिष्यं वेदं शिक्षयति। सोऽपि स्वं शिष्यं शिक्षयतीत्येवं शिष्य-प्रशिष्य-तच्छिष्याणामनवच्छिन्नया गुरुशिष्यपरम्परया वेदानां शतशः शाखाः समभवन्। अद्यत्वेऽपि वेदानां प्रचारश्च बोभवीतितमाम्। तथा चोक्तं श्रीमद्भागवते—

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन्॥ १।४।२३ ॥

पुरा द्विजबालका उपनयनसंस्कारानन्तरं सब्रह्मचर्यं चिरकालं गुरुगृहे उषित्वा पूर्वं वेदानभ्यसन्ति स्म। ततो वेदार्थमवगन्तुं शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-ज्योतिष-च्छन्दसां षण्णां वेदाङ्गानामुपाङ्गानाञ्चाध्ययनं कुर्वन्ति स्म। निष्कामभावनापूर्वकं वैदिककर्मणामनुष्ठानेन यदाऽन्तःकरणं निर्मलं भवति तदैव निर्मले मनसि वास्तविकं ब्रह्मज्ञानं संस्फुरति। एतदभिप्रेत्यैवोक्तं 'ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। अत एव विष्णुपुराणे द्विजातीनां ब्रह्मचर्यव्रतपालनपूर्वकं वेदग्रहणस्य स्वधर्माचरणे-नोपार्जित......यज्ञकरणस्य च कर्तव्यता समुपदिष्टास्ति जातिभिः।

ब्रह्मचर्यपरैर्ग्राह्या वेदाः पूर्वं द्विजातिभिः।
ततः स्वधर्मसंप्राप्त्यै यष्टव्यं विधिवज्जनैः ॥ ६।२।१९

साधारणा जना अधिकसमयपर्यन्तं गुरुकुले स्थातुं न शक्नुवन्ति नापि वेदार्थमवगन्तुं सब्रह्मचर्यं तादृशं कठिनं परिश्रमं कर्तुं प्रभवन्तीत्यालोच्य महर्षिः वाल्मीकिः भगवान् वेदव्यासश्च अलौकिकीं तपस्यां कृत्वा परमात्मनोऽनुकम्पया समाधिजन्यया ऋतम्भरप्रज्ञया वेदानां यथार्थमर्थं ज्ञात्वा तत्प्रचारस्यावश्यकता-मनुभूय वेदानां निगूढमर्थमवगन्तुं रामायणं महाभारतं पुराणानि च व्यरचितवन्तौ। अतो रामायणेन महाभारतेन पुराणैश्च वेदानां यथार्थमर्थमवगन्तुं यत्नो विधेयः। अत एवोक्तं महाभारतस्यादिपर्वणि—"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्"। १।१।६७। ये च पुराणेतिहासयोरनुशीलनं विना वेदानामवास्तविकमर्थमवगन्तुं यतन्ते, मन्ये तेषां वास्तविकं वेदार्थज्ञानं न सम्भवति। तथा चोक्तं मत्स्यपुराणे—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
नो चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥ ३।५५॥

द्वापरान्ते स्वयं भगवान् नारायणो पराशरात्सत्यवत्यां व्यासरूपेणावतीर्य सुगमतया वेदार्थानां ज्ञानाय पुराणानि रचितवान्—

विस्ताराय च वेदानां स्वयं नारायणः प्रभुः।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले॥

वेदे गूढतया वर्णितानामर्थानां सुरुचिपूर्णतया शैल्या यावद्वर्णनं न क्रियते तावत् पुराणानां निर्माणस्य प्रयोजनं न पूर्णं भवितुमर्हतीत्यतः पुराणेषु आख्यानोपाख्यान-गाथाकल्पशुद्धिभिः वेदार्थानां विस्तारं कृतवान् भगवान् व्यासदेवः तदुक्तं विष्णुपुराणे—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थं विशारदः॥ ३।६।१५॥

वेदानां वास्तविकं रहस्यमवगन्तुं प्राचीनाख्यानोपाख्यानगाथादिवर्णन-व्याजेन विविधान् सदुपदेशान् दातुं विभिन्नविषयाणामुत्कटलालसां शमयित्वा अन्तः-करणं भगवदुन्मुखं कर्तुं यासामैतिहासिकघटनानामुल्लेख आवश्यक आसीत् पुराणेषु तासामेव वर्णनं विशेषतो विद्यते।

धार्मिकदृष्ट्या पुराणानि वेदविहितस्यैव धर्मस्य भावगम्यया सरलया भाषया वर्णनं कुर्वन्ति। पुराणानि गौरवदृष्ट्या अत एव दृश्यन्ते यदत्र वेदानां शिक्षायाः पुष्टिः कृतास्ति दृष्टान्तद्वारा च वेदार्थानामेव विशदीकरणं विद्यते। अद्यत्वे यद्यपि वेदानां सर्वाः शाखा नोपलभ्यन्ते तथापि दिव्यज्ञानसम्पन्नः त्रिकालदर्शी महर्षिः

वेदव्यासः तासां मूलविषयं पुराणेषु यत्र तत्राङ्कितवानस्ति। येनाद्यत्वे बहूनां वेद-शाखानामनुपलब्धावपि तासां प्रतिपाद्यविषयाणामवगाहनं क्रियत एव।

पुराणानां कथाभिः सरलतया सर्वं साधनं शीघ्रं बुद्धिगम्यं विधातुं शक्यते। यथा यजुर्वेदस्य ईशावास्यमन्त्रे मनुष्यतायाः पूर्णविकासस्य साधनं निर्दिष्टमस्ति। किन्तु केवलेन मन्त्रपठनेन अर्थज्ञानेन वा सा भावना हृदये न जागर्ति। अतः पुराण-प्रतिपादिताभिः महर्षेः दधीचेः, राज्ञः शिवेः, मोरध्वजस्य कथाभिरुपकारभावना, सत्य-वादिनो हरिश्चन्द्रस्य, धर्मराजस्य युधिष्ठिरस्य चोपाख्यानेन सत्यनिष्ठा, दानवीरस्य बलेः कर्णस्य च कथानकेन दाननिष्ठा, अद्रोहनिष्ठा, अनसूया, सती, सीता, सावित्री, नर्मदा, सुकन्या, मदालसा, दमयन्ती, सुलोचना, इत्यादीनां पतिव्रतानां च पवित्राचरणैः पातिव्रत्यधर्मपरायणतायाः सञ्चारः नारीषु सहसा जायते। एवं सत्यं वद, धर्मं चर, इत्याद्युपदेशमात्रेण कश्चन सत्यवादी धर्मात्मा वा भवितुं नार्हति। अतो वेदवाक्य-बोधितामिति कर्त्तव्यतां पुराणेषु मनोग्राह्यां विधातुमैहिकं पारलौकिकञ्च जीवनं सफलयितुमुपदेशो दत्तोऽस्ति।

सर्वासां पौराणिकीनां कथानां मूलं वेदा एव विद्यन्ते। पुराणेषु यत् किमपि लिखितं वर्त्तते तत्सर्वं वेदमन्त्राणां विस्तृता व्याख्याऽस्ति। यथा ऋग्वेदे "इदं विष्णुर्वि-चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्॥ १।१२।१७॥ इत्यादिना वर्णिता वामनावतारस्य कथा वामनादिपुराणेषु विस्तरेण वर्णिता विद्यते। अथर्ववेदे ८।३।४।५ महाराजस्य पृथोः पृथ्वीदोहनं संक्षेपेण वर्णितमस्ति, परं श्रीमद्भागवते तदेव सविस्तरं वर्णितं विद्यते। एवं पुराणेषु सर्वत्र पुष्पमालायां सूत्रमिव वैदिकमूलस्रोतोऽनुस्यूतोऽस्ति। वेदाः पुराणानि च एकस्यैव सनातनधर्मस्याभिवृद्धये लोककल्याणाय च विभिन्नकाले आविर्भूता महाग्रन्था मन्यन्ते। वस्तुतो विषयदृष्ट्या पुराणस्य वेदात् किमपि पार्थक्यं नास्ति। यदि पार्थक्यं विलोक्यते तर्हि उभयोः वर्णनपद्धतावेव। तस्माद्वेदार्थानां विवरणाद्वेदपुराणयोरैक्यं निर्बाधं सिद्ध्यति।

पुराणेषु वेदार्थस्योपबृंहणम्

पुराणेषु वेदार्थस्योपबृंहणं चतुर्भिः प्रकारैः सञ्जातमस्ति। (१) कुत्रचित् वैदिकमन्त्राणां पदानि एव यथातथं प्रयुक्तानि सन्ति, कुत्रचित्तेषां भावः संगृही-तोऽस्ति, क्वचन चोभावपि संगृहीतौ स्तः। (२) कुत्रचित् पुराणेषु वेदमन्त्राणां विशदा व्याख्या कृतास्ति (३) कुत्रचित् वैदिकाख्यानानां विस्तारः कृतोऽस्ति (४) कुत्रचिच्च वैदिकप्रतीकेषु गूढतया निर्दिष्टो भावः पुराणेषु सरलशैलीद्वारा कथानकरूपेण व्यक्तीकृतोऽस्ति। यथा विष्णुपुराणे ध्रुवेण कृतायां विष्णुस्तुतौ—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १।१२।५८-६५।

इत्यादिना यजुर्वेदीयपुरुषसूक्तस्य पदानि भावाश्चोभये सन्ति गृहीताः। एवं श्रीमद्भागवते नारदब्रह्मसंवादे—

सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति॥ २।६।१५–३०॥

लोककल्पनायाम्—पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः।
ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत (२।५।३५–४२)

ब्रह्मपुराणे च—ब्राह्मणस्तु मुखात्तस्या भवन् बाह्वोश्च क्षत्रियाः।
मुखादिन्द्रस्तथाग्निश्च श्वसनः प्राणतोऽभवन्॥ १६१।४९–५०॥

इत्याद्युपरिनिर्दिष्टेषु तत्तत्पुराणपद्येषु शब्दतो भावतश्च पुरुषसूक्तस्य उपयोगः कृतोऽस्ति।

वायुपुराणे (५५।२९–५०) ब्रह्मणा विहितायां शिवस्तुतौ च यजुर्वेदीयरुद्राध्यायस्थ-मन्त्राणां पदानि भावाश्च सन्ति सङ्गृहीताः।

यथा-नमोऽस्तु ते देव! हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे॥५५।४६॥

एवञ्च तत्तत्पुराणानां विष्णुस्तुतौ वेदोक्तविष्णुमंत्राणां शिवस्तुतौ च शिवमन्त्राणां विविधानि पदानि प्रयुक्तानि सन्ति भावाश्च सन्ति उपबृंहिताः।

(२) पुराणेषु वैदिकमन्त्राणां व्याख्या कुत्रचित्स्वल्पैः अक्षरैः क्वचिच्च विस्तरतः विहितास्ति। यथा—

(क) यजुर्वेदीयप्रख्यातमन्त्रस्य त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम् ३।६० इत्यस्य व्याख्या लिङ्गपुराणस्य पूर्वार्द्धे ३५।१८–२५ अष्टश्लोकैः एवं कृतास्ति—

त्रियम्बकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम्।
त्रिमण्डलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥ ३५।१८॥

(ख) बहुभिर्बहुप्रकारं व्याख्यातस्य। ऋग्वेदीयस्य चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः (४।५८।३) इति मन्त्रस्य रुचिरा शिवपरकव्याख्या शिवपुराणस्य काशीखण्डे एवं कृतास्ति—

वृषभो यस्त्रिधाबद्धो रोरवीति महोमयः।
स नेत्रविषयी चक्रे परमः परमेष्ठिना॥
शृङ्गाश्चत्वारि यस्यासन् हस्तासः सप्त एव च।
द्वे शीर्षे च त्रयः पादाः स देवो विधिनैक्षत॥ ४।७३।९५–९६॥

श्रीमद्भागवते चायं श्लोको यज्ञपरको व्याख्यातोऽस्ति-

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गायतन्तवे ।
सप्त हस्ता यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ८।१६।३१ ॥

(ग) अथर्ववेदस्य द्वासुपर्णासयुजा सखायौ १।१४।२० इति मन्त्रस्य व्याख्या श्रीमद्भागवते एवं कृतास्ति यत्र वेदस्य गभीरो भावः स्पष्टतया व्यक्तीभवति—
सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ११।११।६ ॥
योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धः विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ११।११।७ ॥

वायुपुराणे मन्त्रस्य सङ्केत एवंकृतोऽस्ति—

दित्यौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ पदविद्रुमौ ।
एकस्तु यो द्रुमं वेत्ति नान्यः सर्वात्मनस्ततः ॥ ९।११९ ॥

(घ) ऋग्वेदमन्त्रस्य—विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम् १।१५४।१ इत्यस्य व्याख्या श्रीमद्भागवते एवंविधा कृतास्ति यया स्पष्टतया मूलार्थो व्यक्तीभवति ।

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह
यः पार्थिवानपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं
यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥ २।७।४० ॥

(ङ) ईशावास्यमिति मन्त्रस्य "ईशावास्यमिदं सर्वम्" ४०।१ इत्यस्य व्याख्या किञ्चित्परिवर्तनेन सह श्रीमद्भागवते एवं कृतास्ति—

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ ८।१।१०।

(च) आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयान्याहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ १।२।३-४ ॥

इति कठोपनिषदुक्तशरीररथे, इन्द्रियहयबुद्धिसारथिमनःप्रग्रहरथीजीवकल्पनाधारे व्याख्यां विधाय मुण्डकोपनिषन्निर्दिष्टस्य प्रणवो धनुः शरीरं ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥ २।२।४ ॥

इति मन्त्रस्य व्याख्या श्रीमद्भागवते एवं कृतास्ति—

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम् ।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद् बन्धुरमीशसृष्टम् ॥

अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम्।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥ ७।१५।४१-४२ ॥

(छ) तैतिरीयोपनिषत्प्रतिपादितस्य "आचार्यः पूर्वरूपम्, अन्तेवास्युत्तर-रूपम्, विद्या सन्धिः, प्रवचनं सन्धानम्" १।३। इति मन्त्रस्य व्याख्या श्रीमद्भागवतस्यै-कादशस्कन्धे एवंकृताऽस्ति--आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः।
तत्सन्धानं प्रवचनं विद्यासन्धिः सुखावहः ॥ ११।१०।१० ॥

आचार्योऽन्तेवासी चारणिः प्रोक्तोऽस्ति तयोः द्वयोः सन्धानञ्च प्रवचनरूपे-णाङ्कितमस्ति। (ज) "आत्मानं चेद्विजानीया" दियमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसञ्ज्वरेत् ॥ ४।४।१२ इति बृहदारण्यकोपनिषन्मन्त्रस्य स्पष्टीकरणं श्रीमद्भागवतस्य सप्तमे स्कन्धे एवंकृतमस्ति--

"आत्मानं चेद्विजानीयात् परं ज्ञानधुताशयः। किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः। १५।४० (झ) तैत्तिरीयारण्यके २।२ सन्ध्याकर्मणि बाधोपस्थापकानां मन्देहनामकराक्षसानां यद्वर्णनमुपलभ्यते तस्य विस्तृतं विवेचनं वायुपुराणे एवं-कृतमस्ति—

तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः।
प्रार्थयन्ति सहस्रांशुमुपयान्तं दिने दिने ॥
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम्।
ओंकारं ब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्याचाभिमन्त्रितम् ॥
तेन दह्यन्ति ते पापा वज्रभूतेन वारिणा ॥ ५०।६३-६५ ॥

(३) वैदिकवाङ्मये विभिन्नदेवानां स्वरूपविवेचनावसरे स्थले-स्थले प्रसङ्गतोऽनेकान्याख्यानानि वर्णितानि सन्ति। तत्र बहूनामाख्यानानामुपबृंहणं पुराणेषु जातमस्ति यतो हि साधारणेभ्यो जनेभ्यः सुलभशैल्यां वैदिकतत्त्वानामुपदेशं दातुं पुराणानां प्रणयनं जातमस्ति। पुराणद्वारा तात्पर्यविशेषसिद्ध्यर्थमेव वैदिकान्या-ख्यानान्युपबृंहितानि सन्ति।

(ञ) यत्र वेदेषु प्रजापतिद्वारा विभिन्नरूपधारणस्योल्लेखोऽस्ति तत्र पुराणेषु विष्णुरेव विविधरूपधारी अभिमतोऽस्ति। यथा जलप्लावनसमये प्रजापतिद्वारा मत्स्यरूपधारणस्याख्यानं "मनवे ह वै" इत्यादिना १।८।१।१ शतपथब्राह्मणे संक्षेपेण वर्णितमस्ति। परन्तु तदेव श्रीमद्भागवते—१।३।१५, ८।२४।११-६१ अग्निपुराणे—२।४९ गरुडपुराणे १।१४२ पद्मपुराणे ५।४।४३ महाभारतस्य शान्तिपर्वणि ३४० अध्याये च विशदरूपेण वर्णितमस्ति। मत्स्यपुराणस्य निर्माणन्तु अस्याख्यान-स्याधारे एव जातमस्ति। मत्स्यावतारस्येयमद्भुता कथा प्रायः प्रत्येकं पुराणेष्वङ्कितास्ति परं वैदिकपौराणिकाख्यानकयोरियदेवास्त्यन्तरं यत् यत्र शतपथ-ब्राह्मणे अस्याख्यानस्य भौगोलिकं क्षेत्रं हिमाचलप्रदेशोऽस्ति तत्र श्रीमद्भागवते (८।२४) द्रविडदेशीया कृतमाला नदी वर्तते। एवं भौगोलिके भेदे विद्यमानेऽपि

कथारूपे न किञ्चिदस्ति अन्तरम्। एवं विधाय जलप्लावनस्य कथा न केवलं वेदपुराणेषु एव अङ्कितास्ति किन्तु बायबिल—कुराणादिष्वपि जलप्लावनं चर्चितमस्ति। अतो मत्स्यावतारस्येयं कथा न केवलं पुराणस्यातिकल्पना अपितु वेदवाङ्मयद्वारा अनुमोदिता अन्यसंप्रदायैश्चास्ति सर्वथा समर्थिता।

(आ) यत् कूर्मावतारस्योपाख्यानं शतपथब्राह्मणे ७।५।१।५ तैत्तिरीयारण्यके च "अन्तरतः" इत्यादिना १।२३।३ जैमिनीयब्राह्मणे ३।२७२ च संक्षेपेण वर्णितमस्ति। तस्यैवोपबृंहणं श्रीमद्भागवते ८।७ कूर्मपुराणे १।१६।७७-७८ अग्निपुराणे ३।४ गरुडपुराणे १।१४२ मत्स्यपुराणे २४८।३० पद्मपुराणे ५।४०।१३ ब्रह्मपुराणे १८० विष्णुपुराणे १।४ अध्यायेषु कृतमस्ति—आरण्यकेऽस्मिन् सहस्रशीर्षेत्यादिविशेषणविशिष्टाःत्कूर्मपुरुषः परमात्मनोऽभिन्नोऽभिमतोऽस्ति। पुरुषसूक्ते च शतपथे ७।५।१।५। अस्यैव वैदिकाख्यानस्योपबृंहणं समुद्रमन्थनं प्रसङ्गः। विभिन्नपुराणेषु कृतमस्ति। समुद्रमन्थनावसरे यदा निराधारतया मन्दराचलो जले निमज्जमान आसीत्तदा भगवतो अद्भुतं विशालतमं कूर्मरूपं गृहीत्वा मन्दराचलं स्वकीये पृष्ठे अवतस्तम्भ। एवं कूर्मावतारे पुराणेषु वैदिकतत्त्वस्यैवोपबृंहणं कृतमस्ति।

(इ) वाराहावतारस्य यदुपाख्यानं ऋग्वेदे ८।७७।१० तैत्तिरीयसंहितायां ७।१।५।१ शतपथब्राह्मणे चोपलभ्यते तस्योपबृंहणं श्रीमद्भागवते वाराहावतारप्रसङ्गे ३।१३।३५–३९ ब्रह्मपुराणे २१३।३२–३९ वायौ ६।१६–२३ मत्स्यपुराणे २४८।६६–७४ अग्निपुराणे ५।१–३ ब्रह्माण्डपुराणे ५।१६–२३ विष्णुपुराणे १।४।३२–३६ च आकर्षकवर्णनरूपेण कृतमस्ति। वाराहपुराणस्य निर्माणं तु अस्याख्यानस्योपबृंहणार्थमेव कृतमिति प्रतीयते। एवं वेदनिर्दिष्टवाराहावतारद्वारा पाताललोकात् पृथिव्या उद्धारकार्यं विभिन्नपुराणेषु समुपबृंहितमस्ति। वैदिकवाराहः पुराणेषु यज्ञवाराहरूपेणाङ्कितोऽस्ति तत्र स्पष्टं वैदिकत्वस्य छायास्ति पुराणानुसारं यावन्ति स्रुक्स्रुवमसादीनि यज्ञसाधनानि सन्ति तानि सर्वाणि वाराहदेहे प्रतीकरूपेणाङ्कितानि सन्ति।

(ई) वामनावतारस्य मूलस्रोतः वेद एवास्ति। वेदे विद्यमानस्य बलिवामनयोराख्यानस्य विस्तारो दृश्यते। ऋग्वेदे १।२२।२७ शतपथब्राह्मणे १।२।५।१ च वामनद्वारा असुरेभ्यः पृथ्वीं विजित्य देवेभ्यः प्रदानस्य घटनायाः स्पष्टमुल्लेखोऽस्ति यस्योपबृंहणं प्रायः सर्वत्र पुराणेषु दृश्यते। वामनपुराणस्य नामकरणन्तु घटनया अनया एवंकृतं विद्यते। यत्र विस्तरत एव तद्वर्णनं विद्यते। ऋग्वेदस्य उरुगायं शतपथस्य वामनं चैकीकृत्य पुराणेषु वामनावतारस्य पूर्णप्रसङ्गः प्रस्तुतोऽस्ति। तत्रान्तरमियदेवास्ति यत्र शतपथेऽसुरेभ्यः पृथ्वीविजयस्य चर्यास्ति तत्र पुराणेषु असुरराजं बलिं विजित्य देवराजाय इन्द्राय पृथ्वीदानस्य कथास्ति कथानकं यज्ञस्य महिमानं व्यनक्ति यतो देवताभिः असुराणां भूमौ यज्ञस्य विस्तारं विधाय सा स्वाधिनीकृता परं पुराणेषु त्रिभिः पदैः सकलां पृथ्वीम्, स्वर्गलोकबलिशरीरञ्च परिमीय समस्तां पृथ्वीं बलितो गृहीत्वा

देवेभ्यः प्रदत्ता। उभे अभि आख्याने भगवतो महिमानं व्यञ्जतः। वायुपुराणानुसारं वलेः यज्ञो नर्मदानद्या उत्तरे तटे भृगुकच्छे (भडौच) सम्पादित आसीत्। यत्र भृगुवंशीया ब्राह्मणा ऋत्विजो भूत्वा यज्ञकार्यं सम्पादितवन्तः।

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षदाराद्रुदितं यथा वम्॥ ८।१८।२१

अग्निपुराणस्य चतुर्थाध्याये ५–१११ श्लोकैरतिसंक्षेपेण वामनावतारस्य कथा वर्णितास्ति—

तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि वामनो बलिमब्रवीत्।
पदत्रयं हि गुर्वर्थं देहि दास्ये तमब्रवीत्॥
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः।
भूर्लोकं सभुवर्लोकं स्वर्लोकं च पदत्रयम्॥
चक्रे बलिं च सुतलं तच्छक्राय ददौ हरिः।
शक्रो देवैः हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखीत्वभूत्॥ ४।९–१२।

एवं वैदिकवाङ्मये संपष्टतया भगवतो विष्णोः समुपलब्धानां मत्स्य-कूर्म-वाराह-वामनाद्यवताराणामाख्यानं तत्तत्पुराणेषु प्रसङ्गतो भगवता वेदव्यासेन बहुश उपबृंहितमित्यत्र नास्ति कापि केषाञ्चिद् विचिकित्सा।

पौराणिकमाख्यानं द्विविधं धार्मिकं लौकिकञ्च। तत्र धार्मिकेषु आख्यानेषु विष्णुद्वारा विभिन्नरूपधारणस्य कथायाः वर्णनमस्ति। लौकिकाख्यानेषु च कस्यचिद्विशिष्टस्य राज्ञ इतिवृत्तम्, ऋषीणामुज्ज्वलं चरित्रम्, लोकरञ्जनं प्रणयकथा च कुत्रचित् संक्षेपेण क्वचन च विस्तरतः समुपलभ्यते। यथा—

(अ) ऋग्वेदे विख्यातम् उर्वशीपुरूरवसोराख्यानं स्वल्पकायमस्ति किन्तु पुराणेषु अस्याति रञ्जनमुपबृंहणं दृश्यते। चन्द्रवंशस्यारम्भकालाद् अस्याख्यानस्य सङ्केतः अनेकेषु पुराणेषु तूपलभ्यत एव परं भगवता व्यासेन श्रीमद्भागवते विष्णुपुराणे चास्याख्यानस्योपबृहणं प्रणयकथाया विशुद्धसाहित्यिकरूपेण प्रस्तुतमस्ति। श्रीमद्भागवतस्य नवमस्कन्धे चतुर्दशाध्याये ऐलोपाख्यानावसरे विष्णुपुराणे चतुर्थेंऽशे षष्ठाध्याये हरिवंशस्य प्रथमपर्वणि षड्विंशाध्याये च पुरुरवस आख्यानं महता विस्तरेण वर्णितमस्ति।

(आ) ऐतरेयब्राह्मणे त्रयस्त्रिंशदध्याये यत् हरिश्चन्द्रशुनःशेपयोराख्यानं वर्णितमस्ति तस्योपबृंहणमनेकेषु कृतमस्ति। विशेषतः मार्कण्डेयपुराणस्य ८ अध्याये हरिश्चन्द्रतीर्थप्रसङ्गे ब्रह्मपुराणस्य १०४ अध्याये ऐतरेयमन्त्राणां व्याख्यानपूर्वकं मनोहरया शैल्या अस्याख्यानस्योपबृंहणं कृतमस्ति। श्रीमद्भागवते ९।७ अध्याये वैदिकमन्त्राणां विशदा व्याख्यास्ति। देवीभागवतस्य ७ स्कन्धे १३-२७ अध्यायेषु तु कथेयं महत्यारोचकपद्धत्या समुपस्थापितास्ति यथा हठाद्धृदये करुणोदयः प्रादुर्भवति।

मार्कण्डेयपुराणस्य हरिश्चन्द्रोपाख्यानमत्यन्तं मनोहरं प्रभावोत्पादकं साहित्यकञ्चास्ति। श्मशानस्य स्वाभाविकं दृश्यं समुपस्थाय पुराणेनानेन आख्यानेऽस्मिन् अधिकतरा रोचकता उपस्थापिता।

(इ) तैत्तिरीयब्राह्मणे कठोपनिषदि च वर्णितस्य नचिकेतोपाख्यानस्योपबृंहणं वाराहपुराणे महाभारते च विशेषरूपेण कृतमस्ति। सहैव परिवर्तितपरिस्थितौ प्रसङ्गानुसारि मूलस्य तात्पर्यं परिवर्त्य समयानुकूलरोचकतायाः सामञ्जस्यं प्रस्तुतमस्ति।

४—(१) प्रायः पुराणेषु ये आक्षेपा भवन्ति ते त्रिधा विभक्तुं शक्यन्ते (अ) अश्लीलताप्रयुक्त आक्षेपः (आ) असम्भवताप्रयुक्त आक्षेपः (इ) तथा परस्परं विरुद्धताप्रयुक्त आक्षेपः। तत्राश्लीलताप्रयुक्तेषु आक्षेपेषु तासां पौराणिकीनां कथानां गणनास्ति। यासु पुराणरहस्यानभिज्ञैः अश्लीलताया आभासोऽनुभूयते परन्तु वस्तुतस्तत्र नास्ति काचिदश्लीलता। असम्भवताप्रयुक्तेषु आक्षेपेषु ता एव कथा ज्ञेया या साधारणैः जनैः असम्भवता प्रतीयते परं नास्ति वास्तविकः कश्चनासम्भवप्रकारः। परस्परविरुद्धताप्रयुक्तास्ते सन्ति आक्षेपा येषु परस्परं विरोधः प्रतीयते। किन्तु नास्ति तेषु कश्चन वास्तविको विरोधः।

(२) वैदिकी भाषास्ति प्रतीकात्मिका यत्र रूपकसाहाय्येन मूलसिद्धान्तानां प्रतिपादनं कृतमस्ति। रूपकाणां यथार्थज्ञानाय कुञ्जिकास्ति अन्तर्निविष्टा पुराणेषु। पुराणानां साहाय्येनैव वेदस्य गभीरं तत्त्वरत्नमवाप्तुं शक्यते नान्यथा। यानि हि तत्त्वानि वैदिकमन्त्रेषु रूपकालङ्कारे निगूढतयोपवर्णितानि सन्ति तान्येव पुराणेषु सर्वजनानामुपदेशार्थं सरलया बोधगम्यया शैल्या व्यक्तीकृतानि सन्ति वैदिकप्रतीकानां यथार्थतो ज्ञानाभावेनैव पुराणेषु अनेके आक्षेपा आरोप्यन्ते। अतः प्रतीकानां वास्तविकं तात्पर्यं सम्यगवबुद्ध्य पुराणानामनुशीलनं श्रेयस्करं भवितुमर्हति।

यद्यपि सन्ति प्रतीकानि अनेकानि तानि नैकत्र संगृहीतुं शक्यन्ते इति सर्वप्रसिद्धस्य प्रतीकस्य दिग्दर्शनं क्रियते—

(क) "अहल्यायै जारः" ३।३।४।१८ इति शतपथब्राह्मणस्थप्रतीकस्य विशदीकरणमेवं जातमस्ति देवीभागवते—सहस्रभगसम्प्राप्तिः दुःखं चैव शचीपतेः।

स्वर्गाद्भ्रंशस्तथावासः कमले मानसे सरे १।५।४६

ब्रह्मवैवर्ते च—

शक्रो गोतमरूपेण तां सभोगां चकार सः।
मुनिः शशाप शक्रं वै भगाङ्गस्त्वं भवेति च॥ ४६॥
कोपाच्छशाप पत्नीं च रुदतीं भयविह्वलाम्।
त्वं वै पाषाणरूपे च महारण्ये भवेति च॥ ४७॥

अर्थात् इन्द्रेण गौतमर्षिं वञ्चयित्वा तद्धर्मपत्नी अहल्या धर्षिता येन क्रुद्धो भूत्वा गौतमः इन्द्रस्य सहस्रभगप्राप्तिरूपं शापं प्रदत्तवान् अहल्याञ्च पाषाणदेहप्राप्तये शशाप परिणामतः शक्रः सहस्रभगः सम्पन्नः अहल्या च पाषाणशिला बभूव।

एवं पुराणेषु उपबृंहितस्य अश्लीलतया भासमानस्य अस्य वैदिकप्रतीकस्य अश्लीलतादोषदूरीकरणाय कुमारिलभट्टेन स्वकीये तन्त्रवार्तिके एतद् रूपकरहस्यं व्यञ्जयता प्रोक्तं यदियं वेदगाथा सूर्यरात्र्योः दैनिकव्यवहारस्यास्ति द्योतिका। अत्र उत्तमा गावो रश्मयो यस्य स गोतम इति व्युत्पत्त्या चन्द्रमा अस्ति गोतमः, तस्य पत्नी रात्री अहर्लीयते यस्यां सा इति व्युत्पत्या अहल्या अस्ति। सूर्यश्च परमैश्वर्य-सम्पन्नत्वाद् अस्ति इन्द्रः। सूर्योदयादेव रात्रिः जीर्यते अतः रात्रेः जरयिता सूर्यः जार उच्यते। तथा चोक्तं निरुक्ते—आदित्योऽत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयिता। ३।३।४। तथा च कुमारिलभट्टस्य सम्मतौ चन्द्रमसः पत्नी रात्रिः सूर्यस्य समुदयेन जीर्णा सती समाप्तिमधिगच्छति। अस्या एव दैनन्दिनीयघटनाया वर्णनमुक्तगाथायां कृतमस्ति। यास्केनापि निरुक्ते एतदेव तात्पर्यं संकेतितम्। सुषुम्णः सूर्यः रश्मीश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति सोऽपि गौरुच्यते सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते।२।२।२।

न हि वस्तुत इन्द्रेण विषयभोगलालसया कार्यमिदमनुष्ठितम् अपितु गोतमस्य तीव्रया तपश्चर्यया त्रस्तस्य देवसमूहस्य रक्षायै एव तेन अहल्या धर्षणकार्यस्याभि-नयोऽङ्गीकृतः। तद्यथा एकदा जनस्थाननिवासिभ्यः क्रुद्धो गौतमो मुनिः सुरम्यं दण्डकारण्यम् अनावृष्टिशापेन विकृतं कर्तुमारब्धवान् अतो देवताभिः तत्तपोबलस्य दुरुपयोगं दृष्ट्वा जगत्कल्याणार्थं तं तपसा भ्रंशयितुं विचार्य सादरं देवराजः प्रार्थितः। तदनु तेन लोकोपकारदृष्ट्या गोतमे'''क्रोधमुत्पाद्य तं तपसो च्यावयितुं अहल्याया धर्षणस्याभिनयो रचितः। तदुक्तं वाल्मीकीये रामायणे बालकाण्डे ४६ सर्गे—

कुर्वता तपसो विघ्नं गोतमस्य महात्मनः।
क्रोधमुत्पाद्य हि मया सुरकार्यमिदं कृतम्॥

इदमस्ति मनोवैज्ञानिकं तथ्यं यत् रहसि निजभार्यया सह व्यर्थचारायोद्धृतं कञ्चन पुरुषं दृष्ट्वा यावतो भयङ्करस्य क्रोधस्य आवेशः सम्भवति न तावत् केनचिदन्य-कार्येण भवितुमर्हति। अत इन्द्रेण गोतमस्य क्रोधोत्पादनाय तत्पत्न्या अहल्याया धर्षणमेव स्वकीयममोघमस्त्रममन्यत।

तथा च शस्यश्यामलं दण्डकारण्यं निर्जनं निर्मातुः गोतमस्य राष्ट्रविघातकं तपोबलं ध्वंसयितुं सर्वदेवसंगत्या इन्द्रद्वारा कृतमहल्याधर्षणकार्यं कथमपि नास्ति दोषास्पदम्। एतेनेदमेव सिद्ध्यति यत् समस्तानां तत्कार्यसम्पादनार्थमेव इन्द्रेणाहल्या-धर्षणस्याभिनयः प्रदर्शितः। तत्र तस्य नासीत् कश्चित् स्वार्थम्? अत एवास्य परोप-कारस्यान्तिमः परिणामः इन्द्रस्य कृते महावरदानरूपेण जातः। स सहस्रभगस्य

स्थाने सहस्राक्षधारी सम्पन्नः। अहल्या आसीद्ब्रह्मणो मानसी सृष्टिः, इन्द्रश्चासीद् देवयोनेः दिव्यो महापुरुषः देवतानामधिपतिः। उभयोरमैथुनीसृष्टेः सत्वात्कार्यमिदं वस्तुतो नास्ति दोषाधायकम्।

शास्त्रानुसारं देवयोनिर्भोगयोनिः अभिमतास्ति। अतः परस्त्रीगमनादिदोषः मनुष्ययोनावेव सम्भवति न देवयोनौ।

अत्र वेदपुराणयोरिदमेवान्तरं यत्र वेदः इन्द्रं जारं कथयित्वा तद्दोषमार्जनार्थं न कामपि व्यवस्थां चिन्तयति। तत्र पुराणं मानवमर्यादारक्षणाय इन्द्रं सदोषं निश्चित्य तदर्थमुचितं दण्डं दातुं व्यवस्थापयति।

एवं तत्त्वाद् वैदिकमाख्यानं पुराणेषु उपबृंहितं सद् नवं रूपं धत्ते।

(ख) एवम्–सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां प्रायच्छदहृीयमाणः................ ५।१७।२ इति अथर्ववेदीयं ताराचन्द्रमसोराख्यानं श्रीमद्भागवते नवमे स्कन्धे १४ अध्याये, विष्णुपुराणे चतुर्थांशे षष्ठाध्याये च उपबृंहितमस्ति। वेदे दत्तैर्निर्देशैः कथाया अस्या आभ्यन्तरं रहस्यं न तावद् व्यक्तीभवति यावत्पुराणव्याख्यया अस्य रहस्यं न सम्यग्ज्ञायेत। अस्य रहस्यस्योद्घाटनाय कुञ्जिकास्ति श्रीमद्भागवते समरस्तारकामय इति प्रतीकः।

(ग) शतपथे १।६।३।२–५ निर्दिष्टमिन्द्रविश्वरूपं कथानकं श्रीमद्भागवते ६।६।४४–४५, ६।९।१–१० उपबृंहितमास्ते शतपथे इन्द्रद्वारा विश्वरूपवधस्य न किञ्चित्कारणं निर्दिष्टं परं श्रीमद्भागवते पुराणे तदर्थं युक्तियुक्तं कारणं कथयित्वा वस्तुतो वेदार्थस्योपबृंहणं कृतमस्ति। शतपथस्य न्यूनतां दूषयितुं अपराधविशेषं कल्पयित्वा सहेतुकं ब्रह्महत्यायाः कथायामस्यां यो निर्देशः कृतोऽस्ति स वस्तुतो वेदार्थसम्पुष्टिकमुपबृंहणमेवास्ति।

(घ) प्रजापतिः स्वां दुहितरमधिस्कन् १०।६१।७ इति ऋग्वेदीयं मन्त्रं श्रीमद्भागवते ३।१२।२८–३२ उपबृंहितमस्ति। वैदिकस्याख्यानस्य पौराणिक्याः कथायाश्चोभयोरस्ति एक एवाकारः। किन्तु श्रीमद्भागवते इदमुपबृंहितमस्ति यद् अधर्मं प्रति अभिरुचिमालोक्य स्वैः पुत्रैः मरीच्यादिभिः अपमानितः प्रजापतिः स्वकीयं तद्देहं तत्याज येन अकर्मणि स्वदुहितरि तस्य जघन्या प्रवृत्तिः प्रादुर्भूतासीत्—

स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम्।
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा॥
तां दिशं जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः॥ ३।१२।३३।

(ङ) त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः सखा सखीभ्य ईड्यः १।७५।४ इति ऋग्वेदीयं मन्त्रं श्रीमद्भागवते रासलीलायामुपबृंहितमस्ति। तत्र रासलीलाया विशुद्धतासिद्धये कृष्णं परं ब्रह्म मत्वा यत् किञ्चिल्लिखितमस्ति तत्सर्वं ब्रह्मदृष्ट्या सत्यमस्ति।

(च) घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानाभिरक्षतादिमम् २।१३।१ इति अथर्ववेदीयं मन्त्रं श्रीकृष्णस्य नवनीतचौर्ये श्रीमद्भागवते ब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णजन्मखण्डे च समुपबृंहितमस्ति।

एवं पुराणैः वैदिकाख्यानानां सरलं सहेतुकं मनोग्राहि च व्याख्यानं प्रस्तुत्य जनसाधारणाय ग्राह्यं समादरणीयञ्च निर्माणम् अनेकाभिः दृष्टिभिः वेदार्थस्योपबृंहणं कृतमस्तीत्यत्र नास्ति काचित्संशीतिरित्यलं पल्लवितेन।
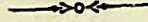
श्रीमदानन्दतीर्थस्य द्वैतदर्शनम्

ले० श्रीजितेन्द्रियाचार्यः वेदान्त-साहित्यरत्नम्, वेदान्तशास्त्री
पुराणेतिहासाचार्यः, वाराणसी।

दृश्यते अनेनाऽऽत्मेति करणल्युटा तावदात्मसाक्षात्कारकारकं शास्त्रं दर्शनपदस्याभिधेयतामर्हति। यावदात्मदर्शनं जीवस्य तात्त्विकसुखावाप्तिर्दुर्घटा। वैषयिकं सुखञ्च परिणामविरसत्वात् "विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्"। राजसं हेयं सुखाभासरूपम्। अत एव कृतात्मदर्शनाः संसाराब्धौ पतितान् जीवान् परवशतः समुद्दिधीर्षव आचार्याः प्रस्थानत्रयं व्याख्याय तत्प्रतिपाद्यमात्मतत्त्वं सपरिकरमुपदिश्य तान् सुखकणिकामृगतृष्णिकया बहिर्विषयाभिमुखमभिधावतः परावर्त्य सच्चिदानन्दात्मसाक्षात्कारप्रवृत्तान् कृपयैव वितेनिरे।

प्रेक्षावत्प्रवृत्तेः स्वप्रयोजनकारुण्यान्यतरव्याप्यत्वनियमात् परमात्मानुग्रहात् कृतकृत्या आचार्याः परदुःखप्रहाणेच्छारूपकारुण्येनैव प्रावर्तन्तात्र तत्त्वोपदेशे इत्यत्र नास्ति विचिकित्सावसरः। देश-कालाधिकारियोग्यतानुगुणमेव प्रवक्ता फलेग्रहिव्यापारो भवतीति। "असंशयं हृतो वक्ता यस्य श्रोता न बुद्धयते" इति श्रोत्रधिकारनिरपेक्षं किमपि विवक्षन् विगीयते।

तत्र भवान् श्रीमन्मध्वाचार्याद्यपरनामभाग् आनन्दतीर्थाचार्यो द्वैतसिद्धान्तं प्रतिपादयन् नव तत्त्वानि तदानीमुपसृतान् जिज्ञासून् जीवान् सप्रमाणम् उपादिक्षत्। आचार्यो जिज्ञासुमतिदार्ढ्याय इतराणि प्रचलन्ति मतानि प्रमाणपरिपन्थिपथारूढानि, अस्मत्प्रतिपाद्यमानमेव साधीयः सङ्ग्रहेलिमञ्चेति सभूमिकाबन्धमेव स्वप्रवचनमुपचक्रमे। नायमभिनवः पन्थाः, ब्रह्मसूत्रादिषु बौद्धसांख्यादिमतप्रत्याख्यानपूर्वकमेव श्रीमद्बादरायणाचार्याद्याः स्वविवक्षितमभाषिषतेति न सजवनिकं प्रेक्षावताम्।

तत्र नवसु तत्त्वेषु प्राथमिकं 'श्रीहरिः सर्वोत्तमः' इति। हरेः सर्वोत्तमत्वं हि 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय'। इति श्रीमद्भगवद्गीतायां "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" इति सप्रणिपातमुपसृतायार्जुनाय भगवान् श्रीकृष्ण उपदिष्टवान् इति सुतरामप्रत्याख्येयमिदम्। अत एव वैष्णवसम्प्रदाये भगवान् नारायणः 'निःसमाधिकः', 'समाधिकदरिद्रः' इति भंग्यन्तरेणाभिधीयते।

द्वैतीयीकं तत्त्वं 'जगत् सत्यम्' इति। गीताषोडशेऽध्याये 'असत्यमप्रतिष्ठं ते' इत्यादिनाऽऽसुरसम्पद्वर्णनाप्रसङ्गे जगदसत्यतावादस्य समावेशमुखेन तन्निन्दनात् 'जगत् सत्यम्' इति श्रीकृष्णाभिमतमिति सिद्धयत्येव। 'तत्त्वतो भेदः' इति तार्तीयीकं तत्त्वम्। जडजीवेशरूपपदार्थत्रयाभ्युपगमस्यापरिहार्यतायां तेषां परस्परवैलक्षण्यस्य

धर्मिग्राहकमानसिद्धत्वेन तत्र सम्प्रतिपत्तेः सुग्रहत्वान्नानुमानातिरिक्तं किमपि प्रमाणवचनमनपेक्षितत्वादुपन्यस्यतेऽत्र। चतुर्थञ्च 'जीवगणा हरेरनुचराः' इति। जीवगणस्य कर्मादिपरायत्ततायाः दुःखरूपायाः परिहारस्य भगवत्कृपैकसाध्यत्वात् भगवतः तत्तत्कर्मफलदातृत्वेन सर्वतन्त्रस्वतन्त्रत्वात् "सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च। अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः। भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः"। इति गीतासावधारणवचनेन परमात्माधीनसुखादिमत्त्वं जीवस्येति जीवसार्थस्तदनुचरः।

पञ्चमं तत्त्वं ते जीवाः परस्परं नैकजातीयाः। सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रैविध्यस्य गीतायां "ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः" इति स्फुटवर्णनात् "जीवगुणा नीचोच्चभावं गताः" इति। षष्ठं तत्त्वं "मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिः" "मुक्तिर्हित्वाऽन्यथाज्ञानं स्वरूपेणैव व्यवस्थितिः" इति भागवतवचनात् स्वरूपघटकानन्दाभिव्यक्तिरेव।

"अमला भक्तिश्च तत्साधनम्" इति सप्तमं तत्त्वम्। "पूज्येष्वनुरागो भक्तिः" इति भगवदनुरागो भक्तिपदेन विवक्षितः। स चानुरागो विमलोऽपेक्ष्यते मुक्तिसाधनत्वेन। अर्थात् फलनिरपेक्षो भगवदनुरागप्रवाहोऽविच्छिन्नो जीवान् दुःखरूपात् संसारात् सन्तार्य निजानन्दाभिव्यक्तिरूपमुक्तौ प्रतिष्ठापयिष्यति। "मानाधीना मेयसिद्धिः" इति नियमादुक्ततत्त्वबोधकं प्रत्यक्षानुमानागमरूपं प्रमाणत्रयमभ्युपेयते—इत्ययं प्रमाणत्रयाभ्युपगमो ह्यष्टमं तत्त्वम्।

"आम्नायैकवेद्यो हरिः" इति नवमं तत्त्वं "सर्वैश्च वेदैरहमेव वेद्यः" "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" इति गीतोपनिषद्भ्यां सावधारणवचनं घोषितमेव भासते इत्यलं पल्लवनेन।

येषां वैदिकमूर्धन्यानां स्मारकार्थमियमायोजना वर्तते स्वर्गीयाणां तेषां महानुभावानां चिरकालानुवृत्तः परिचयोऽस्य लेखकस्यावर्तत। तेषां सरलः स्वभावः सर्वदा स्मितपूर्वाभिभाषणं सदा कर्मठता एवमेवाधीतग्रन्थानां भूयसां कण्ठेऽकुण्ठभावेनावस्थानं विस्मयम् आवहति स्म। परमात्मानुगृहीतो जन्मजातः सुस्वरो वर्षीयसोऽपि तान् तरुणतरुणान् विदधाति स्म। तेषां त्रिष्वपि वेदेषु सम्यगधिकार आसीत्। दूरात् तेषां पारायणमाकर्ण्य कोऽपि तद्वयःपरिमाणं नावगच्छति स्म, विपरीतमेव वावैति स्म श्रोता। "भगवतो वेदपुरुषस्य कृपया चतुर्ष्वपि भारतभागेषु भ्रमणं मयाऽसकृदाचरितम्" इति ते मामवोचन्। सर्वाधिकं तेषु साधारणवैदिकजनहृदयनीरसता दीनता वा कदाऽपि स्थानं नासादयत्। इयद्भिरेव पदैः तेषां संस्मरणे सश्रद्धमञ्जलिम् अर्पयन् अनेन वाक्प्रचयेन भगवान् सर्वान्तर्यामी प्रसीदतु—इति शम्।

श्रीगणेशविमर्शनम्

बटुकनाथशास्त्री खिस्ते

सा० प्राध्यापकः वा० सं० वि० वि०

वाराणसी

परमानन्दसन्दोहपिचण्डिलवपुर्धरम् ।
बहिः स्तम्बेरमाकारं विश्वाधारमुपास्महे ॥

अवाङ्मनसगोचरं स्वप्रकाशं मुक्तोपसृप्यं विश्वातीतमपि विश्वाधारं परं ब्रह्म साक्षात् परम्परया कया वा वाचा समालोचयितुं को वा सचेताः प्रयतेत ?।

भगवान् गणेश्वरोऽपि परब्रह्मण एव विजृम्भणविशेष इत्यत्र न विवादः, 'त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्माऽसि' इत्याथर्वणी श्रुतिः। किञ्च समस्तमपि प्रपञ्चजातं भगवतो गणेशान्ना भिद्यते, प्रपञ्चोऽपि गणेशात्मा अथवा इन्द्रियगोचरतया विभावितमिदं सर्वं प्रत्यक्षा गणेशस्य तनुरित्यपि श्रुतेः स्वारस्यं 'त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि' इत्येवमादिभिर्वाक्यैः स्फुटमिदमवभासते।

नामाकृतिक्रियाहीना संविन्मात्रैकरूपिणी ।
अनुग्रहाय लोकानां रूपं नाम क्रियाऽपि ते ॥'
'उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याऽप्यभिधीयते'

इत्यादिशास्त्रमर्यादया लोकानुग्रहहेतुकमेव परब्रह्मणोऽवतरणं तद्देवतास्वरूपेण संपद्यते इत्येतत्सर्वसम्मतमेव ; तथाऽपि देवताविशेषे भवति कश्चन विशेषः प्रातिस्विकतया विचार्यमाणः प्राधान्यमुपस्थापयितुं क्षमः, स एवाऽनुसन्धेयः। तदिह भगवतो गणेश्वरस्य स्वरूपमुद्दिश्य किञ्चन विचार्यते—

भगवतो गणेश्वरस्य त्रीणि रूपाणि उपास्तियोग्यानि स्थूलं सूक्ष्मं परञ्चेति। तत्राऽऽद्यं करचरणाद्यवयवशीलं मन्त्रसिद्धिमतां चक्षुरिन्द्रियपाणीन्द्रिययोर्योग्यम्।

इत्याद्युक्तस्वरूपम् । 'हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रान्वितम्'। द्वितीयं मन्त्रात्मकं पुण्यवतां श्रवणेन्द्रियवागिन्द्रिययोर्योग्यम् । भेदादुपासनाविशेषो गुरुसम्प्रदायैकवेद्यः। तृतीयं वासनात्मकं पुण्यवतां मनसो योग्यं 'चैतन्यमात्मनो रूप' मित्यादिना आगमेषु व्याख्यातम्।

एतत्त्रितयातीतं वाङ्मनसातीतं मुक्तैरहंतयाऽनुभूयमानमखण्डं रूपम्।

भगवतो गणेशस्याऽपि तत्तन्मूलभूततत्तन्त्रागमसम्प्रदायभेदादुपासनाभेदः सङ्गच्छते। मन्त्र–ध्यान-जप-पूजन-सहस्रनाम-कवचादिष्वपि तथैव भेदः। न च तेषां प्रकाराणां परस्परं साङ्कर्यं सम्भवति। गुरुक्रमेणैव तदुपास्तेः कर्तव्यत्वात्। अधिकारिभेदाच्च तत्तदुपासनाभेदः। अधिकारज्ञानं गुर्वायत्तं भवतीति आगमशास्त्रे गुरोरेव प्रामाण्यम्। 'गुरुरुपायः' 'गुरुमूला क्रियाः सर्वाः' इत्यादिवचनात्। तत्तदाम्नायभेदेन मन्त्र-ध्यानभेदोऽपि शास्त्रेषु दृश्यते तत्राऽपि सम्प्रदायवशादुपपत्तिः, न त्वेकत्र लिखितं परत्र सन्निवेशनीयं शक्यं केनाऽपि। दिङ्मात्रं यथा भुवनेश्वरीश्रीविद्यालक्ष्मीप्रभृतिषु महा-गणपतिः, धूमावतीतारादिषु सिद्धिविनायकः, एवमाम्नायसम्प्रदायोऽपि शास्त्रमूलकः एव न तु स्वेच्छाकल्पित इत्यवसेयम्।

'शास्त्रदृष्टिर्गुरोर्वाक्यं तृतीयः स्वात्मनिश्चयः।
अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दो बोधो नहि क्षमः'॥
'त्रिप्रत्ययमिदं ज्ञानं गुरुतः शास्त्रतः स्वतः' इत्युक्तेः
त्रिप्रत्ययमिदं ज्ञानं गुरुतः शास्त्रतः स्वतः

इति स्मरणाच्च गणेशविषये प्रमापकानि शास्त्राणि तावत् हेरम्बोपनिषत् गणेशोपनिषदाद्याः श्रुतिभागाः 'गणानां त्वा' प्रभृतयस्त्रिष्वपि वेदेषु पठ्यमानाः मन्त्राः, ऐदम्पर्येण प्रवृत्तानि गाणपततंत्राणि, गणेशपुराणं पुराणान्तरेष्वपि गणेश-स्तुतिपरास्तत्तद्भागाः इत्यादिर्भूयान् विस्तरः।

यत्तु कैश्चिद् वैदिकाऽवैदिकत्वविचार उद्भाव्यते स तावदविचारितरमणीय एव गणेशोपास्तेः सर्ववैदिकपरिगृहीतत्वात्। न केवलं वेद एव किन्तु वेदागमयोरुभयोरपि समानाकारा गणेश्वरस्य प्रतिष्ठेति निर्विचिकित्सः सिद्धान्तः। भगवान् गणेश्वरः प्रणवमूर्तिरिति स्फुटमेव प्रतीयते।

'प्रणवश्छन्दसामिव' इति महाकविसूक्तानुसारम् अयमाद्यः सर्वदेवतानामित्यत्र न सन्देहः। श्रीमता भक्तिपरम्परापरमाचार्येण श्रीज्ञानेश्वरयोगिवरेण ज्ञानेश्वरी-प्रबन्धे प्रणवात्मतयैव स्तुतो गणपतिः। लिपिविन्याससाम्यादपि भगवतः तादृशी आकृतिः स्फुटमवभासते, वलयितशुण्डादण्डाकारतया दीर्घ ॐ कारसाम्यम्, अर्ध-चन्द्रस्य भालचन्द्रानुहरणञ्च स्पष्टमेव प्रतीयते।

गर्भीकृतसकलवाङ्मयं प्रणवात्मकम् अक्षरं भगवत्स्वरूपं भवतीति उपश्लोकयति कोऽपि कविः—

ओमिति स्फुरदुरस्यनाहतं गर्भगुम्फितसमस्तवाङ्मयम्।
दन्ध्वनीति हृदि यत्परं पदं तत्सदक्षरमुपास्महे महः॥

ओङ्कार—उभयोर्निकटतरः सम्बन्धः 'ओङ्काररसारूपत्वाद् उभेति परि-कीर्त्यते' इत्युक्तम्।

प्रणवस्य निर्गुणपरब्रह्मबीजवत् सगुणब्रह्मवाचकत्वमप्यनुमतं विविधतन्त्रागमेषु। तन्त्रभेदाद्देवताविशेषे प्रणवस्य बीजतया परिग्रहो दृश्यते। क्वचिदस्य शक्तिबीजरूपताऽप्यनुमता।

अथाऽन्ययाऽपि दृष्ट्या विमृश्यते—

अन्तरुल्लसिताऽनन्तशक्तितरङ्गभङ्गिभाजः सिमितमहाम्भोनिधिकल्वात् शिवतत्त्वात् बहिरुल्लसितुं प्रवृत्ते शक्तितत्त्वे यस्मदीयः प्रथमः स्पन्दः स एव गणेश्वरो नाम। यथा चिद्गगनचन्द्रिकायाम्—

क्षीरोदं पौर्णमासीशशधर इव यः प्रस्फुरन्निस्तरङ्गं—.........
....शक्तिजन्मा गणेशः॥

एवं शक्तितत्त्वप्रथमस्पन्दभूततया गणेश्वरस्य विशेषतो भक्तजनानुग्राहकत्वं विशुद्धबोधजनकत्वं देवतान्तरापेक्षया प्राधान्येन यत् प्रतिपाद्यते तदुचितमेव। यथोक्तम्—

द्वैताऽद्वैतमहामोहशर्वरीक्षपणक्षमः।
भास्वानिव जयत्येको गणेशः शक्तिसंयुतः॥

एतन्मूलकतया गणेशाम्बिकयोः पूजनं सर्वत्र सहभावेन व्यवस्थितं व्यवहारेऽपि मन्तव्यम्।

किं बहुना व्रतविचारेऽपि तृतीयाविद्धैव चतुर्थी गणेश्वरव्रताय प्रशस्येति 'मातृविद्धो गणेश्वरः' इत्यादिवचनैर्व्यवस्थापयन्ति प्रामाणिकाः। तदपि भगवतो गणेशस्य शक्तिरूपत्वं शक्त्यंशतां वा साधयति। मूलाधारचक्रे गणपतेः स्थितिरिति कुण्डलिनीरूपत्वं प्राणरूपत्वं वा स्वीक्रियते योगिभिरुपासकैश्च। यदभिप्रायेण देहस्थदेवताचक्रस्तोत्रे—

असुरसुरवृन्दवन्दितमभिमतवरवितरणे निरतम्।
दर्शनशताग्रपूज्यं प्राणतनुं गणपतिं वन्दे॥

इत्यभिनवगुप्तपादाचार्याः स्तुवन्ति। एवं शास्त्रीये वाङ्मये व्यवहारे योगे सपर्यायां दीक्षादौ च गणपतेर्माहात्म्यं निरतिशयमेव जागर्ति। इति।

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।

ले० पण्डितराजः सुब्रह्मण्यशास्त्री
हिन्दूविश्वविद्यालयान्तर्गतसंस्कृतमहाविद्यालयस्थः
प्रधानमीमांसकः पूर्वमीमांसामुख्याध्यापकः

शास्त्रिणः प्राशस्त्यम्

सुविदितमेतत्समेषां विदुषां यद् अस्मिन्वैरिञ्च्ये प्रपञ्चे भगवतः परमेशानस्य ज्ञानशक्त्यवताराः समयविशेषे भूदेवा आविर्भवन्ति, विद्युल्लतेव सुप्तेषु जनेषु काञ्चन जागृतिमुत्पाद्य तिरोभवन्ति च । तासु विभूतिषु श्रीमानयं वैदिकसार्वभौमः आहिताग्निः "रटाटे" इत्युपनामको रामचन्द्रशास्त्रिमहाभागः श्रीकृष्णशास्त्रिणः सकाशाज्जनिमलभत । वैदिकेन संस्कारेण संस्कृतः युक्ते वयसि पित्रोपनीतः क्रमेण आत्मीयं कुलक्रमागतम् ऋग्वेदं समग्रमध्यगीष्ट । ततः आथर्वणं वेदमधीते स्म । साकं वेदाङ्गेषु कृतपरिश्रमः परिष्कृतमतिर्वेदार्थमधिजगाम । श्रौतस्मार्तेषु कर्मसु कृतादरः कृतदारपरिग्रहः । श्रौताग्नीन् वैदिकेन विधिना परिजग्राह, क्रमेण अग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्ययागांश्च अन्वतिष्ठत् , तैश्च परमेश्वरं प्रीणयति स्म ।

स्मर्यते—"यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् ।
स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ।।" इति स्मार्तं वचनम् ।

तस्य कुले "श्रुतौ तस्करता स्थिता" इति न्यायेन आसीदिति नेयमतिशयोक्तिः ।

वेदपारायणेऽस्य कौशलम्

तस्य महाभागस्य समये विद्यमानेषु वैदिकेषु अयमग्रणीरासीत् । अनेकेषु राज्येषु महाभागोऽयमादरसम्मानाभ्यां पुरस्कृतो महतीं प्रतिष्ठां लेभे । श्रूयते दक्षिणभारते धार्मिकैः प्रवर्तितेषु अनेकेषु प्रसङ्गेषु चतुर्णां वेदानां पारायणविधिषु च सत्कारपूर्वकमामन्त्रितोऽयं महाभागः स्वकीयेन वाग्वैभवेन वैदुष्येन च तत्रत्यान् वैदिकाग्रेसरान् समतूतुषत् । अयञ्च महानुभावो न केवलं वैदिकः, अपितु कर्मठः । तत्रापि श्रौतकर्मसु अस्य महती श्रद्धा, तदनुष्ठानैकचित्तता, पुनः पुनः वैदिककर्मानुष्ठाने समुत्कण्ठा इत्यादयः अनन्यसुलभा अशेषविशेषगुणा अस्मिन् विलसन्ति स्म ।

अग्निहोत्रप्रकरणे श्रूयते—

"यथा खलु वै धेनुं तीर्थे तर्पयति एवमग्निहोत्री यजमानं तर्पयति प्रसुवर्गं लोकं जानाति पश्यति पुत्रं पश्यति पौत्रं प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते यस्यैवं विदुषो अग्निहोत्रं जुह्वति य उ चैनदेवं वेद ।" मन्त्रार्थस्तु अतिरोहितः । तै. ब्रा २ प्र. ८ अ. ३ पं.

एवं दर्शपूर्णमासप्रकरणेऽपि श्रूयते—"प्रजापतिर्यज्ञानसृजत । अग्निहोत्रं चाग्निष्टोमं च पौर्णमासीं चोक्थं च अमावास्यां चातिरात्रञ्च अयं तानुदमिमीत यावदग्निहोत्रमासीत् तावानग्निष्टोमो यावती पौर्णमासी तावांनुक्थ्यः तत्वं नयावत्यमावास्या तावदतिरात्रं य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति यावदग्निष्टोमेन उपाप्नोति तावदुपाप्नोति य एवं विद्वानमावास्यां यजते यावदतिरात्रेण उपाप्नोति तावदुपाप्नोति" इति ।

अनेन श्रुतिवचनसन्दर्भेण अग्निष्टोमादिफलं दर्शपूर्णमासयोर्भवति इति सुस्पष्टमवगम्यते । एतच्च सर्वमनेन वैदिक-कुलतिलकेन शास्त्रिमहाभागेन अनुभूतम्, अनुष्ठितम्, तत्फलञ्च प्राप्तम् ।

एवं चातुर्मास्यप्रकरणे—

"वैश्वदेवेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत "देवासुरा संयत्ता आसन्" इत्यादिना वरुणप्रघासस्य द्वितीयस्य पर्वणः उत्पत्तिरितिहासौ अनेन महानुभावेन सम्यगवगत्तौ । एवं साकमेधसुनासीरीयस्य च उत्पत्तिमितिहासं सम्यग् अज्ञासीत् । चातुर्मासस्य यागानामक्षयं फलं स्मरन्ति महर्षयः "अक्षय्यं वै चातुर्मास्यं याजिनः सुकृतं भवति" इति च श्रौत-सूत्रकाराणां'''न प्रकारेण श्रौतानां कर्मणामनुष्ठानं तेन विहितम् ।

यागे च आश्रावणादीनां सप्तदशानामक्षराणामनुगतिरपि वेदे श्रूयते—आश्रावयेति चतुरक्षरम्, अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम्, यजेति द्व्यक्षरम्, ये यजामहेति पञ्चाक्षरम्, द्व्यक्षरो वषट्कारः, एष वै सप्तदशः प्रजापतिर्यज्ञमन्वायत्तः" इति श्रुतिराम्नायते । विष्णुश्च स्मरति—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स नो विष्णुः प्रसीदतु ।।

भीष्मस्तवराजेऽपि पद्यं किञ्चिदन्यथा पठ्यते–'तस्मै यज्ञात्मने नमः" इति ।

ऋणत्रयापकरणम्

अतः वेदाध्ययनं वेदार्थपरिशीलनं वेदार्थानुष्ठानमेतत्सर्वं ब्राह्मणस्य महते श्रयसे कल्पते । यथा जायमानो वै ब्राह्मणो त्रिभिर्ऋणवा जायते तै. सं. ६. ४. ३ । ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी वा आर्थ्यायंप्रेवितददेवदानैरेवावदवदयते तदवदानानामवदानत्वमिति अवदानविधिवाक्यशेषः ।

इदञ्च ऋणत्रयमनेन विद्वद्धौरेयेण क्रमेण यथापर्यहारि । यज्ञैः देवाः वेदाध्ययनेन ऋषयः प्रोणिताः संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितर इति । अहो भाग्यं वैदिककुलावतंसस्यास्य ।

अथर्ववेदस्य मन्त्राणां प्रचारणम्

न केवलं वेदाध्ययनञ्च तस्य प्रशंसनीयमपि तु अथर्ववेदस्य वैशिष्ट्यमथर्ववेदस्य वेदगतचतुस्संख्यापूरकत्वमिह लोके तस्योपयोगः इत्यादयो बहवो विषया लेखनद्वारा लोककल्याणाय प्रकाशिता अनेन महाभागेन। अथर्ववेदस्य वैशिष्ट्यं यन्महाभाष्यकारः पतञ्जलिः 'अथ शब्दानु शासनमि'त्यस्य व्याख्यावसरे वैदिकशब्दोदाहरण प्रसङ्गे सत्यपि ऋग्वेदस्य प्राथम्ये ऋग्वेदस्य प्रथममन्त्रमनुदाहृत्य पिप्पलादशाखाया आदिमं मन्त्रमुदाजहार—

शन्नोदेवीरभिष्टय इत्यादि।

अथ विद्वांसो विवदन्ते—किमयं भाष्यकारः अथर्ववेदीय इति आत्मीयस्य वेदस्यादिमं मन्त्रमुदाहरति। वयन्तु मन्यामहे नायमथर्ववेदी अपितु मङ्गलवाचकस्य शमिति शब्दस्य प्रयोगात् शन्नोदेवीरिति मन्त्रमुदाजहार।

जयन्तभट्टादीनां मतनिर्देशः।

मीमांसाग्रणीर्जयन्तभट्टो न्यायमञ्जर्यामथर्ववेदस्य वेदेषु प्राथम्यं पक्षप्रतिपक्षाभ्यां विचार्य सम्प्रधारयामास विस्तरस्तु तत्र एव द्रष्टव्यः। वेदभाष्यकारो माधवादयोऽपि अथर्ववेदव्याख्यारम्भे त्रयाणां वेदानामामुष्मिकफलप्रदत्वमथर्ववेदस्य ऐहिकामुष्मिकफलप्रदत्वञ्च बभाषे। वेदं व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदमैहिकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याकरिष्यति इति। तत्र भाष्यभूमिकायामथर्ववेदीयान् नक्षत्रादीन्पञ्च कल्पान् निर्दिश्य शान्तिक-पौष्टिक-मोहन-मारण-उच्चाटनआभिचारिककर्मपरत्वं वर्णयाम्बभूव। तत एवायं महानुभावः कांश्चन प्रकारान् स्वकीये लेखे संक्षिप्य वर्णयति स्म। यथा-अञ्जनम् कुष्ठौषधिः इषुष्कासनम्, गण्डमालाचिकित्सा ज्वरनाशनम्, यक्ष्मनाशनम्, हृद्रोगनाशनमित्यादिबहून् विषयान् मन्त्रोद्धारपूर्वकं लोकहिताय प्रदर्शयामास।

अथर्ववेदविदो वैशिष्ट्यम्

अथर्ववेदस्य विशिष्टोयमध्यापकः तैर्मन्त्रैः बह्वीः सिद्धीः अन्वभूत् अनुभावयति स्म चान्यान्। यतो हि स्मर्यते—

न तिथिर्नच नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्रसम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥ इति।

एवमेव स्कान्दे पुराणे, कमलालयखण्डे, आथर्वणमन्त्राणां जपमात्रेण अभिमतफलसाधनत्वमभिधीयते। यथा—

यस्तत्राथर्वणान्मन्त्रान् जपेच्छ्रद्धासमन्वितः।
तेषामथेद्विभवं कृत्स्नं फलं प्राप्नोति स ध्रुवम्॥

एवमेव नीतिशास्त्रेऽपि—

त्रय्यां च दण्डनीत्याञ्च कुशलः स्यात्पुरोहितः ।
अथर्वविहितं कर्म कुर्याच्छान्तिकपौष्टिकम् ॥

मत्स्यपुराणेऽपि—"पुरोहितं तथाथर्वमन्त्रब्राह्मणपारगमिति" ।

मार्कण्डेयपुराणेऽपि—

"अभिषिक्तोऽथर्वमन्त्रैः महीं भुङ्क्ते स सागराम्, इति । अत एव अथर्वपरिशिष्टे आथर्वणवेदकोविदं विशेषेण राजा दानमानादिना सत्कुर्यादिति श्रूयते ।

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः ।
निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥
तस्माद्राजा विशेषेण अथर्वाणं जितेन्द्रियम् ।
दानसम्मानसत्कारैर्नित्यं समभिपूजयेत् ॥

(अ० परिशिष्ट ४।६)

एतेषां सर्वेषां वचनानां लक्ष्यभूतोऽयं वैदिकसार्वभौमः इत्युक्तिः नात्युक्तिकोटिमाटीकते ।

प्रसङ्गादाश्रमचतुष्टयस्य वर्णनमतिथिसत्कारमहिमेत्यादयो बहवो विषया लोककल्याणाय अनेन सङ्गृहीताः ।

उपसंहारः

एवं स्वकीयं जीवनं धर्ममयं शान्तिमयं लोकोपकारमयञ्च विधाय ऐहिकं जीवनमयूयुजत् । अनेन आदर्शभूतेन ब्राह्मणसमाजस्य कृते अनितरसाधारणी बहुप्रकारा सेवा कृता इति अस्य महानुभावस्य कृते वैदिकं कुलं कृत्स्नमधमर्णमिति ।

आभिगीर्भिर्यदतो न ऊनमाप्यायय हरिवो वर्धमानः । यदास्तोतृभ्यो महि गोत्रा रुजासी भूयिष्ठभाजो अथ ते स्याम । ब्रह्मप्रावादिष्म तन्नो माहासीदिति ।

शान्तिः शान्तिः ।

श्रीविश्वेश्वरो विजयते

श्रीरामनाथ मिश्रः

एतदस्त्यस्माकं महत्सौभाग्यं यद्वैदिकाग्रेसराणां–श्रौतस्मार्तक्रियाकलाप-निष्णातानां स्वधर्मनिष्ठापरायणानाम्–अथर्ववेदसमुद्धारकाणां—चतुर्वेदविदां–रटाटे इत्युपाख्य–पं० रामचन्द्रशास्त्रिमहोदयानां–जीवने स्वानुभवप्रकाशनावसरो लब्ध इति। इतः किञ्चिन्न्यूनपंचाशद्वर्षेभ्यः पूर्वमेकस्मिन् महारुद्रयज्ञे एषाम्महानुभावानां दर्शनं कृतमस्माभिः। एते गौरवर्णाः, सुदृढशरीराः, बृहन्नेत्राः स्वभावसरलाश्चासन्। (यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति) इत्युक्त्या दर्शनेनैव–एषाम्महत्वं सूचितमभवत्।

एते यथासमयमुपनीताः सन्तः सुप्रसिद्धऋग्वेदवैदिकसकाशात् स्वशाखीयम् ऋग्वेदं समधीत्यान्येभ्यस्तत्तच्छाखीयवैदिकप्रवरेभ्यः चतुरो वेदानधीतवन्तः ॥

अतः परं–वेदाङ्गं–शास्त्रं–काव्यकोशादींश्चाधीत्य परमवैदुष्यमवापुः ॥

अथ च गार्हस्थ्यमपि–अग्न्यधियाग्निहोत्रदर्शपौर्णमास–चातुर्मास्य–कर्मानुष्ठानेन धर्मदृष्ट्या ऋषिवत् सम्पादितम्।

अथर्ववेदस्य पठन-पाठनप्रणालीं शिथिलप्रायां विलोक्य एषां मनसि दुःखं समजनि। ततः परं बहवश्छात्रा अथर्ववेदनिष्णाताः कृताः। ते च इदानीम् अथर्ववेदिमुख्यत्वेन विराजन्ते-वैदिकसम्मेलने यज्ञे च सम्मानं प्राप्नुवन्ति। एते महानुभावा मन्ये अथर्ववेदप्रचारायैव समवतीर्णाः पुराणकथाश्रावणे कञ्चिद् विषयमवलम्ब्य प्रवचने च एषां पाटवमासीत् ॥

एते व्यायामिनो–गानकुशलाश्चाप्यासन्। गानकौशलेन–प्रमुदितस्वभावेन च पार्श्ववर्तिनां जनानां मनोरञ्जयन्तिस्म—येष्वेतान् गुणगणान् विलोक्य पुरातनाऽधुनिकाश्च वैदिकविद्वांसः यज्ञे एतान् सादरं निमन्त्रयन्ति स्म। यस्मिन् यज्ञे एते वृताः स यज्ञः शोभमानः प्रतीयते स्म। एतैरेव गुणैरेते स्व० म० म० पं० नित्यानन्दपर्वतीयमहोदयानां कृपाभाजनतां गताः ॥

स्वपाण्डित्येन राजकीयसम्मानवृत्तिरपि लब्धा–याद्यावधि केनापि वैदिकेन न लब्धा।

यं प्रशंसन्ति राजानो यं प्रशंसन्ति पण्डिताः।
साधवो यं प्रशंसन्ति तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥

इत्युक्तेः सार्थकता कृता एभिः एतेषाम्पुण्यप्रभावेण पुत्रा अपि वेदादिविषये निपुणाः सन्ति।

एतेषामगणनीया गुणगणाः कियद्भिरक्षरैः प्रकाशयितुं दुःशका इत्येतावल्लिखित्वा विरमामि–पुनः भगवन्तं विश्वेश्वरं प्रार्थये एतादृशा महापुरुषा अग्रेऽपि भारतभुवमलङ्कुर्युरिति शम् ॥

वैदिकचक्रवर्तिश्रीरामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहाभागानां

पुण्यं संस्मरणम्

डॉ० आदित्यनाथ झाः, उपराज्यपालः, दिल्ली ।

मिथोविरोधि-वीरश्रृङ्गाररसपीयूषगङ्गाया हिमगिरौ महाराष्ट्रकोङ्कणप्रदेशे अङ्काङ्कपिंशशाङ्कमिते शके महापौराणिककुले श्रीकृष्णतनयत्वेन गृहीतावतारा अमी महात्मानः प्रतिभातिरेकेण मौञ्जीबन्धादपि प्राक् न केवलं शिक्षाज्यौतिष-व्याकरण-च्छन्दांसि कण्ठेऽधारयन्; अपि तु—

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" इति श्रुतिमनुसृत्य रघुवंशमहाकाव्यादिनापि रसज्ञामलञ्चक्रुः । "ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यो विप्रस्य पञ्चमे" इत्यार्षवचनमभिलक्ष्यैव प्रायः पञ्चमाब्द एव प्राप्तोपनयनसंस्कारा अमी पण्डितमूर्द्धन्यानां श्रीनित्यानन्दपन्त-पर्वतीयमहाशयानां निर्देशने चतुरो वेदान् समधीत्य, विलक्षणं वैचक्षण्यमवापुः ।

यद्यपि सर्ववेदेषु निरुपमं पाण्डित्यमेषामासीत् तथापि वैदुष्यातिशयोऽथर्वणामेषु मुहुर्मुहुः परिलक्ष्यते स्म ।

प्रातःस्मरणीयाः श्रीमन्तस्तत्रभवन्तो गणेशभट्टमार्तण्डा अमीषामथर्वणां गुरवः आसन् ।

कृष्णगवीपयःपानव्रतमेषां लोकोत्तरप्रतिभाया निदानमासीदिति जनश्रुतिरपि नूनं किमपि वैशिष्ट्यमेषु निधत्ते ।

स्वाधीतवेदस्य प्रवचनमेभिः सर्वतः प्राक् श्रीमतामयोध्याधीशानां सौधे प्रारब्धम् । चतस्रः पञ्च वा समास्तत्र वेदाध्यापनं विधाय, साङ्गवेदमूर्तयोऽमी त्यक्त-महामहोपाध्यायपदवीकैः सुगृहीतनामधेयैः ब्रह्मविद्यानिष्णातैः कलिकल्मषपयःपारावारे निमज्जतां जनानां सनातनधर्मनौकायाः कुशलकर्णधारैः पण्डितश्रीलक्ष्मणशास्त्रि-द्राविडमहाभागैः संस्थापिते साङ्गवेदविद्यालये सार्द्धाब्दमथर्वाध्यापनमन्वतिष्ठन् ।

अथ मम पितुर्मातृकुलसमुद्भूतैः संस्कृतविद्या-समुपार्जित-मिथिला-राज्य-महा-महोपाध्यायमहेशठक्कुरवंशहंसैः, मनीषिमुकुटमणिभिः, विविधविरुदावलीविराजमान-मानोन्नत-दरभङ्गामहाराजाधिराजैः, रमेश्वरसिंहशर्ममहाशयैः सादरभरं काशीविराजितायां स्वस्थापितायां दरभङ्गापाठशालायामध्यापकत्वेन नियुक्ता अमी वैदिकचक्रवर्तिनः सानन्दं द्वात्रिंशद्वर्षपर्यन्तमथर्ववेदं सप्तसमापर्यन्तमृग्वेदञ्चाध्यापयामासुः ।

परः शतानन्तेवासिनो वेदनिष्णातानवधार्य वार्धक्येऽपि वाराणसीस्थे स्वकीये

भवनेऽहर्निशं वैदिकवाङ्मयं समर्चयन्तोऽमी न केवलं वैदिकानाम् अपितु समेषामेव सुरभारतीसपर्यानिरतानां सम्मानभाजनान्यासन् ।

अथ देवभावं गतानां पितृपादानां विश्वविख्यातमहामहोपाध्याय–डॉ० सर्-गङ्गानाथझाशर्म्ममहानुभावानां सुरगवीवरिवस्यातपः-प्रसूतैः पुण्यातिरेकैर्लब्धं वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयप्रथमोपकुलपतिपदमधितिष्ठता मया सर्वप्रथममेनानेव वेदस्य सम्मानितप्राध्यापकपदे प्रतिष्ठाप्य विश्वविद्यालयस्याऽत्मनश्च महद्गौरवमन्वभावि ।

विश्ववन्द्याः शताधिके वयसि राष्ट्रपतिसम्मानिता देवत्वङ्गता महावैदिकाः श्रीपाददामोदरसातवलेकरमहाशया अपि अथर्वणां पाठसंधानाऽऽत्मके महायज्ञे वैदिकचक्रवर्तिनाममीषां ससम्मानं साहाय्यं गृहीतवन्तः ।

नेपालराष्ट्रप्रधानमन्त्रिश्रीचन्द्रशमशेरमहाभागस्य कोट्याहुतियज्ञे स्वकीयम् अथर्वणां कृत्यमाचरद्भिरेभिः यः सपताकः कीर्तिस्तम्भः स्थापितः सोऽधुनाऽपि दोधूयते ।

अमीषां महर्षिकल्पानां जीवनक्रमः कल्याणकामिनामनुकरणीय आसीत् । धर्मपत्न्या पुत्रपौत्रादिभिश्चान्विता अमी स्वगृहेऽशीति सहस्रान् ब्राह्मणान् भोजयित्वा यं यशश्चन्द्रं समुपार्जयन् सोऽधुना दिग्दिगन्तं धवलयति ।

तपसि, वेदप्रवचने, कर्मकाण्डोद्धारे, दानव्रते, वैदिकधर्मप्रचारे, चालक्षितोपमानानामेषां गुणगणगणना नभसो नक्षत्राणां वसुन्धराया वा रजःकणानां गणनामनुकुर्यादिति मन्ये ।

अतस्तपस्तामरसदिवाकराणां विद्यापारावारनिशाकराणां जनकल्याणकल्पद्रुमाणां सौजन्यनिर्झरप्रवाहिमहामानवगिरीणां विनयरत्नरत्नाकरायमाणानां श्रीरामचन्द्रशास्त्रीरटाटेमहाभागानां महनीयस्य चरितस्य लवमपि चित्रयन्ती मम वाणी नूनं परिपूतेति विभाव्य तदीयदिव्यस्वरूपस्मृतिमात्रेण झटिति रोमाञ्चलीलामनुभूय, "रटाटेस्मृतिग्रन्थप्रकाशनावसरे तच्चरणपङ्कजेऽप्यात्मनः श्रद्धाकुसुमाञ्जलिमर्पयन्नहममन्दानन्दमनुविन्दे ।

---

*संस्मरणेषु सर्वप्राथम्यभागप्ययं लेखो विलम्बेनोपस्थित इत्यत्र निवेशितः ।

वे० सु० रामचन्द्रशास्त्री

प्रीन्सिपाल, सं. म. वि. का. हि. धि. वि.

यावतीव देवतास्तास्सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति तस्माद्‌ब्राह्मणेभ्यो वेदविद्‌भ्यो दिवेदिवे नमस्कुर्यात्। यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषं तं दुर्ब्राह्मणमाहुः। ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। जन्मान्तरभागधेयवशात् लब्ध्वापि द्विजकुले जनुरवगत्यापि स्वाध्यायस्यावश्याध्येयतां कश्चिदेव वेदमधीते। साङ्गाध्येता तु विरलविरलः। श्रद्धया महता परिश्रमेण च कृतेपि वेदाध्ययने तदर्थस्यावगन्तारोऽनुष्ठातारश्च सुदुर्लभाः। वेदानामध्येतुस्तदर्थानामनुष्ठातुश्च जीवनमात्रपर्याप्तोऽप्यर्थागमः, प्रतिग्रहादिनापि न संपद्यते। जनतायां गौरवितं स्थानं स्वप्नायितम्। अवमाननानुपदं सन्निहिता। वेदानां वैदिकानां च विषये सुबहोः कालात्प्रवृत्तेयं दुर्दशाऽनुकलंवर्धमाना दरीदृश्यते। न चिरेण वेदानामध्येतारोंगुलिगणनीया भवेयुः। यदि श्रुतिमात्रेणावशिष्येत वेदाध्ययनं तदपि नाश्चर्यमावक्ष्यति। कलिहतकस्यायं प्रभावः। कतिवेदशाखा न निर्मूलिताः? कतिधार्मिका नावमानिताः? कति पुण्यस्थानानि न दूषितानि? किं बहुना? हंहो पापकलेर्विभवात्किं किं न संभाव्यते?

समुज्जृंभमाणेऽपि कलिकृतान्तस्य निरंकुशे प्रभावे परिणतपूर्वपुण्यपुंजबलेन कलिमाहात्म्यतिरस्कारपटीयांसः कतिचन कदाचित् कुत्रचिद्विजवरकुलेऽवतरन्ति कल्किरिव युगान्ते तेष्वेकतमः वैदिकप्रवरः श्रीरामचन्द्रशास्त्री महोदयः रटाटेवंशभूषणं सदशग्रन्थां दाशतयीं समग्राम्, पाणिनीयं तन्त्रं चाध्यगीष्ट। स्वयं यष्टा बह्वन्यज्ञान्यथाविध्ययाजयत्। स्वयमधीती सुबहूनध्यापिपत्। श्रौतेष्विवस्मार्तेष्वपि कर्मस्वस्य निरतिशयमसाधारणं च दाक्ष्यम्। दिशासु विसृत्वरीकीर्तिरस्य। वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य सम्मानितप्राध्यापकपदमलमकार्षीत्। प्रातस्स्मरणीयं चरितं नाम चास्य महानुभावस्य।

वैदिकमूर्धन्यस्यास्य यादृशी श्रद्धा वेदतदर्थानुष्ठानेषु तादृशीमेवास्मकमप्यनुगृह्णातु भगवानन्नपूर्णासनाथो विश्वनाथ इति प्रार्थये।
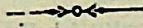
पं० श्री पट्टाभिराम शास्त्री

साहित्यविभागाध्यक्षः वा० सं० वि० वि०

चिरन्तनेषु कालेषु पवित्रतमे भारतवर्षे देशगौरवसंरक्षणाय भारतमातुः प्राणभूतान् वेदान् पठन्तः पाठयन्तश्चाभवन् विद्वांसश्चिरन्तनाः। प्रभोर्गुरोर्वा निदेशपरि-

पालनं सेवकानामन्तेवासिनां वा नियतं कर्तव्यमासीत्तेषाम्। वेदश्चास्माकं प्रभुर्गुरुश्च। तद्वाक्यं कथमिव नानुसरणीयं भवेत्? प्रभुसेवकयोर्गुरुशिष्ययोश्च सम्बन्धोऽविछिन्नः पुरा प्रवर्तते स्म। स्वयं प्रभुरपि सेवकानां हितं चिन्तयति स्म, गुरुरपि शिष्ये वात्सल्यमाबिभर्ति स्म। सेवकाः शिष्याश्च प्रभौ गुरौ च श्रद्धाभक्तिसमन्विता यथायथं तत्तन्निदेशं परिपालयन्तः ससुखं जीवनं यापयन्ति स्म। सति प्रसङ्गे सेवकाः शिष्याश्च सन्तोऽपि प्रभूणां गुरूणाञ्च संरक्षणेऽयतन्त। एवं निबिडः कश्चन सम्बन्धस्तेषामभवत्। प्रभूणां गुरूणाञ्च रक्षणं किमन्यत्स्यादृते तत्तद्वाक्यपरिपालनात्। प्रभोर्गुरोश्च निदेशः 'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्' 'तद्धितपस्तद्धितपः' इत्येव खल्वासीत्। तमिममादेशं यथायथं परिपालयन्तश्चिरन्तना अभवन्। अत एव भारतस्य गौरवं संरक्षितमभवत्।

कस्यापि देशस्य गौरवं चेन्मीयते तर्हि समानदण्डो वैदुष्यरूप एव भवितुमर्हति वैदुष्यमपि चेतनविज्ञानप्रवर्तकमेव साधु परिगण्यते नाचेतनविज्ञानप्रवर्तकम्। तदेव खलु विज्ञानं वरिष्ठं स्पृहणीयञ्च यद्धि निरतिशयं सिद्धं भवति। सातिशयेषु विज्ञानेषु काव्यवस्था स्यात्? अद्य किञ्चिदाविष्कृतं श्वश्चान्यत्, अद्याल्पीयसः कस्यचन फलस्य समुत्पादकं साधनं चेद्गृहीतं तर्हि श्वः ततोऽपि प्राज्यस्य फलस्यानुभावीयसाधनान्तरजिघृक्षा समुत्पद्यत इति सांसारिकस्सहजः पन्थाः। एवं पथि गच्छतां कदोपरमस्स्यात्? अनेन लोकानां नियता स्थितिर्न खलु सम्भाव्यते। अतो हेतोस्तादृशं वैदुष्यमवाप्तव्यं यद्धि निरतिशयवस्तु प्रमापकं सिद्धं भवेत्। तदिदं 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' 'तद्विजिज्ञासस्व' इत्युपदिशन् वेदो भारतस्य गौरवावहं वैदुष्यसाधनमवद्योतयति। एवमवाप्तेन वैदुष्येण प्राप्यं वस्तु निरतिशयं सिध्यति। तदिदं चेतनविज्ञानं परिगण्यते।

अस्यावाप्तिर्न सुलभा। यथानियमं यथाधिकारञ्च साङ्गानां वेदानामध्ययनं प्रथममावश्यकम्। तदुदितकर्मणां यथावदनुष्ठानम्, तत्प्रोक्तनियमानां परिपालनञ्चानिवार्यम्। इदमेव तपः अयमेव धर्मः, इयमेव च संस्कृतिः प्राक्तनानां भारतीयानामासीत्। तेषु पण्डितप्रकाण्डास्सदाचारपरिपालकाः सत्संस्कृतिप्रचारकाः नियतवेदाध्ययनशीलाश्चासन् श्रीरामचन्द्ररटाटेमहाभागाः सत्यमिमे भारतमातुस्सुपुत्राः। शतशश्छात्रानध्याप्य भारतमातरं समतूतुषन्। एतादृशैरेव विद्वद्भिः भारतस्य गौरवं समेधितमिति कथनं नात्युक्तिमावहेदिति सम्भावयामि।

पवित्रस्मृतिः

श्रीगोपालशास्त्री (दर्शनकेशरी)
प्रधानाचार्य श्री ब० वे० वे० महाविद्यालय
ज्योतिर्मठ, चमोली (उत्तराखण्ड)

अद्यास्मिन् ज्योतिर्मठे सुदूरप्रदेशे श्रीबदरीनाथदेवधाम्नि पर्णखण्डप्रदेशे पाणिनिपद्धतिप्रचारनिमित्तेन श्रीबदरीनाथवेदवेदाङ्गमहाविद्यालये प्रधानाचार्यपदमधितिष्ठतो मे कार्य्यान्तरमनुष्ठातुं नास्तिसुलभोऽवसरस्तथापि स्वर्गीयपूज्यपादस्वनामधन्य रामचन्द्रशास्त्रिरटाटेमहोदयानां संस्मरणसम्बन्धे तदीय वे० मू० रटाटे स्मृतिग्रन्थे श्रद्धाञ्जलि-समर्पणनिमित्तेन स्वकीयरसनाशुद्धिस्तु कर्त्तव्यैवेति प्रवृत्तोऽस्मि मनाक् सारस्वतधामोपासनां विधातुम्। पूर्वन्तु मत्स्मृतौ नैषधकाव्यस्य श्रीहर्षकविप्रणीतं तत्पद्यमुपसंतिष्ठते—

"वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्। खलत्वमल्पीयसि जल्पिते तु तदस्तुवन्दिभ्रमभूमितैव" इति श्रीहर्षस्तु नलस्य राज्ञश्चरित्रचित्रणे स्वात्मना वन्दिभ्रमभूमितामङ्गीचकार। परन्तु अहन्तु समयसङ्कोचात्—'खलत्वमल्पीयसि जल्पिते तु इति तृतीयपाददोषमेवात्मोपरि कथमासञ्जयामीति विचारणया स्वर्गीयरटाटेमहोदयानां मुखाच्छ्रुतायाः पाणिनिपद्धतेः प्रशंसाया एव सम्बन्धे किञ्चिदभिधास्यामि।

एकदाऽहं स्वर्गीयब्रह्मदत्तजिज्ञासुमहोदयेन सह रटाटेमहोदयस्य दर्शनं कर्तुं गतवानासम्। तदानीं प्रसङ्गसङ्गत्या तैः पाणिनिपद्धतिविषये प्रशंसात्मकं निजं पवित्रवाक्यमुदीरितमासीत् तदेव पल्लवयन्नहं संस्कृतशिक्षणे कथं पाणिनिपद्धतिः प्रयोक्तव्येति तन्मार्गमुपदिशामि—

पूर्वं माहेश्वरसूत्राणि चत्वारि दश च (चतुर्दश) सुघोष्याणि। घोषणप्रकारोऽपि सम्प्रति विगुणितोऽस्ति। पूर्वन्तु, अइउ। ऋलृ। एओ। ऐऔ। हयवर। ल। ञमङणन। झभ। घढध। जबगडद। खफछठथचटत। कप। शषस। ह। इत्येवं संघुष्य पश्चात् १ अइउण् २ ऋलृक् ३ एओङ् ४ ऐऔच्। इति चत्वारि अच्सूत्राणि। ततः हल्सूत्राणि १० दश घोष्याणि। तानि यथा—५ हयवरट् ६ लण् ७ ञमङणनम् ८ झभञ् ९ घढधष् १० जबगडदश् ११ खफछठथचटतव् ११ कपय् १३ शषसर् १४ हल्। इति माहेश्वरसूत्राणि अणादि संज्ञार्थानि। एषाम् अन्त्यानि अक्षराणि हलन्त्यम् १।३।३ इति सूत्रेण इत्संज्ञकानि भवन्ति। ततः—आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१ इति सूत्रेण अणादयः प्रत्याहारानिर्मातव्याः। तेषामेव अणादीनां स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभिस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यां-

भ्यसूङसोसांङ्योः सुप् ४।१।२ इति सूत्रस्थपरिष्कृतविभक्तिभिः सह मेलयित्वा चतुर्विंशतिससम्बोधनविभक्त्यन्तपदानि प्रत्येकप्रत्याहारे निर्मेयाणि।

ततोऽजन्तशब्दानां रूपाणि अपि सूत्रबलेनैव सन्धिपूर्वकं चतुर्विंशतिपरिष्कृतविभक्तिसंयोगेन निर्मातव्यानि। रूपनिर्माणे सन्धिकार्यं स्थानयत्नज्ञानबलादेव कार्यं न तु सूत्रज्ञानेन तदानीं सूत्रज्ञानं कथं स्यात्। इत्थं हि लिङ्गत्रये (स्त्रीलिङ्गे, पुंलिङ्गे, नपुंसकलिङ्गे) अपि इगन्तशब्दानां रूपाणि सामान्यतः सन्धिकार्येण निर्माय अभ्यसनीयानि केवलं घोषणं न वरम्। आम् आवश्यकतया प्रत्ययरूपाणि परिष्कृतानि (यथा सू ई आः आबन्तस्त्रीलिङ्गशब्दानां कृते। अम् ई आनि, अदन्तक्लीबार्थम् इति) इत्येवं बुध्वा बुध्वा इगन्ताः शब्दाः त्रिलिङ्गेऽपि अभ्यस्याः। इति दिङ्मात्रमिह दर्शितं विशेषतो गीताव्याकरणे मदीये द्रष्टव्यम्।

इह तु स्वर्गीयरटाटे महोदयानां संस्मरणनिमित्तेन तदीयपाणिनिपद्धतिप्रशंसा वाक्यवर्णनप्रसङ्गतःतस्याः पद्धतेः संक्षिप्तपरिचयं गद्यरूपतः पुरो दर्शयित्वा तज्जिज्ञासूनां कृते पद्यैः संक्षिपामि
तथाहि—

माहेश्वरं सूत्रमुपाददानाः प्रत्याहृतिज्ञानमुपाददीरन्।
परिष्कृतैः स्वादिविभक्तिसंघैः सञ्ज्ञादणादीन् पदतां विदध्युः ॥ १ ॥
तादृग्घलन्तानपि रूपयेयुः स्थानेन यत्नेन च सन्धिकार्यम्।
पदान्यगन्तस्य विदध्युरित्थं लिङ्गत्रये साधनप्रक्रियातः ॥ २ ॥
सामान्यतश्चापि पदं तिङन्तं लकारभेदेन विभावयेयुः।
सनादियोगादपि कर्तृकर्म भावे तिङन्तानि पदानि कुर्युः ॥ ३ ॥
कृत्प्रत्ययेनापि कृदन्तशब्दान् विदुर्विवेकाङ्गुणकिन्ङिदादेः।
स्त्रीतद्धितप्रत्ययतस्तदन्तान्शब्दान् पदादेशमथो विदध्युः ॥ ४ ॥
आवश्यकं सूत्रत्रयं प्रयत्नाद्बुध्युर्मुनेरष्टकप्रक्रमेण।
सूत्रानुवृत्तिक्रमतोऽर्थबोधं समाससन्ध्यन्वयतो विदध्युः ॥ ५ ॥
गीता पदोदाहरणानि सर्वाण्यस्मिन् सुधासेकमुपानयन्ति।
गीता प्रिया विश्वजना अधीत्य षण्मासतः शाब्दिकपुङ्गवाः स्युः ॥ ६ ॥

इत्येवं पाणिनिपद्धतेर्वैशिष्ट्यं विद्यते। यस्याः प्रशंसा स्वर्गीयरटाटेमहोदयानां मुखान्मया श्रुता ह्यासीदद्य तेषामेव संस्मरणे तच्चरणारविन्दयोःपद्यपुष्पैः षड्भिरुपरिस्थैः श्रद्धाञ्जलिसमर्पयता सर्वान्तेऽधस्तनं पद्यं विलिख्य विरम्यते विस्तरात्

पवित्रमत्रातनुत स्वजन्मना महेशपुर्यां श्रुतिपारगो हि यः।
कथंसनो पाणिनिपद्धतिं शुभां निजप्रियामद्य पवित्रयिष्यति ॥

महापुरुषप्रभावः

पं० श्रीरामानुज ओझाः व्याकरणसाहित्यवेदान्ताचार्याः प्रधानाध्यापकाः

बिरला संस्कृतमहाविद्यालयः, वाराणसी ।

इह हि जगति संसारस्याधिकभागे विषयासक्तमनुष्याणां संख्या महती । तथापि भगवत्प्राप्तिप्रयत्नशीलानामपि कुत्रचिद्देशेऽवाप्यत एव । यद्यपि महापुरुषः कश्चिदेव विरलो दुर्लभो वा भवति, योऽप्यस्ति तस्मादपि जनाः स्वकल्याणन्न लभन्ते । यदि मनसि विचार्यते तदा लाभाभावस्य द्वयमेव मुख्यं कारणं प्रतिभाति । प्रथमाऽश्रद्धा, द्वितीयस्तु परिचययोग्यताया अभावः । श्रद्धावत्पुरुषसन्नियोगेन श्रद्धोत्पद्यते, किंवाऽन्तः-करणशुद्ध्या । किन्तु श्रद्धावतामपि संख्या स्वल्पैव, यदि श्रद्धावन्तो मिलन्ति मिलन्तु वा । तेष्वस्माकं श्रद्धैव नोदेति । महापुरुषपरिचयाभावस्य कारणमपि विचारे जागरूके केवलमश्रद्धैव ।

मनुष्याणां दोषदर्शने निसर्गतः प्रवृत्तिः, तेन हेतुना काठिन्येन श्रद्धा जायते, जायतान्नाम किन्तु सा स्थिरा न भवति । महत्सु पुरुषेष्वपि जना दोषदृष्टिं तन्वन्ति । सनातनधर्मानुयायिनो ये वयं वर्तामहे, तेषां समेषां प्रायः श्रीरामे श्रीकृष्णे वा श्रद्धा विलोक्यते, किन्तु दोषदृष्टिशीलानां तयोरपि चरित्रे समालोचना जागर्ति । वाल्मी-कीयरामायणे तु बहूनि वाक्यानि रामचरित्रे दोषाधायकानि सन्देहजनकानि च वर्तन्तेऽस्मिन्नास्ति सन्देहलेशस्तथापि तुलसीदासनिर्मितरामचरित्रमानसेऽपि ज्ञानहीनानां श्रद्धाविरहिणाञ्च मानवानांमनसि द्वित्रेषु स्थलेषु सन्देहस्तर्कः, अश्रद्धा च प्रादुर्भवन्त्येव ।

विलोकयन्तु भवन्तो यत्ते वदन्ति रामस्तिरोभूय वालिनं जघान, परस्त्रिया शूर्पणखया परिहासः कृतश्च तेन, किं बहुना, साध्वी सीता पावकपरीक्षायामुत्तीर्णाऽपि न्यायबल-मात्मबलञ्च परित्यज्य लोकनिन्दाभयेन परित्यक्ता श्रीरामेण । किञ्च सामान्यनर-वत्सीताविरहव्याकुलो भृशं विललाप । एवमेव श्रीकृष्णस्य बाल्ये नवनीतचौर्यं, गोपाङ्गनया दुराचारः, प्रौढावस्थायां मिथ्याभाषणे युधिष्ठिरस्य प्रेरणा, भीष्मयुद्धे प्रतिज्ञाभङ्गपूर्वकशस्त्रग्रहणमित्यादिदोषान् समुद्गिरन्ति । मदीयमिदन्तात्पर्यं यत् दोषदृष्टि-पराणां मानवानां यदि निर्विकारे परमेश्वरे दोषोपलब्धिस्तदा का कथा तद्भिन्न-नराणाम् । विचारणीयमिदमेवास्ति यज्ज्ञानशीलानां त्यागतपोमूर्त्तीनां मानवानामपि क्रिया यथार्थतोऽस्माभिर्दुर्ज्ञेया तर्हि मायापतिपरमेश्वरकार्यगवेषणाशक्तिः कास्मासु, का च योग्यता । इदमेवात्र तात्त्विकम् , विचारितरमणीयञ्च यच्छ्रद्धया, परिचययोग्यतया

च महापुरुषक्रिया ज्ञातुं शक्या न तु सन्देहेन तर्केण वा। यदि श्रद्धाया न्यूनतया दोपः समुज्जृम्भते, तस्मिन्नपि काले स्वमनसि विचारद्वारा समाधानचेष्टा प्रयत्नेनाचरणीया। सत्यं पथ्यं तथ्यमिदमेवास्ति यत्सत्पुरुषाणां गुणाः स्वायत्तीकरणीया दुर्गुणास्तु परिहेया तदुक्तं तैत्तिरीयोपनिषदि—"यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि।" (१।११।२) गुरुरुपदिशति भो शिष्य! शास्त्रोक्तानि कर्माण्येव कर्तव्यानि तद्विरुद्धानि नाचरणीयानि। मद्गतानि यानि सुचरितानि तान्येवानुकरणीयानि न तु निन्दनीयानि। यदि सौभाग्यतः पूर्णमहात्मनां दर्शनं भवेच्चेत्तदा किं वक्तव्यम्। यथा क्रय्यविक्रयिणः स्ववस्तूनि तुलया समीकृत्य परेभ्यो यच्छन्ति नानुमानेन, तद्वदेव महात्मनामेकोऽपि शब्दः हृदयतुलायां तोलयित्वा पौनःपुन्येन मुखान्निःसरति, नान्यथा। महात्मनां मनसः शरीरस्य वाचश्च कार्याणि महत्त्वपूर्णानि तात्त्विकानि चावलोक्यन्ते। तेषामक्रियदशाऽपि विश्वकल्याणायेति न तिरोहितं प्रेक्षावतां विदुषाम्। अत एव महात्मनां भाषणं, स्पर्शनं, दर्शनं, कर्म, ध्यानं, किं बहुना तत्स्पृष्टं सर्वमपि पूततमं जायते। तदुक्तं गीतायाम्—"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" महात्मनामुपदेशः, तत्प्रणतिः, तेन सम्भाषणं सर्वमप्येतत्कल्याणकरमेवेति मन्तव्यम्। ज्ञानप्राप्तिद्वारेणात्मोद्धरणाय महापुरुषप्रपन्नता येन केनाप्युपायेन लम्भनीया। तदुक्तं भगवता श्रीकृष्णेन—"तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥" एतादृशेष्वेव महात्मस्वन्यतमाः सुगृहीतनामधेयाः दुर्निवार्यदुर्व्यसननिरसनसनातनप्रणयिनः सकलवेदकलाकलापातिशायिनः सद्विचारचातुरीपरीतरीतिव्यवहारानुसंधायकाः सदाचारसमाधायकाः सुसंकल्पकल्पनाऽल्पीकृततत्तदोषाः सम्वर्द्धितज्ञानकोषाः श्रीरामचन्द्रशास्त्रिरटाटे महोदया विपश्चित्परिषदाभरणाः सत्समाजार्चितचरणा आसन्। उपर्युक्तमहानुभावानां दर्शनं येन कृतं, तद्वाणी येन श्रुता, ते दर्शनश्रवणाभ्यां विमोहितमतयोऽरातयोऽपि मित्रतां वशवर्तिताञ्चाकलयन्। यदुक्तं केनचित् कविना तत्तथ्यमेव।

ख्यातिं पुमानिति पुमान् भजते स एव, योऽलङ्कृतो गुणगणैः शिशिरांशुशुभ्रैः।
सोऽश्मैव सम्प्रति मणिः प्रथिताऽऽकरोपि, यस्य स्फुरन्ति न करा दलितांधकाराः॥

आलम्बितेऽपि हि विकासविधौ निरर्थमानाऽवलेपपवनक्षतबुद्धिगन्धाः।
वृन्ताऽवशेषकुसुमाऽऽकृतयो न लक्ष्मीमासादयन्ति पुरुषा गुणहीनरूपाः॥

अतश्चेत्थं निश्चीयते, यदाश्रिता लौकिकप्रभावाः सञ्चारितसद्भावाः साधवो विपत्स्वपि सुखदायका यदि, तर्हि का कथा मित्राणाम्। मित्राह्लादकरास्तु स्युरेवात्र नाऽस्ति काचित् विचिकित्सा। अन्ते च तेषु महानुभावेषु विश्वेशसायुज्यं गतेषु प्रणतिपुरस्सरं श्रद्धाञ्जलिं समर्पयन् विरमति रामानुजओझाः।
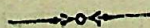
अनुकरणीयं व्यक्तित्वम्

राजनारायणशास्त्री
प्रधानमन्त्री
श्रीकाशीविद्वत्परिषद्

विश्वविदितपाण्डित्यवसुन्धरायान्धरायामस्यामधिक्रोडं भगवता भूतभावनेन लालितायां वाराणस्यां भारतीयसंस्कृतेः संस्कृतवाङ्मयस्य च किञ्चन शाश्वतमिवोद्भवस्थानमाकलयन्ति प्रवुद्धबुद्धयः। सर्वान् वेदान् सर्वाणि च शास्त्राणि जिज्ञासुभिरत्रावस्थीयत इति सम्प्रदायः। मौहम्मदशासनकाले महर्षिकल्पैः पण्डितप्रवरैः कण्ठीकृत्वैव वेदा रक्षिताः शास्त्राणि वा गूहितानि। तपोमूलैर्वृत्तिनिरपेक्षैः स्वधर्म इति कर्त्तव्यपरायणैः 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति पातञ्जलमहाभाष्यानुयायिभिः सर्वस्वत्यागपुरस्सरं वेदशास्त्ररक्षापथे महदिव शौर्य्यं प्रादर्शि।

तास्वेवैतासु परम्परासु काचन वैदिकपरम्पराऽद्यापि समुज्जृम्भते यदीयद्विजकुलकमलदिवाकर इव प्रादुरभूत् साक्षाद् वेदमूर्त्तिः स्वर्गीयः श्रीरटाटेमहाशयः। स चैष महाभागः कस्य वेदस्य वक्तेति यावज्जीवं मध्येसभं न कोऽपि समशकन्निर्णेतुम्। चतुरस्रपाण्डित्यभाजोऽस्यातुलतेजसः कर्मकाण्डे ज्ञानकाण्डेऽसाधारणी गतिरासीदुपासनाकाण्डे च। कदाचिद् वेदार्थव्याख्याने कण्ठरवेण वैदिकमण्डले वेदसमुद्घोषे च सम्प्रदायानुसारिप्रक्रियाप्रदर्शनेऽद्वितीयं लोकोत्तरं गरिमाणं साक्षात्कृत्य मुग्धमुग्धाइव समपद्यन्त वैदिकप्रवराः।

अखिलभारतीयसर्ववेदशाखासम्मेलने काश्यां सर्वातिशायिवैदुष्यन्दर्शन्दर्शं वाराणसेय-संस्कृतविश्वविद्यालयीयप्रथमोपकुलपतयः पण्डितभूपतयः श्रीमदादित्यनाथ झा आई० सी० एस० महोदयाः पण्डितपुङ्गवमेनं स्वविश्वविद्यालयीयसंमानितप्राध्यापकपदेऽभिषिच्य यावज्जीवनं शतद्वयावच्छिन्नं मासिकं सत्कारं व्यवास्थापयन्।

अतीवसरलतां सरसतां सहृदयतां विविधशास्त्रविज्ञतां व्युत्पन्नतां चाकलयन् कोऽपि मानव एतैरात्मसादक्रियत।

भारतीयसंस्कृतिपोषणकार्याभाववति घोषितधर्मनिरपेक्षतायुगे विषमायां स्थितावस्यामीदृशस्य विद्वत्प्रतीकस्य स्थितिरासीदतीवावश्यकी। परम् 'कालो हि सर्वङ्कषः' इति सर्ववादिसम्मतसिद्धान्तमाश्रित्य महाकालेनाकस्मादिव समाहूतं श्रीरटाटेशास्त्रिमहाशयममाकर्ण्यानभ्रांशनिपात इव सामाजिकैरन्वभावि। दुर्लभे युगेऽस्मिन्नीदृशा मनीषिण इति सर्वमुखान्निरसरत्।

तथापि कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्त इत्याभाणकमनुसृत्य तदीयास्सदात्मजास्स्वकीयामेतां सम्माननीयां परम्परां सर्वथा रिरक्षिषन्तीति विशेषतस्साधुवादप्रसङ्गः।

वाराणसेयसमस्तविद्वत्प्रतिनिधिभूतश्रीकाशीविद्वत्परिषदः उत्तरप्रदेशीय-संस्कृताध्यापकसङ्घस्य, काशीशास्त्रार्थसभायाः, शास्त्रार्थमहाविद्यालयस्य च प्रातिनिध्ये-नाहं वैदिकचक्रचूडामणेः स्वर्गीयश्रीरटाटेशास्त्रिमहाभागस्य सेवासु श्रद्धाञ्जलिरूपेण हार्दिकानेतान् शब्दान् समर्पयन् निरुक्तानुकरणीयव्यक्तित्वानुकरणाय विद्वन्मण्डलमभ्यर्थयन् विरमामि ।

श्रीगौरीनाथ शास्त्री
उपकुलपतिः
वा० सं० वि० वि० वाराणसी

वाराणसी–वैदिक–मौलिहीरः
श्रौत–क्रियाकाण्ड–सरोजभानुः ।
श्रीमान् रटाटेकुलकीर्तिदीपः
श्रीरामचन्द्रो विबुधो नमस्यः ॥

यस्योदारचरित्ररक्षणकृते विद्वद्वरैः सादरं
ग्रन्थः कोऽपि निबध्यते श्रुतिशतालङ्कारझङ्कारितः ।
तत्पादाम्बुजयोर्मयाऽपि विमलस्वान्तप्रसूनावली
भावोद्गारनवोपहाररचना विन्यस्यते पावनी ॥

पं० श्रीशिवदत्त मिश्रः
(सम्मानित प्राध्यापक, वा० सं० वि० वि०)वाराणसी

यन्मूलं जगदेकमंगलमयारम्भस्य पद्मोद्भवो-
यत्तेजो बलतः ससर्ज निखिलाविद्याः प्रपंचोद्धुराः ।
तत्तेजो निकुरम्बडम्बरमयं वेदात्मकं वाङ्मयम्
येनाध्यापितमन्वहं स सुकृती रामो रटाटेमणिः ॥ १ ॥

अग्नीनाधाय वाद्याविरहितचरितो यस्त्रिकालं प्रसर्पन्
मंत्रश्रेणीप्रवाहप्रमुदितविबुधव्रातवन्द्याङ्घ्रिपद्मः
यागान् कृत्वाऽप्यनेकान् कलिकलुषभयध्वंसधीरो धरायाम् ।
एकः श्रीरामशास्त्री निजगुणमहितः काशिकायां दिदीपे ॥ २ ॥

श्रीमद्रटाटेकुलकेतनस्य-
श्रीरामनाम्नो वसुधामहर्षेः ।
स्मृतिं निधत्ते शिवदत्तमिश्रो
हृदम्बुजे दर्शनमार्गपान्थः ॥ ३ ॥

पं० श्री वटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

सा० प्राध्यापक वा० सं० वि० वि० वाराणसी

श्यामा पादाब्जनिर्यन्महितरसझरी माधुरीभृङ्गराजः
स्फूर्जद्वेदाक्षरालीकिरणपरिहृताशेषलोकान्धकारः ।
श्रौते कर्मण्यमन्दप्रसृमरचरितो रामभट्टो रटाटे
किं वा नाऽद्यापि पद्यां विशदयति विदां शास्त्रमार्गानुगानाम् ॥ १ ॥

भव्याकृतिर्भसितभूषितभालदेशो
मन्त्राक्षरोज्ज्वलमुखः श्रुतिपारगामी ।
काशीप्रकाशनरविः करुणार्द्रचेता;
रामाऽभिधो द्विजमणिः स्मरणीयपादः ॥

गङ्गा-कलिन्दतनयोपमिते यदन्तः
सम्मेलनं श्रुति–शिवागमतत्त्व–धारे ।
सम्प्रापिते गुरुवरैरयमद्य वन्द्यो
विप्रागणीरगणिताऽमितविघ्नजालः ॥

श्री पं० रामचन्द्रभट्टवैशिष्ट्यम्

लेखकः—आचार्यरत्नम्

डा० गोविन्दकविराजः

वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

जयन्ति ते द्विजोत्तंशाः परार्थदत्तजीवनाः ।
रक्षितं श्रुतिरूपं यैरस्माकं पैतृकं धनम् ॥

अस्माकं पैतृकं यत् स्वं वाङ्मयं वैदिकादिकम् ।
पातितं भर्जितं दग्धं त्रोटितञ्च विपोथितम् ॥
पिष्ट्वा तोये विनिक्षिप्तं चूर्णितञ्च विगालितम् ।
नाशितं विविधोपायैर्दस्युभिर्यवनादिभिः ॥

तथापि धर्मप्राणानां शिवराजादिभूभुजाम् ।
प्रयासेन निरस्तास्ते, ब्राह्मणाः परिरक्षिताः ॥
तैरेव कृतकण्ठस्थसर्वविद्यैर्द्विजोत्तमैः ।
कथञ्चिद् रक्षितं किञ्चिदुच्छिन्नं तत्स्वभावतः ॥

तस्यां परम्परायां वै रटाटेकुलदीपकः ।
काश्यां समभवत् कश्चिद् रामचन्द्रो द्विजोत्तमः ॥
आहिताग्निः सदाचारपरिपूतकलेवरः ।
विनीतः सत्यवाग् दान्तः स्मितपूर्वाभिभाषकः ॥

यज्जिह्वाग्रे नृत्यति स्म सविकाराखिला श्रुतिः ।
सस्वरा सार्थका साङ्गा सुस्पष्टा श्रुतिमोहिनी ॥
विश्वविद्यालयात् काश्याः संस्कृतेति पुरःपदात् ।
प्राध्यापकत्वं यो लेभे सम्माननपुरःसरम् ॥

व्यतीत्य द्विनवत्यब्दं पूर्णे वयसि सत्तमः ।
सोऽवाप शिवसायुज्यं वह्न्यक्षिखाद्विवैक्रमे ॥
समाजस्यापूरणीयासह्या जाताक्षतिर्यतः ।
अतश्चेखिद्यते चेतोऽस्मदीयं तदभावतः ॥

जनार्दन शास्त्री रटाटे

याता विष्णुपदीवसन्मतिनदी नारायणस्याङ्घ्रितो
ब्रह्माणं च विनायकं गिरिमिव श्रीकृष्णमभ्याश्रयत् ।
तस्मादप्यभितो विभक्तविषया श्रीरामचन्द्रं तथा
श्रीनारायणमाधवौ शिवमिव प्राप्तानुगङ्गाधरम् ॥ १ ॥

स्रोतोभिर्विविधैरेषा प्रसिद्धा धरणीतले ।
दक्षिणाप्युत्तरद्वारा पूर्वोक्ता राजते नदी ॥ २ ॥

श्रीमत्कृष्णनवावतारमधुरः शान्तो नु दान्तः क्षमी
सारल्यस्य खनिर्गुणाब्जपरिषत्सेवारसानां जनिः ।
विद्वन्मान्यवदान्यगीतचरितः कारुण्यवारां निधिः
स्वानन्दीकृतकाननो विजयते श्रीरामचन्द्रः सदा ॥ ३ ॥

'रटाटे' कुलात् क्षीरसिन्धोः प्रसूतं
किमेतन्मनोहारि रत्नं विशालम् ।
रवे रश्मिपुञ्जोऽथवा मूर्तिधारी
शिवो वाऽभवद् रामचन्द्राभिधानः ॥ ४ ॥

चतुर्वेदपाठी किमेष स्वयम्भू-
वंसिष्ठोऽथवा श्रौतयागादिनिष्ठः ।
जना इत्थमेवाकुला यस्य रूपे
स तातः क्वचिद् भासतेऽद्यापि मुक्तः ॥ ५ ॥

अग्निहोत्रकरणं विधानतः
सद्गुरोः स्मरणमप्यकामतः ।
सेवनं द्विजगवामपापतः
सम्मतं व्रतमिहास्य तत्त्वतः ॥ ६ ॥

वयं यस्य नित्यं प्रभाते स्मरन्त-
स्त्वदीये क्रमे वर्तितुं चिन्तयन्तः ।
तदाशीः प्रभावात् तपः सञ्चयन्तो
भवेम प्रकाशास्तमेवं नमन्तः ॥ ७ ॥

तस्यानुजं गुरुगुणं कलयावत्तीर्णं
श्रीपार्वतीपतिमुदारविचारसारम् ।
गङ्गाधरं मतिलतानववारिधारं
वन्दे पुराणपुरुषं सततं सुशान्त्यै ॥ ८ ॥

चतुर्वेदविद्

आहिताग्नि श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे

स्मृति-ग्रन्थ

वेदमूर्ति श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे : जीवनी

लें०—कौस्तुमानन्द पाण्डेय पर्वतीय

"इस धरती पर समय-समय पर एक से एक बढ़कर ऐसे मानव रत्नों ने जन्म लिया है जिन्होंने अपने क्रिया कलायों से न केवल अपना ही नाम रोशन किया, बल्कि आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये वे अपनी एक अमिट छाप भी छोड़ गये। इन सरस्वती पुत्रो ने मां की सेवा में नाना प्रकार के कष्ट झेले, विकट परिस्थितियों का सामना किया, और इस अग्नि परीक्षा में वे खरे उतरे। ऐसे ही लोगों का श्रृंखला में अ वेदमूर्ति ाहिताग्नि स्व० श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे भी हैं।"

वंश-परिचय

उद्भव स्थान :—

रटाटे घराना मूलतः जलगाँव से सम्बन्धित है। जलगाँव के बाद यह घराना कायगाँव-टोक गया। इस घराने के मूलपुरुष गोविन्द भट्ट थे। वंशावली देखने से मालूम पड़ता है कि इस घराने के पाँचवें पुरुष श्री विनायक नारायण रटाटे जो सर्व-प्रथम कायगाँव से काशी आये। यह घराना प्रारम्भ से ही पूजापाठ, वेदाध्ययन, पुराण-प्रवचन आदि के लिए प्रसिद्ध था।

काशी आगमन :—

जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्व० रामचन्द्र शास्त्री रटाटे के पितामह श्री विनायक नारायण रटाटे अपनी वृद्धावस्था में काशीवास की दृष्टि से अपने दो पुत्रों, पत्नी एवं दो कन्यों को लेकर—ब्रह्मावर्त के रास्ते काशी आये। इनकी पत्नी का नाम सरस्वती और कन्याओं का नाम क्रमशः मणिकर्णिका और काशी था। इनमें मणिकर्णिका का विवाह ग्वालियर के आठवले परिवार में हुआ था। काशी का विवाह काशी में ही गजानन भट्ट पाटणकर से हुआ था। श्रीविनायक शास्त्री एक उच्चकोटि के पौराणिक और पक्के सिद्धान्तवादी थे।

काशी आने के पूर्व आपने काशीवास के कतिपय नियम बना लिये थे। जैसे—किसी भी प्रकार की याचना नहीं करूँगा, भिक्षुक के नाते हाथ पर दक्षिणा नहीं लूँगा, अनायास जो कुछ उपलब्ध हो जायेगा उसी में सन्तोष करूँगा, योग्य श्रोता मिलने पर पुराण प्रवचन करूँगा लेकिन वहाँ प्राप्त किसी भी प्रकार की समाग्री अपने हाँथों घर नहीं ले आऊँगा, आदि। इन्हीं सब नियमों का पालन करते हुये वे काशी में रहने लगे। आपके इन गुणों में त्रिकाल गंगास्नान, गायत्री जप, सच्चरित्रता, सौम्यभाव, निर्लोभी स्वभाव एवं अगाधपाण्डित्य, स्वयं कुछ दिनों में लोगों को इनकी ओर आकृष्ट करने लगा। इनके क्रिया कलापों से प्रभावित होकर तत्कालीन पेशवा वंशजों ने गणेश घाट पर इन्हें पुराण की गद्दी दी। नियमित रूप से आप वहाँ पुराण प्रवचन करते थे। जो कुछ दक्षिणा वहाँ आती थी उसे इनका शिष्य घर पहुँचा देता था। इसी प्रकार दुर्गाघाट स्थित विठ्ठल मन्दिर में भी आपका पुराण होता था। यहाँ आपका पुराण सुनने के लिए दो सौ श्रोता आते थे। नियमानुसार इनके प्रवचन में स्त्रियाँ पीछे बैठती थी, संन्यासी, बुद्ध एवं दो-तीन विषयों के विद्वान् उनके सामने बैठते थे। लोग इनका आदर करते थे। प्रतिवर्ष ये दो भागवत सप्ताह एवं महाभारत की एक आवृत्ति करते थे। सप्ताह के दिनों प्रतिदिन संन्यासियों को फलहार कराते थे। अन्तिन दिन स्थानीय नाना फड़नवीस के बाड़े-दुर्गाघाट में भण्डारा होता था।

सांसारिक प्रपंचों में इनकी रुचि न थी। पुराण पर इनका पूर्ण विश्वास था। परम्परानुसार वेदाध्ययन भी आपने किया था। इन्हें काशी की गलियों का कोई ज्ञान नहीं था। केवल गंगाजी जाने का रास्ता, एवं जहाँ-जहाँ प्रवचन करते थे वहाँ-वहाँ का रास्ता ही आपको ज्ञात था। यहाँ तक कि विश्वनाथ मन्दिर का रास्ता भी आप प्रायः भूल जाते थे। क्योंकि जितना कार्य प्रारम्भ किया है उतना पूर्ण होना ही चाहिए, ऐसा उनका विश्वास था। "कृष्ण एव हि केवलम्" तथा "प्रत्यक्षं कृष्ण एव हि" इन वाक्यों पर आपका पूर्ण विश्वास था। वे परान्न ग्रहण नहीं करते थे। मंगला-गौरी पर दाऊजी भट्ट के मकान के सामने इनका अपना निजी मकान था। इनकी दिनचर्या एस प्रकार थी :—

अ—प्रतिदिन प्रातः ३ बजे उठना और गौ सेवा करना। इनके पास गंगा और यमुना नाम की दो गायें थी। इनकी खड़ऊँ की आवाज सुनकर दोनों गायें मूत्र-त्याग करती थीं, जिसे गौभक्त शास्त्री जी सात बार छानकर पीते थे।

आ—गौ सेवा से निवृत्त होकर अपने नित्यकर्म, गंगास्नान, संध्या, आदि के बाद बिठ्ठल मन्दिर में पुराण प्रवचन।

इ—१० बजे संध्या स्नान् करने मणिकर्णिका जाते। वहाँ गणेश मंदिर में से पुरा प्रवचन कर धर लौटते थे। तदुपरान्त सौ मधुकरियों को मधुकरी देकर और

साथ में ब्राह्मण लेकर भोजन करते थे। इसके बाद ग्रन्थावलोकन कर पुनः ४ बजे विठ्ठल मन्दिर में प्रवचन करते थे।

इ—सायं-काल सन्ध्यावन्दन कर वहिना साहब पेशवा-घड़ीवाली के यहाँ कपिलेश्वर गल्ली में प्रवचन करते थे और वहीं फलाहार कर घर लौटते थे। इस प्रकार की उनकी दिनचर्या थी। सत्तर वर्ष की अवस्था में इनका स्वर्गवास हुआ।

इनके दो पुत्र थे। इनमें बड़े का नाम गोपाल विनायक रटाटे था। इनके तीन विवाह हुये। पहली पत्नी का नाम मैना था। इनकी दूसरी पत्नी श्रीरामशास्त्री सहस्रबुद्धे की कन्या थी। इसका नाम चित्रा था। तीसरी पत्नी काशी बालदीक्षित जोशी की पुत्री थी। इन तीनों पत्नियों से इन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। ६२ वर्ष की अवस्था में आप सन्यास लेकर ब्रह्मीभूत हुए हुई। ये उच्चकोटि के पौराणिक थे।

श्रीविनायक नारायण रटाटे के द्वितीय पुत्र श्रीकृष्ण रटाटे थे। इनका जन्म सन् १८५४ में हुआ था। आप का अध्ययन श्री गंगाधर शास्त्री तैलंग के यहाँ हुआ था। इनकी पत्नी का नाम आनन्दी था। यह काशी के श्रीमहादेव चिन्तामणि पाल्न्दे की कन्या थी। इनके अनेक सन्तानों में से चार पुत्र और तीन कन्याएँ का उपलब्ध विवरण यहाँ दिया जा रहा है। प्रथम का नाम सखू, जिसका विवाह श्री कृष्णभट्ट शिधोरे के साथ हुआ था। दूसरी कन्या, वहिणा का विवाह श्री गंगाधर गोविन्द दाते के साथ हुआ था। तीसरी कन्या कृष्णाबाई थी जिनका विवाह श्री सिद्धेश्वर रामभट्ट जोशी, अयोध्या, के साथ हुआ था। श्रीकृष्ण रटाटे की मृत्यु सन् १९१८ में ६४ वर्ष की अवस्था में हुई।

श्री श्रीकृष्ण रटाटे के पुत्र—रामचन्द्र, गंगाधर, नारायण, माधव थे। इनमें रामचन्द्र रटाटे का वर्णन विस्तारपूर्वक हम आगे करेंगे। इन चारों पुत्रों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

रामचन्द्र रटाटे के दो विवाह हुए। प्रथम पत्नी जानकी, श्री नारायण दीक्षित लेले की पुत्री थी। दूसरी पत्नी सीता, श्री घोड़ों बलवन्त जोशी (वाई) की कन्या थीं। इस पत्नी से इन्हें कुल आठ सन्तान हुई जिनमें पाँच पुत्र एवं तीन कन्याएँ थीं। इनमें प्रथम पुत्र केशव तथा एक कन्या की अल्पायु में ही मृत्यु हो गई। द्वितीय पुत्र ढुण्ढिराज की भी मृत्यु २२ वर्ष की अवस्था में हुई। अपनी इस अल्पायु में ही इन्होंने सम्पूर्ण अथर्ववेद कन्ठस्थ कर लिया था, साथ साथ श्रौत-स्मार्त में भी निपुण थे जिसपर पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने इन्हें पुरस्कृत भी किया था। यह पुरस्कार इनकी मृत्यु के ठीक दूसरे दिन आया था। इन्हें अभिनय कला एवं संगीत का भारी शौक था। स्थानीय नूतन बालक गणेसोत्सवादि के माध्यम से आपने बहुत सा सामाजिक कार्य भी किया था। व्यायाम, लाठी, शारीरिक, कलाकार्यादि

में भी आप दक्ष थे। रामचन्द्र शास्त्री की जीवित सन्तानों के नाम इस प्रकार हैः— तीन पुत्रः–नारायण, "अथर्ववेद मार्तण्ड" आप वैदिक एवं पौराणिक तथा स्थानीय दर भंगाविद्यालय में अध्यापक हैं। विनायक, श्रीकृष्ण (चित्रकार) तथा दो कन्या— यमुना पाटनकर बीए. बीटी. और गोदावरी आम्डूकर। सम्प्रति नारायण शास्त्री के दो पुत्र, गोपाल और दत्तात्रय तथा तीन कन्याएँ है।

श्रीकृष्ण रटाटे के द्वितीय पुत्र गंगाधर शास्त्री थे। इनका जन्म सन् १८९३ में हुआ था। आपका भी अध्ययन श्री वासुदेव शास्त्री जोशी एवं म० म० पं० नित्यानन्द पन्त पर्वतीय जी के पास हुआ था। आपने मध्यमा परीक्षा दी थी। आप उच्च कोटि के कथावाचक थे। इनकी पत्नी पार्वती, काशी के श्री बैजनाथ गोविन्द सोमण की पुत्री थी। इनके अनेक पुत्रों में केवल दो कन्याएँ एवं एक पुत्र शेष रहा। इनकी एक कन्या नानीबाई का विवाह श्री भाऊ शास्त्री पटवर्धन से हुआ है। दूसरी कन्या था नाम शकुन्तला है जिसका विवाह ग्वालियर के श्री विष्णु गुरुजी से हुआ है। इनके पुत्र जनार्दन हैं। सम्प्रति जनार्दन शास्त्री एम० ए० आचार्य० अनुसन्धानक तथा मारवाड़ी सं० का० में साहित्य विभागाध्यक्ष है। २८ वर्षीय नवयुवक है और अपनी परम्परानुसार एक प्रतिभासम्पन्न एवं उच्चकोटि के विद्वान् है।

तृतीय पुत्र नारायण श्रीकृष्ण रटाटे है, जो अपने नाना पालन्दे के यहाँ गोद जाने से नारायण महादेव पालन्दे कहलाते हैं। आप एक उत्कृष्ट कथावाचक होने के साथ ही श्रौत स्मार्त के एक अच्छे विद्वान् और संस्कृतज्ञ हैं।

चतुर्थ पुत्र माधव श्रीकृष्ण रटाटे थे। इनका जन्म सन् १८९९ में हुआ था। आपने संस्कृत की व्याकरण मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इनकी पत्नी का नाम राधा था जो श्री राजाराम शास्त्री दातार की कन्या थी। सन् १९१९ में अल्पायु में ही आपकी मृत्यु हुई।

अब इसी घराने के एक सदस्य श्री रामचन्द्र शास्त्री रटाटे के बारे में विशेष वर्णन इस प्रकार है।

वेदमूर्त्ति श्री रामचन्द्र शास्त्री रटाटे

सन् १८७४ में श्रीश्रीकृष्ण विनायक रटाटे की धर्मपत्नी सौ० आनन्दी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। कौन जानता था कि यही बालक आगे चलकर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। परम्परानुसार इष्ट-मित्र, सगे-सम्बन्धी बधाई देने विनायक शास्त्री के पास आने लगे। विधिवत् बच्चे का जातकर्मादि संस्कार हुआ। षष्ठी पूजन के दिन की एक घटना है—इस बालक को माता ने अपनी गोद से फेंक

दिया। मातामही ने तुरन्त बच्चे को अपनी गोद में ले लिया और उसका पालन-पोषण करने लगीं। फलतः अन्त तक इस बालक की अपनी माता से पटती न थी। नानी का इनके प्रति अपार स्नेह था। नियमानुसार बारहवें दिन नामकर्म हुआ। रामचन्द्र नाम से अलंकृत शिशु का लालन-पालन बड़े प्यार से हुआ। नाना-नानी इन्हें काफी मानते थे। ये प्रायः इन्हीं के पास रहते भी थे। कुछ समय बाद बालक को परमहंस श्री तैलंग स्वामी जी के दर्शन कराये गये। स्वामी जी ने बालक को अनेक आशिर्वाद दिये। यज्ञोपवीत के पश्चात् स्वामी जी ने रामचन्द्र को सप्तशती का समन्त्रक उपदेश दिया। मातु पितामही ने आपको धार्मिक शिक्षाएँ एवं स्तोत्रादि पढ़ाया जिसे रटाटे जी बराबर स्मरण करते थे।

इनके पितामह इन्हें तीन वर्ष की अवस्था से ही सुभाषित एवं स्तोत्रादि कण्ठस्थ करवाते थे। रामचन्द्र की पाँच वर्ष की अवस्था तक श्री विनायक शास्त्री जीवित रहे। तदुपरान्त ये अपने ताऊ श्री गोपाल शास्त्री के संरक्षण में आये। गोपाल शास्त्री के घर पर ही पाठशाला थी। यहीं पर बालक रामचन्द्र ने ५ से ८ वर्ष की अवस्था तक अमरकोष, रघुवंश (पाँच सर्ग) धातु-शब्द रूप, शिक्षा चतुष्टय (निघन्टु को छोड़कर), अष्टध्यायी एवं महिम्न रामरक्षादि स्तोत्रों को कण्ठस्थ कर लिया था। इस पाठशाला में अमरकोष और अष्टाध्यायी को विशेष महत्त्व दिया जाता था। जैसा कि प्रसिद्ध है—"अष्टाध्यायी जगन्माता अमरकोषो जगत्पिता"। इस प्रकार इतनी अल्पायु में उचित संरक्षण प्राप्त कर बालक रामचन्द्र ने पर्याप्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

आठवें वर्ष, "अष्टमे वर्षे ब्राह्मणस्योपनयनम्" के अनुसार, बालक रामचन्द्र का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। एकबार बालक रामचन्द्र से पूछा गया—तुम वेद पढ़ोगे या शास्त्र? रामचन्द्र ने उसी बालसुलभ चापल्य से उत्तर दिया—मैं वेद पढ़ूँगा क्योंकि वेद पढ़ने से लड्डू खाने को मिलते हैं। कहना न होगा कि कुशाग्रबुद्धि बालक की स्मरण शक्ति काफी तेज थी। इनके सहपाठी यदि ५ श्लोक याद करते थे तो ये १० याद करते थे।

इनकी इस विलक्षण प्रतिभा को देखते हुए इन्हें तत्कालीन विख्यात विद्वान् वे० मू० बालदीक्षित काले के पास वेदाध्ययन के लिए भेजा गया। उस जमाने में गुरु का शिष्य पर पूरा अधिकार होता था। अतः इसी का परिणाम था कि छात्र मेधावी और प्रतिभाशाली होते थे। गुरुकुल में वेदारम्भ हुआ और शीघ्र ही इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा से गुरु को भी आकर्षित कर लिया। इनके गुरु बड़े क्रोधी स्वभाव के थे, वे पक्षान्त में पीछे का अध्याय सुने बिना नया

अध्याय प्रारम्भ नहीं करते थे। याद न रहने पर कठोर दण्ड देते थे। १० वर्ष के बालक रामचन्द्र को भी एक वार इनके क्रोध का शिकार होना पड़ा था। स्व० वेदमूर्त्ति की चिरस्मरणीय घटना इस प्रकार है :—

ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को आंग्रे के बाड़े मे वसन्त पूजा के लिए जाते समय गुरु जी ने अध्याय सुनाने को कहा। पूछा–अध्याय कण्ठस्थ है? बालक रामचन्द्र ने, विचार किया–अभी तो गुरु जी काम के लिए जा रहे हैं, अतः हाँ कहकर टाल दिया जाय। अतः "हाँ याद है" कह दिया। किन्तु वह तो–गुरवो दुर्लभाः सन्ति शिष्य सन्तापहारकाः–में से थे। उन्होंने समझा–यह बाल्य बुद्धि के वशीभूत हो गया है अतः इसका उपचार करना होगा, अन्यथा यह विगड़ जायेगा। ऐसा सोचकर गुरु जी ने कहा–सुनाओ, सुनकर ही दूसरा कार्य करुँगा। बालक रामचन्द्र ने सुनाना प्रारम्भ किया। चार–पाँच वर्ग के बाद ही अशुद्धियाँ होने लगीं। गुरु जी ने कहा—यही कण्ठस्थ है? बस फिर क्या था, उन्होंने बालक के भावी जीवन को ध्यान मे रखकर कहा–सभी कपड़े उतारो, मैं तुम्हारा उपचार करुंगा। आज्ञा शिरोधार्य कर बालक ने तुरत् सभी वस्त्र उतार दिये।

फिर गुरुजी ने नेवड़ा (गाय दुहते समय पैर बाधने वाली रस्सी) निकाल कर मारना प्रारम्भ किया। इसी बीच गुरुजी की बृद्धा माँ बालक को बचाने के लिए आई। दो कोड़े धोखे में माँ को भी खाने पड़े। बाते भी सुननी पड़ीं–देखो माँ! तुम पूज्या हो, लेकिन इस पठन पाठन के बीच न बोला करो। बालक छूट देने पर भविष्य में मुझे कलंकित करेगा और स्वयं भी वर्बाद होगा। अभी व्यवस्थित शासन करने पर सबके लिए मंगलकारी होगा। कुछ ही मिनटो में बालक वेहोश होकर जंमीन पर गिर पड़ा। सर्वांग में सांट पड़े हुए थे।

फिर एक महिने तक स्वयं गुरुजी और उनकी माता बालक रामचन्द्र की औषधि एवं उपचार करने में लगे रहे। यह घटना जब बालक के अभिभावको ने सुनीं तो बोले–गुरुजी, आपने ठीक किया। अगर मर भी जाता तो भी हम कुछ न कहते। युवावस्था तक यह आपका है। आप ही इसके वास्तविक अधिकारी हैं।

स्व० रटाटे जी कहते—बस वही एक वार की मार मेरे जीवन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई।

इस प्रकार बालक रामचन्द्र का जीवन गुरुकुल में ही वीता। इसी बीच गुरुजी के आकस्मिक निधन से समस्त छात्रों तथा वैदिको में एक प्रकार का बज्राघात हुआ। गुरुजी की मृत्यु होने पर इनका अवशिष्ट क्रमपाठ वे. मू. रामजी जोशी के पास हुआ। इनका भी बालक रामचन्द्र पर विशेष स्नेह था। २० वर्ष की अवस्था में आपने सम्पूर्ण शाखा का उपनिषदों सहित अध्ययन कर लिया था।

श्रीरामचन्द्र की दिनचर्या :—

जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बालक रामचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों का भार अलग-अलग सम्बन्धियों ने लिया—

१—घरेलू शैक्षणिक भार······ताऊ श्री गोपाल शास्त्री
२—क्रीड़ा-विनोद······मातामह श्री महादेव पालन्दे
३–सभा, पाण्डित्य,
वाक्चातुर्य तथा शिक्षा······म० म० पं० नित्यानन्द पंत पर्वतीय

ये प्रतिदिन तीन बजे प्रातः अपने ताऊ की "गजानन" की आवाज के साथ उठ जाते। करदर्शन तथा आवश्यक वन्दन के पश्चात् मुखमार्जन कर अभ्यास के लिए बैठ जाते। सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व शौचादि से निवृत होकर ताऊ के साथ गंगा स्नान के लिए जठार घाट पर जाते। सविधि स्नान से निवृत्त होकर 'जटार मन्दिर में प० पू० श्री० पूर्णाश्रम स्वामीजी के पास दर्शनार्थ जाते, जहाँ सूर्य नमस्कार कर स्वामी जी से आशीर्वाद प्राप्त करते। घर आते ही मेटकूट (भोजन विशेष) एवं दूध भात खाकर ७ बजे से ११ बजे तक गुरुजी के यहाँ ऋग्वेदाध्ययनार्थ जाते। यहाँ के नियम काफी कठोर थे, जैसे–एक बार से अधिक लघुशंका या पानी पीने की छुट्टी न मिलती थी। घर आते ही अपने व्यक्तिगत आवश्यक कार्य यथा पुस्तकादि की व्यवस्था करते थे। यदि कहीं से भोजन का निमन्त्रण आया हो तो भोजनार्थ जाते थे अन्यथा घर पर ही भोजन कर पाठशाला जानें तक पाठ की तैयारी में लगे रहते थे। पुनः २ से ६ बजे तक पाठशाला जाते थे। सायं सन्ध्या करके ९ बजे तक पुनः अध्ययन कर निद्रा पाठशाला में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने की इनकी उत्कट् इच्छा रहती थी। छुट्टी के दिनों याज्ञिक प्रयोग, यज्ञोपवीतार्थ सूत कातना, कुशा समिधा आदि की व्यवस्था करना ही इनका काम था।

उपदेश :—

रामचन्द्र के अभिभावको ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार समय–समय पर बालक के उपकारार्थ अनेक प्रकार के उपदेश दिये। इनमे सर्वप्रथम मातुपितामही, जिसका रामचन्द्र से १०–१२ वर्ष तक निकट का सम्बन्ध रहा उनके शिक्षा देने का ढंग बड़ा अनोखा था। रामचन्द्र, को खिलाने पिलाने में कोई कसर न रखतीं किन्तु जब रामा में कुछ कुसंगति के दोष देखतीं तो धीरे से पास में जाकर बड़ी तेज

चिंकोटी काटती थीं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि इनमें त्याग, सहिष्णुता, सत्यता आदि गुण सहज ही उत्पन्न होने लगे। एक बार जाड़े के दिनों में पिताजी ने एक भिखारी को दिखाकर कहा—देखो यह किस प्रकार ठिठुर रहा है ? इसके कपड़े कैसे है ? तुम्हारे पास तो इससे अच्छे कपड़े हैं। यह सच्चा गरीब चोरी से धन न प्राप्त करता हुआ ईश्वर के नाम पर जो कुछ प्राप्त हो जाता है, उसी में सन्तोष कर लेता है। तुम्हारा इसके प्रति क्या कर्त्तव्य है ?

इसी प्रकार एक दिन विष्ठा मे कीड़ों को दिखलाकर कहा—यह खोटे कर्मों का फल है। फलतः बालक ने कभी असत्याचरण नहीं किया। एक बार की बात है बालक रामचन्द्र कहीं भिक्षुकी के लिए अपने पिताजी का दुशाला ओढ़ कर गये। घर आते ही पिताजी ने पूछा—किसकी आज्ञा से तुमने यह दुशाला ओढ़ा ? क्या तुम्हारे अन्दर इसे कमाने की योग्यता है ? बस इतना सुनते ही रामा ने बड़ी गम्भीरता से विचार कर मौन प्रतिज्ञा की कि जब तक अपनी योग्यता से दुशाला कमा कर पिताजी को अर्पण नहीं कर लूँगा तब तक दुशाला नहीं ओढ़ूंगा। फलतः आपको जीवन काल में सैकड़ों शाल दुशाले बड़े–बड़े राजा महाराजाओं के यहाँ से प्राप्त हुए।

इनके ऊपर बड़ा कठोर अनुशासन था। एक बार ये कहीं आपस के सम्बन्धियों में किसी के यहाँ विवाह में गये जहाँ इन्हें रात को काफी देर हो गई। रात्रि में ११ बजे ये घर आये। पिताजी ने इन्हें अन्दर नहीं आने दिया। माघ का महीना था। १० वर्ष के रामा को सर्दी में घर के बाहर रहकर ठिठुरना पड़ा। प्रातः काल ३ बजे पढ़ने के वक्त ही घर में इन्हें प्रवेश मिला।

ऋग्वेद के मर्मज्ञ अध्ययन के पश्चात् आपने के० वा० बालशास्त्री बापटजी से सामवेद का अध्ययन किया और उन्हीं से शाक्त दीक्षा भी ली। दीक्षा के पूर्व आपका प्रथम विवाह वे० मू० वेणी माधव (भिकूजू दीक्षित) लेले की भतीजी से हुआ था।

विवाह के कुछ वर्ष पश्चात् ही आपके आयोध्यास्थित साले के दिवंगत हो जाने से उनके बालक की पैतृक जीविका सुरक्षित रखने के हेतु आप की पत्नी ने आप से अवशिष्ट अथर्ववेद को ही कण्ठस्थ करने के लिए कहा। इस पर रटाटे जी ने विचार किया कि इससे दो प्रमुख लाभ होंगे, इस बालक की वृत्ति कायम रहेगी तथा मेरे चारों वेदों की संख्या भी पूर्ण हो जायगी। तदनुसार आपने श्री गणेश भट्ट मार्तण्ड जी से अनेक कठिन अनुबन्धों पर शिक्षा प्रारम्भ की तथा ६ महीनों ही में अयोध्या जाकर उस स्थान को संभाल दिया। अवशिष्ट अथर्ववेद आपने अयोध्या के

ही ब्र० भू० थत्ते जी द्वारा पूर्ण किया। अयोध्या में आपको वे. शा. स. श्री गणेश शास्त्री गोडसे जी के अत्यावश्यक एवं उचित परामर्श प्राप्त हुए थे।

इस प्रकार आप अयोध्या में लगभग चार वर्ष रहे। उसी समय दैवयोग से जीवन के सर्वश्रेष्ठ हितचिन्तक एवं मार्गदर्शक पितृव्य श्री गोपाल शास्त्री ब्रह्मीभूत हो चुके थे अतएव पिताजी ने आपको काशी बुला लिया।

काशी लौटने पर आपने पुनः एक बार अध्ययन की विशेष तैयारी की। जाड़े की पूरी रात्रियाँ एवं गर्मी की दोपहर को आपने अध्ययन की सहचरी बना लिया। समस्त पठित ग्रन्थों की बराबर आवृत्तियाँ कर आपने अपने ग्रन्थ तैयार कर लिये थे।

लगभग ३०–३२ की अवस्था में रटाटे जी को प्रथम पत्नी का वियोग एवं उसीके भविष्यानुसार पुनः दो महीने पश्चात् द्वितीय विवाह हुआ। सन् १९१८ ज्ये० शु० द्वा० को आपके पिता जी का देहावसान हो गया। पिता से आपको अनेक आशीर्वाद मिले साथही कुछ विशिष्ट आज्ञाएँ भी मिली थी। जीवन पर्यन्त गौ से विन्मुख न होना एवं द्रव्य याचनार्थ किसी भी अवस्था में किसो के पास न जाना इत्यादि।

सन् १९१९ में आपने श्री सीताराम दी० पुरोहित जी की प्रेरणा से अग्निहोत्र लेने का निश्चय किया। तदनुसार पुत्र होते ही आपने अग्निहोत्राधान लिया।

एक बार आपके ऊपर घोर संकट आया था किन्तु आप ने उसे परीक्षा की अच्छी घड़ी समझ सहन किया। उसी समय आप को गार्हपत्य कुण्ड में अग्निदेव के साक्षात् विग्रह के दर्शन मिले थे।

अध्यापन—सर्व प्रथम आपने काशी के सांगवेद विद्यालय में अथर्ववेद का अध्यापन किया। पश्चात् दरभंगा नरेश की काशीस्थ पाठशाला में लगभग ३५ वर्ष तक अध्यापन किया। देश भर के विभिन्न प्रान्तों के सैकड़ों छात्र आपसे पढने आते थे। छात्रों के साथ पुत्रवत् व्यवहार होता था। अन्न-वस्त्र, एवं आवास के साथ शिक्षा दी जाती रही।

भैरव नाथ स्थित आपके निवास स्थान के सामने श्री देवजी का एक प्राचीन खण्डित नवग्रहेश्वर का मन्दिर था जिसका आपने पुनः जीर्णोद्धार कराया।

१९३७ के लगभग आप बीकानेर राज्य में किसी विशिष्ट पद पर नियुक्त किये गए किन्तु अग्निहोत्र वश आप ६ महीने में ही उक्त—पद को छोड़ दिया। आप बराबर कहते थे मुझपर इस अथर्ववेद की बड़ी कृपा है वैसे तो इसके पढ़ने-पढ़ाने वाले कुछ एक हुये किन्तु वास्तविक फल मुझे ही मिला। इस वेद ने मुझे भारत के कोने-कोने के विद्वान् एवं धनी मानी राजा महाराजाओं से मिलाया है।

जीवन सुख एवं दुःख को भोगने के लिए है। तदनुसार आपके ऊपर भी समय-समय पर अनेक संकट आए किन्तु आपने उसका धैर्य से सामना किया। १९३९ के लग-भग आपको जामात् शोक पश्चात् असामान्य पुत्र एवं धनशोक हुआ था।

१९५० में द्वितीय पत्नी सौ० सीता बाई भी दिवंगत हुई जिसके साथ अग्निहोत्र भी शान्त हुआ। सौ० सीता बाई बड़ी शीलवती, उपकारी अग्नि-होत्रादि कार्यों में दक्ष एवं दिव्यज्ञान संपन्ना थीं।

आपको लिखने लिखाने का शौक न था तथापि आपके एक भक्त ने आपकी आड़ में छिपकर आपके मन्तव्यों एवं विचारों को लिखा था जिसे जानकर आप अत्यन्त नाराज हुए थे तथा कहा इसे मेरे सामने प्रकाशित न करो मेरे पश्चात् यह अवश्य काम में आएगा। केवल श्री आदित्य नाथ झा महोदय के कहने पर उन्होंने दो लेख लिखे थे जो प्रकाशित हैं।

आज काशी में अथर्ववेद की प्रायः आप ही की शिष्य परम्परा कायम है।

स्वभाव

वेदमूर्ति श्री रामचन्द्रशास्त्री रटाटे विनोदप्रिय, रसिक, सत्य के पुजारी, वास्तविकता के पोषक, चापलूसी के विरोधी तथा स्पष्टवक्ता थे। समाचारपत्र पढ़ने का आपको काफी शौक था। जब तक आपका शरीर चलता रहा तब तक आप कभी एक क्षण के लिए भी खाली न बैठे थे। आप स्वभाव के बड़े खरे थें इसीलिए साधारण प्रकृति के लोगों से आपसे पटती न थी, फिर भी वे उनके ऊपर कितनी ही मुसीबतें आईं लेकिन प्रत्येक मुसीबत का उन्होंने दृढ़ता के साथ मुकाबला किया। ऐसी मुसीबतों में भी यदि कोई याचक बनकर उनके द्वार पर खड़ा हो जाता तो उसे भी वे वापस न करते थे।

वेदमूर्ति अपनी सरल और सत्य वृत्ति के पीछे प्रापंचिकों से अक्सर छले गये। उन्हें दुनियादारी मालूम न थी। छल प्रपंचों की इस दुनियाँ में उन्होंने अपना लाभांश खोया। वे कहा करते थे—विद्वान् के प्रति कपटी होने की बात सोची भी नहीं जा सकती। वेदमूर्ति का स्वभाव था, किसी भी लाभादि कार्य में अपने पुत्रों को आगे न कर दूसरों को भेजते थे जिससे लोकपवाद न हो। आपकी सिधाई एवं विरक्ति के कारण आपकी सन्तानों की बड़ी दुर्दशा रही है। वे आपके द्रव्यादि का कोई उपयोग न कर सके। संकोच और गरीबी के फलस्वरूप तीव्र बुद्धि होने पर भी उन लोगों ने कुशल अध्ययन किया फिर भी आपके पुत्र अत्यधिक प्रमाणिक निर्लोभी एवं सीधे-सादे हैं। इनके अन्दर अपनी संस्कृति एवं राष्टीयता के प्रति श्रद्धा है।

गु० व० बालशास्त्री बापट वे० मू० रामचन्द्रशास्त्रिणौ
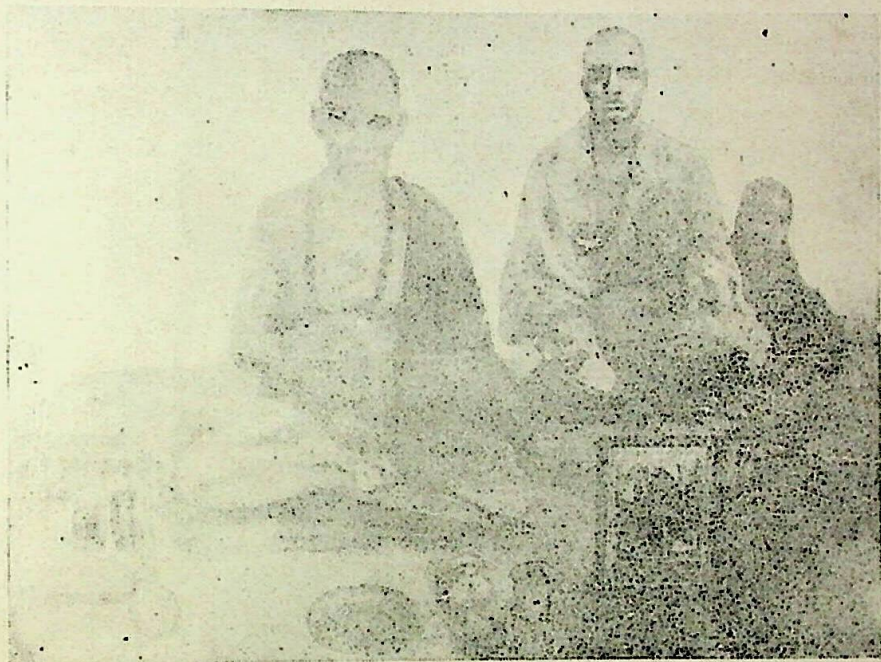
सामगानेषु दीक्षायां आसन् ये सुनिदेशकाः ।
तैःसाकं समुपस्थाय द्योतते शक्तिसाधकः ।।

वे० मू० रामचन्द्रशास्त्री म० म० पं० नित्यानन्द पर्वतीयश्च
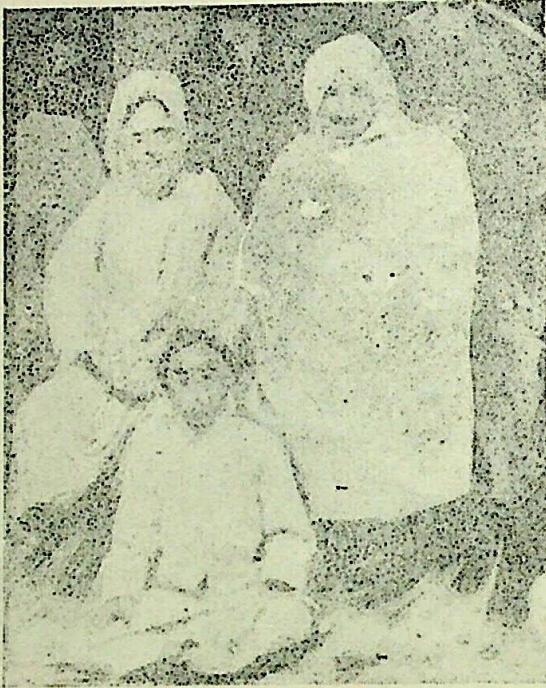
नित्यानन्दाः सुसिद्धान्ताः पर्वतीयाः बुधोत्तमाः ।
तेषां समुपदेशेन रामोऽभूत् समितिंजयः ॥

अन्तिम अवस्था :—

अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में वेदमूर्ति काफी दुर्बल हो चले थे। सन् १९५८ में आपने विद्यालय से अवकाश ग्रहण करना चाहा। संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा आपको सम्मानित प्राध्यापक की पदवी दी गई।

सम्वत् २०२३ के नवरात्र में आपकी तबियत खराब हो चली। कुछ दिन पूर्व ही नूतन बालक गणेशोत्सव संस्थान की ओर से आपका सत्कार किया गया। रुग्णावस्था में आप वहाँ गये। आपने अपनी मृत्यु की घोषणा ६ माह पूर्व ही कर दी थी। यही नहीं मृत्यु की तिथि एवं समय तक की घोषणा आप कर चुके थे।

इस प्रकार ९२ वर्ष के अथक परिश्रम से चूर सम्वत् २०२३ की आश्विन शुक्ला द्वादशी (विजयादशमी के तीसरे दिन) इस पाञ्चभौतिक शरीर को सदा-सर्वदा के लिए त्याग कर चिरनिद्रा में सो गये। आपकी मृत्यु के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है—आपके दादा, पिता और स्वयं आप इसी तिथि को एकादशी व्रत रहने के बाद द्वादशी को परब्रह्म में लीन हुये थे।

वेदमूर्त्ति रामचन्द्रशास्त्री रटाटे आज हमारे बीच नहीं है। लेकिन "कीर्तिर्यस्य स जीवति" के अनुसार वे आज भी जीवित हैं और उन सबके लिए प्रच्छन्न रूप से प्रेरणा स्रोत बने हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनके सम्पर्क में आये। अन्त में मैं इन्हीं शब्दों के साथ उस परम-पावन आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धा के इन नगण्य पुष्पों को अर्पित करता हूँ और जो कुछ उस व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिख गया है उसकी योग्यता न होते हुए भी महापुरुष के प्रच्छन्न आशीर्वाद एवं अदृश्य प्रेरणा से ही सम्भव हो सका है।

विश्व परमेश्वर का रूप

ले०—पण्डित, श्री० दा० सातवलेकर

स्वाध्याय मण्डल पारडी

वलसाड़ (गुजरात)

पृथ्वीपर विचारों का शासन

"धियो विश्वा विराजति" यह ऋग्वेद का वचन है।

अंग्रेजी में भी कहावत है—Ideas rule the world. पृथ्वीपर विचारों का शासन ही चलता है। मनु ने भी कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

अर्थात् मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। इसलिए मन और बुद्धि को तेजस्वी बनाना चाहिए। मन और बुद्धि में यदि एकबार मालिन्य समा जाए तो मनुष्य की उन्नति कठिन हो जाती है। मन और बुद्धि विचार, कल्पना और निश्चय के अधिष्ठान हैं। मन यदि शुद्ध हो तो हजार विघ्नों को भी दूर करके मनुष्य की उन्नति की जा सकती है। इतना महत्त्व विचारों का होता है। इसीलिए विश्व की तरफ वैदिकदृष्टिकोण से देखना चाहिए।

सन्तों में निराशावाद

सभी महाराष्ट्रीय सन्तों में केवल समर्थ रामदास ही विचारों की दृष्टि से उच्च वैदिक धर्मी थे। उनके उपास्य देव धनुर्धारी राम और वायुपुत्र हनूमान् थे। राम एक वैदिक आदर्श पुरुष हैं। समर्थ को कमरपर हाँथ धरे रखुमारमण निष्क्रिय विठोबा की जरूरत नहीं थी। अपितु इन्हें ३३ करोड़ देवों को रावण के कैदखाने से छुड़ाकर अयोध्या को स्वर्गधाम बनाने वाले तथा युद्ध के लिए हमेशा सन्नद्ध रहनेवाले धनुर्धारी वैदिक धर्म के आदर्शभूत राम की ही जरूरत थी।

पर इन समर्थ को भी गर्भवास हेय प्रतीत होता था। अपने दासबोध में इन्होंने गर्भवास का जो वर्णन किया है वह अशास्त्रीय और असत्य तो है ही, साथ ही घृणोत्पादक, वैदिक विचारधारा से बहुत दूर और बौद्धविचारों के बिल्कुल नजदीक है।

गर्भाशय की व्यवस्था कितनी उत्तम होती है, यह जानने योग्य बात है। परमेश्वर का पुत्र जहाँ रहेगा, वहाँ मलमूत्र कहाँ से रह सकेगा? अन्न का विशुद्ध

रस ही बालक को प्राप्त हो सके, ऐसी व्यवस्था गर्भाशय में रहती है। जिस जगह परमेश्वरका अंश ३३ करोड़ देवताओं के साथ ९ मास तक रहता है, उस जगह के पावित्र्य का वर्णन कौन कर सकता है ? पर उसी स्थान की ये सन्त निन्दा करते हैं।

समर्थने भी जब इस गर्भवास का ऐसा वर्णन किया है, तो फिर अन्य सन्तोंके बारेमें कहना ही क्या ? इस प्रकार प्रायः सभी सन्त बौद्धविचारों से ग्रस्त है।

सन्तों का आन्दोलन

आज कई लोग यह समझते हैं कि सन्तोंने महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करने के कार्य में बहुत मदद की है। इन सन्तोंने ३०० वर्षों तक अपनी बुद्धि के अनुसार काम किया। पर महाराष्ट्र जैसे वीर भूभाग को आवृत करने के लिए ३०० वर्ष लगाने की क्या आवश्यकता थी ? राष्ट्रीय आन्दोलन ५०–६० वर्षों में ही यशस्वी होना चाहिए, तभी उसे हम क्रान्ति कह सकते हैं। जिसे ३०० वर्षोंतक घसीटते रहना पड़े, उसे हम राजनैतिक आन्दोलन नहीं कह सकते। इस विलम्ब का मुख्य कारण यही था कि इन सन्तोंने यह समझ लिया कि यह संसार तो दुःखमय है, अतः इस पर चाहे यवन राज्य करें या हिन्दू, हमें क्या मतलब ? इन विचारों से ग्रस्त संतों में फिर क्रान्ति हो भी तो किस तरह ?

विश्वरूप परमेश्वर

आर्य धर्म के अनुसार यह विश्व परमेश्वर का रूप है। "एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च" सब भूतान्तरात्मा प्रत्येक रूप में तद्रूप होकर रह रहा है, साथ ही वह उस रूप के बाहर भी है। यह भूतान्तरात्मा एक है और आदर्शरूप है। यह अन्तरात्मा एक होने के कारण आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वत्र एकात्मता है। इस आध्यात्मिक एकता को व्यवहार में भी लाने की जरूरत है।

वैदिकधर्मानुयायियों के सामने विश्वरूप ईश्वर सदा खड़ा रहता है। वह हमेशा ईश्वर के समक्ष रहता है और ईश्वर भी उसके अन्दर रहता है। आगे-पीछे, उपर-नीचे सर्वत्र ईश्वर है, वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, इस लिए उससे छिपकर कोई कुकर्म नहीं कर सकता। सूर्य और चन्द्र दोनों पहरेदार या उस ईश्वर की आँखें हैं। दूसरे देव भी उसके शरीर हैं, उसी में मैं भी हूँ—यह अनन्य भावना उनके जीवन में थी। इस प्रत्यक्ष ईश्वर की सेवा वे करते थे। कहीं भी वे जाएँ, कहीं अपने चारों ओर वे विश्वरूपी ईश्वर का ही दर्शन किया करते थे। इस प्रकार जो सर्वत्र ईश्वर का दर्शन करेगा, वह कुकर्म किस प्रकार करेगा ? इस लिए वैदिक ऋषि उत्तम और अनुशासनबद्ध आचरण करते थे और हमेशा प्रगति करते थे।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ईश्वर की सिद्धि किस आधार पर मानी

जाए ? इस प्रश्न का उत्तर यहाँ देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वैदिक ऋषियों ने ईश्वर का साक्षात्कार किया हो अथवा न किया हो; ईश्वर का अस्तित्व हो या न हो, वैदिक ऋषियों द्वारा प्रतिपादित ईश्वर का स्वरूप काल्पनिक हो या सत्य हो, पर यदि हम उस ईश्वर को आदर्श मानकर चलें, तो वह हमारा योग्य मार्गदर्शन कर सकता है या नहीं, बस, इतने ही प्रश्न पर हम विचार करेंगे।

ईश्वर एक आदर्श पुरुष

ईश्वर समर्थ, सर्वज्ञ, सर्वनियामक, न्यायकारी, दुष्टों को मारने वाला, सज्जनोंको तारने वाला, सबका मार्गदर्शक और इस विश्व का स्वामी है। नर नारायण होने वाला है। प्रत्येक नर में नारायण का अंश हैं। यहाँ ईश्वर को अपना आदर्श माना है। ईश्वर के समान नर होना चाहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक आर्यों के आगे मनुष्य को समर्थ, ज्ञानी नियामक, न्यायपूर्वक व्यवहार करने वाला, दुष्टों का शासक, सज्जनों का सहायक और मार्गदर्शक बनाने का एक क्रम था। ईश्वर का अस्तित्व हो न हो, पर जो ईश्वर पर विश्वास रखकर अपने आपको उस जैसा बनाने का प्रयत्न करेंगे, उनकी उन्नति तो निश्चित ही है।

वैदिक ऋषियों का ईश्वर विश्वरूप था, इसलिए उसके अस्तित्व के विषय में उन्हें शंका ही नहीं थी। पर थोड़ी देर के लिए ईश्वर का अस्तित्व यदि कवि-कल्पना ही मान लें, तो भी उस कवि-कल्पना के द्वारा उन्होंने जो आदर्श मनुष्यों के सामने रखा, वह एक सर्वोत्तम आदर्श था, इसमें कोई शंका नहीं। काल्पनिक आदर्श भी यदि प्रभावशाली हो, तो उसे मानने वाले के जीवन पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

वैदिक ईश्वर निष्पक्षपाती

वैदिक धर्मियों का ईश्वर तो (यथा कर्म यथा श्रुतं) प्रत्येक को उसके कर्म और ज्ञान के अनुसार ही फल देता है। उसमें वह कुछ ढील ढाल नहीं करता। यह निष्पक्षपातता का आदर्श है।

वैदिक धर्मी स्वयं को परमेश्वर का 'अमृतपुत्र' समझते हैं और माता, पिता, गुरु, बन्धु और मित्र के नाते उससे अपनत्व भी रखते हैं। जितने निकट के नाते से पुत्र अपने मां बाप की गोदी में बैठ सकता है, उतने ही अपनत्व के नाते वैदिक आर्य ईश्वर से व्यवहार करते हैं।

ईसाई और मुसलमान यह नहीं कर सकते। क्योंकि उनके मतके अनुसार ईश्वर के प्रतिनिधियों की सिफारिश के अभाव में सत्पुरुष भी नरकाग्नि में भुने जाते रहेंगे। पर एक आर्य ईश्वर के सामने खड़े होकर उससे पूछ सकता है कि जब मैंने

कोई भी कुकर्म नहीं किया, तो फिर मुझे दण्ड किस बातका दिया जा रहा है। भले ही ईश्वर समर्थ और सर्व शक्तिमान् है, फिर भी वह, जिन कामों को हमने किया नहीं है, उनका फल हमें नहीं दे सकता। मुसलमानों की तरह यहाँ "देवकी कोई कड़छुल" नहीं है। हमारी व्यक्तिगत या सामुदायिक उन्नति या अवनति होगी। कर्म का सिद्धान्त निश्चित करते समय वैदिक आर्यों ने ईश्वर की भी परवाह नहीं की। आर्यों की यह बौद्धिक स्वतंत्रता है, "खुदा की मर्जी" के लिए यहाँ कोई जगह नहीं।

वैदिक आर्यों में अपने सम्बन्ध में भी निश्चितता और स्पष्टता है, उनका ध्येय है, ईश्वर जिस प्रकार आनन्दस्वरूप है, सामर्थ्यवान् है, नियंता है, पालक, पोषक और रक्षक है, न्यायी है उसी प्रकार मैं भी बनूँगा। मैं आज नर हूँ पर साधना करके नारायण बनूँगा, मैं आज जीव स्थिति में हूँ, तो थोड़े समय बाद मैं ब्राह्मी स्थिति में पहुंच जाऊँगा। यहाँ प्रतिनिधि की सिफारिश की जरूरत नहीं होती। कर्म तथा ज्ञानानुसार ही यहाँ प्राप्ति होती है।

ब्राह्मी स्थिति के प्राप्त होते ही या कहूँ कि नर का नारायण, जीवका शिव और बद्ध से मुक्त होते ही उसमें ईश्वर के गुण दिखने लगते हैं। वैदिक आर्यों को पूरा विश्वास था कि शिव की स्थिति में भी ईश्वरीय गुण आ ही जाते हैं। मुसलमान, ईसाई आदि आस्तिकों तथा बौद्ध, जैन आदि नास्तिकों में इस प्रकार का आत्मविश्वास असंभव है।

ईश्वर पर विश्वास भारतीयसंस्कृति की आधारशिला है। यह ईश्वर वैदिक आर्यों के लिए वैयक्तिक, सांघिक, राष्ट्रीय और जागतिक कर्तव्यों के लिए आदर्शरूप है।

भारतीय संस्कृति : वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि

लेखक : विद्यामार्तण्ड डा० मङ्गलदेव शास्त्री, पूर्व—उपकुलपति,
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय।

भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक धारा के बहुमुखी, व्यापक तथा शाश्वतिक प्रभाव की चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं।

उक्त बहुमुखी, व्यापक तथा शाश्वतिक प्रभाव का मूल वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि में ही हो सकता है। इस लेख में हम उसी व्यापक दृष्टि को संक्षेप में दिखलाना चाहते हैं।

परम्परा-प्राप्त भारतीय दृष्टि : प्राचीन भारतीय वाङ्मय में वेदों की महिमा अनेक प्रकार से गायी गयी है। उदाहरणार्थ, मनुस्मृति के निम्ननिर्दिष्ट वचनों को देखिए—

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥ (१२।८८)
पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥ (१२।९४)
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥ (१२।९७)
सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ (१२।१००)

अर्थात्, वैदिक धर्माचरण से मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस अथवा लौकिक स्वास्थ्य, सुख और आध्यात्मिक कल्याण (उत्तरकालीन शब्दों में, भुक्ति और मुक्ति) दोनों की प्राप्ति कर सकता है[1] ॥ ८८ ॥ पितृ-कर्म, देव-कर्म और मनुष्यों के प्रति कर्तव्य कर्मों के विषय में वेद सनातन काल से बराबर मार्ग-दर्शक रहा है। वेद को न तो कोई (एक व्यक्ति) बना सकता है, न पूर्णतः जान सकता है ॥ ९४ ॥ ब्राह्मण आदि चारों वर्ण, पृथ्वी आदि तीनों लोक तथा ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम, इनका आधार वेद ही है। तथा भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में वेद मनुष्य-जीवन के लिए प्रेरणा देने वाला है[2] ॥ ९७ ॥ वेदज विद्वान् में सेनापतित्व, राज्य-शासन, दण्डाधिकारित्व अथवा समस्त पृथ्वी का नेतृत्व जैसे दुष्कर कार्यों के भार को उठाने की क्षमता होती है ॥ १०० ॥

---

१. तु० "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" (वैशेषिक सूत्र १।१।२)।
२. तु० "तया (=श्रुत्या) वर्णाश्रमाचारः प्रवृत्तो वेदवित्तमाः!" (सूतसंहिता १।१।४९)।

इसीलिए वेद को अत्यन्त व्यापक अर्थों में धर्म का एकमात्र मूल माना गया है। जैसे—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनुस्मृति २।६)

अर्थात् धर्माचरण का मूल आधार वेद ही है।

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ (मनु० २।७)

अर्थात् मनु ने जिस धर्म का प्रतिपादन (मनुस्मृति में) किया है, वह सब वेद-मूलक है, क्योंकि वेद सर्व-ज्ञानमय है। धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। (मनु० २।१३) अर्थात्, जो धर्म को जानना चाहते हैं उनके लिए वेद ही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। क्योंकि,

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥ (मनु० २।१०)

अर्थात्, श्रुति (=वेद) और तदनुसारिणी स्मृति (=धर्म-शास्त्र) से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। इनके प्रतिपाद्य विषय में कुतर्कणा नहीं करनी चाहिए।

ऊपर के वचनों का अभिप्राय यही है कि अवस्था, अधिकार, स्थान, संबंध आदि के भेद से मनुष्य के जीवन में विभिन्न प्रसंग उपस्थित होते हैं, उन सब की दृष्टि से मार्गप्रदर्शन की क्षमता का होना, वैदिक धारा की मुख्य विशेषता सदा से रही है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य-जीवन के कर्तव्यों के विषय में वैदिक धारा का दृष्टि-कोण, एकांगी या एकदेशी न हो कर, सदा से व्यापक रहा है। इसीलिए विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह, लुप्त या नष्ट न हो कर, अपने को अब तक जीवित रख सकी है। यही उसके भारतीय संस्कृति के विकास में व्यापक तथा शाश्वतिक प्रभाव का रहस्य है।

उपर्युक्त वचनों में 'वेद' और 'स्मृति' से स्पष्टतः अभिप्राय वैदिक धारा के ब्राह्मण आदि समस्त वाङ्मय से है। वैदिकों की परिभाषा[1] के अनुसार वेद के मंत्र-भाग और ब्राह्मण-भाग, दोनों के लिए 'वेद' शब्द का प्रयोग चिरकाल से भारतीय साहित्यिक परंपरा में चला आया है। 'स्मृति' या धर्मशास्त्र' नाम से आज-कल प्रसिद्ध ग्रन्थों का निर्माण भी वैदिक धर्म-सूत्रों के आधार पर ही हुआ था।

हमारी दृष्टि : ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट हो गया होगा कि वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि के विषय में परंपरागत प्राचीन दृष्टि और हमारी अपनी दृष्टि में

१. देखिए—"मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (आपस्तम्बयज्ञपरिभाषासूत्र ३१)।

वास्तव में कोई गहरा भेद नहीं है। कार्यतः दोनों का अभिप्राय एक जैसा ही है। जो थोड़ा-सा भेद है,वह वही है जो किसी भी विषय में साम्प्रदायिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों में होना स्वाभाविक है।

परंपरागत प्राचीन दृष्टि के अनुसार वेद स्वयं अपौरुषेय, अतएव अनादि और नित्य हैं; और इसीलिए वेद-मूलक धर्म भी सनातन तथा अपरिवर्तनशील है। उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के क्रमिक विकास और ह्रास के विचार के लिए कोई स्थान ही नहीं हो सकता।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार अन्य मानवीय संस्थाओं के सदृश ही[1] वैदिक विचार-धारा भी हमारे ऐतिहासिक अन्वेषण और गवेषणा का विषय है। वैदिक वाङ्मय के सदृश ही, वैदिक विचार-धारा का भी विभिन्न परिस्थितियों के कारण क्रमिक विकास हुआ था।

भारतीय संस्कृति के उस प्राचीनकाल में वैदिक धारा की भव्य उदात्त भावनाएँ और मनुष्य-जीवन के कर्त्तव्यों के विषय में उसकी व्यापक दृष्टि वास्तव में एक महान् आश्चर्य और विस्मय की वस्तु है। पृथ्वी भर की सभ्यता के इतिहास में वह अद्वितीय और अनुपम है। उसको देखकर सहसा भगवद्गीता का यह पद्य सामने उपस्थित हो जाता है—

> आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
> आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ (गीता २।२९)

इसमें सन्देह नहीं कि उत्तरकाल को विभिन्न धाराओं से भी भारतीय संस्कृति का समय-समय पर महान् उपकार हुआ है; तो भी मानवीय जीवन के लिए उपयोगी महान् प्रेरणाओं और आदर्शों की दृष्टि से, तथा विभिन्न परिस्थितियों में आदर्शवाद की रक्षा के साथ-साथ आत्म-रक्षा तथा लौकिक अभ्युदय की सफलता की दृष्टि से वैदिक-धारा की व्यापक दृष्टि न केवल हम भारतीयों के लिए सदा गर्व और गौरव की वस्तु रहेगी, अपि तु मानव जाति के लिए भी सार्वभौम तथा सार्वकालिक संदेश की वाहक रहेगी।

उसी व्यापक दृष्टि को यहाँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को लेकर क्रमशः दिखाने का यत्न हम यहाँ करेंगे—

धार्मिक चिन्तन : वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि का सबसे उत्कृष्ट और आश्चर्यकारक उदाहरण उसके धार्मिक चिन्तन का विश्व-व्यापी आधार है।

---

१. तु०—"यद्यपि लौकिकं वस्तु संस्था आचार पद्धतिः। भावैः संप्रेरितस्यैव मानवस्येह सा कृतिः॥ (रश्मिमाला २८।२)

छोटे-छोटे देश जाति या वर्ग के संकीर्ण हित में ही आस्था रखने वाले आज के सभ्यताभिमानी मानव को वैदिक धारा की विश्व-व्यापिनी दृष्टि आश्चर्य में डाले बिना नहीं रह सकती।

द्युलोक को पिता, और पृथिवी को माता[1] समझने वाला वैदिक स्तोता अपने को मानो इस विशाल विश्व का ही अधिवासी समझता है। इसीलिए उसकी स्तुतियों और प्रार्थनाओं में बार-बार न केवल द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष, इन तीन लोकों का ही, अपितु इनसे भी परे स्वर और नाक जैसे लोकों का भी उल्लेख पाया जाता है। उदाहरणार्थ,

> येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
> यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (ऋ० १०।१२१।५)

अर्थात्, जिस दैवी शक्ति ने इस विशाल द्युलोक को, इस पृथिवी को, स्वर्लोक और नाक-लोक को अपने-अपने स्वरूप में स्थिर कर रखा है और जो अन्तरिक्ष-लोक में भी व्याप्त हो रही है उसको छोड़ कर हम किस देव की पूजा करें? अर्थात्, हमको उसी महाशक्ति-रूपिणी देवता की पूजा करनी चाहिए।

वैदिक प्रार्थनाओं का क्षेत्र कितना विस्तृत और विशाल है, इसका ही एक दूसरा उदाहरण यह है—

> द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
> वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्ति–
> रेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ (यजु० ३६।१७)

अर्थात्, मेरे लिए द्युलोक, अन्तरिक्ष-लोक और पृथिवी लोक सुख-शान्ति-दायक हों; जल, औषधियाँ और वनस्पतियाँ शान्ति देने वाली हों, समस्त देवता, ब्रह्म और सब कुछ शान्तिप्रद हों। जो शान्ति विश्व में सर्वत्र फैली हुई है, वह मुझे प्राप्त हो। मैं बराबर शान्ति का अनुभव करूँ[2]।

कैसी दिव्य और विशाल दृष्टि है इन प्रार्थनाओं की। इनसे अधिक सार्वभौम और सार्वकालिक प्रार्थनाएँ और क्या हो सकती है? वेद में तो ऐसी ही प्रार्थनाएँ ओत-प्रोत हैं।

यह भी ध्यान देने की बात है कि वैदिक देवताओं का वर्गीकरण भी पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन लोकों के आधार पर ही किया गया है जैसा कि हम पहले ('कल्पना', जनवरी १९५४, पृ० ५६) दिखला चुके हैं। विश्वव्यापिनी दैवी शक्ति की मानो पदे-पदे साक्षात् अनुभूति करने वाली वैदिक धारा के इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उसके देवताओं का कार्य क्षेत्र भी विश्वव्यापी हो।

---

१. तु०—"द्यौर्मे पिता जनिता....मे माता पृथिवी महीयम्" (ऋग् १।१६४।३३)।
२. तु०—"येयं शान्तिकला दिव्या लोकानां शान्तिदायिनी। चन्द्रेऽपि चारुतां धत्ते सा मे नित्यं प्रकाशताम्॥ (रश्मिमाला ३५।१)।

१५

उपर्युक्त अत्यन्त विशाल धार्मिक चिन्तन के आधार पर स्थित वैदिक धारा के समस्त अंगों में व्यापक दृष्टि का होना स्वभाव-सिद्ध है, जैसा कि हम आगे स्पष्ट करेंगे।

वैदिक-धारा का मानवीय पक्ष : विश्व-शान्ति और विश्व-बंधुत्व की उदात्त भावनाओं से ओत-प्रोत वैदिक मंत्रों में मानवमात्र में परस्पर सौहार्द, मित्रता और साहाय्य की भावना का पाया जाना नितरां स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ,

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (यजु० ३६।१८)

अर्थात्, मैं, मनुष्य क्या, सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः। (ऋग्० ६।७५।१४)

अर्थात्, एक दूसरे की सर्वथा रक्षा और सहायता करना मनुष्यों का मुख्य कर्तव्य है।

यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि। (अथर्व० १७।१।७)

अर्थात्, भगवन्! ऐसी कृपा कीजिए जिससे मैं मनुष्यमात्र के प्रति, चाहे मैं उनको जानता हूँ अथवा नहीं, सद्भावना रख सकूँ!

तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः। (अथर्व० ३।३०।४)

अर्थात्, आओ हम सब मिल कर ऐसी प्रार्थना करें, जिससे मनुष्यों में परस्पर सुमति और सद्भावना का विस्तार हो!

इस प्रकार मनुष्यमात्र के प्रति कल्याण-कामना, सद्भावना तथा सौहार्द के प्रतिपादक सैकड़ों मन्त्र वेदों में पाये जाते हैं।

मनुष्यमात्र में सद्भावना और सौहार्द का हृदयाकर्षक उपदेश देने वाले अथर्ववेद तथा ऋग्वेद के सांमनस्यसूक्त[1] कदाचित् संसार के संपूर्ण वाङ्मय में अपनी उपमा नहीं रखते।

आदर्श-रक्षा तथा आत्म रक्षा : उपर्युक्त उत्कृष्ट मानवीय पक्ष के साथ-साथ वैदिक धारा उदात्त आदर्शों की रक्षा तथा आत्म-रक्षा के लिए वीरोचित संघर्ष तथा युद्ध की आवश्यकता से भी अपरिचित नहीं है। "सत्यं वै देवाः अनृतं मनुष्याः" (अर्थात्, देवता वास्तविकता के अनुगामी होते हैं, पर मनुष्य स्वभाव से ही इसके प्रतिकूल होते हैं) इस वैदिक उक्ति के अनुसार मनुष्य का व्यवहार आदर्शवाद से प्रायः दूर ही रहता है। ऐसी परिस्थिति में, विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व के मार्ग पर चलने वाले को भी, अपने उत्कृष्ट आदर्शों की रक्षा के लिए अथवा आत्म-रक्षा के

---

१. देखिए अथर्ववेद ३।३०, ६।६४, ७४, ९४ आदि (ऋग्वेद १०।१९१)

ही लिए, प्रायः संघर्ष का, अपने शत्रुओं और विरोधियों के दमन का, यहाँ तक कि घोर युद्ध के मार्ग का भी अवलम्बन करना पड़ता है।

इस अपूर्ण जगत् का यह अप्रिय तथ्य वैदिक धारा से छिपा हुआ नहीं है। इसलिए मन्त्रों में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

मा त्वा परिपन्थिनो विदन् (यजु० ४।३४)

अर्थात्, इस बात का ध्यान रखो कि तुम्हारी वास्तविक उन्नति के बाधक शत्रु तुम पर विजय प्राप्त न कर सकें।

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। (अथर्व० ३।२७।१–६)

अर्थात्, जो निष्कारण हमसे द्वेष करता है, और इसी कारण जिसको हम अपना द्वेष्य समझते हैं, उसे हम सदा विश्व का कल्याण करने वाली दैवी शक्तियों को सौंपते हैं, जिससे वे उसको नष्ट कर दें।

इसी प्रकार आत्म-रक्षा और आदर्श-रक्षा की भावना से परिपूर्ण सहस्रों मन्त्र[1] वेदों में पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ,

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥ (अथर्व० ७।९३)

अर्थात्, सत्कार्यों में बाधक जो शत्रु हम पर आघात करें हमको चाहिए कि वीरोचित क्रोध और पराक्रम के साथ हम उनका दमन करें और उनको विनष्ट कर दें।

अहमस्मि सपत्नहा इन्द्र इवारिष्टो अक्षतः।
अध सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥ (ऋग्० १०।१६६।२)

अर्थात्, मैं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला हूँ। मैं इन्द्र के समान पराक्रमी हूँ। मुझे कोई हानि अथवा आघात नहीं पहुँचा सकता। मैं तो अनुभव करता हूँ कि मेरे सब शत्रु मेरे पैरों-तले पड़े हुए हैं[2]!

मन्त्रों में शत्रुओं के लिए प्रायः 'अव्रत' (=असंयत जीवन व्यतीत करने वाले) अथवा 'वृत्र' (=सत्कार्यों में बाधा डालने वाले) जैसे शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट है कि वैदिक मन्त्रों में आदर्श-रक्षा की भावना ही शत्रुओं के संहार की भावना की प्रेरक थी।

---

१. तु०—"इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रम् घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः।
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजावयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥
(ऋग्० १।८।३–४)

२. तु०—"ऋषभं मा समानानां सपत्नानां भयंकरम्।
हन्तारं कुरु शत्रूणां देवि! दारिद्र्यनाशिनी ॥ (रश्मि-माला ५।५)

मम पुत्राः शत्रुहणः (ऋग्० १०।१५९।३)

अर्थात्, मेरे पुत्र शत्रु का हनन करने वाले हों !

सुवीरासो वयं जयेम (ऋग्० ९।६१।२३)

अर्थात्, हमारे पुत्र सुवीर हों और उनके साथ हम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें !

ऐसी प्रार्थनाएँ और अनेकानेक ऐसे सूक्त[1] जो न केवल अर्थ की दृष्टि से ही, किन्तु सुनने में भी, युद्ध-गीत और युद्ध-क्षेत्र में वीरों के आह्वान जैसे प्रतीत होते हैं, वैदिक धारा की वीरोचित भावना के सुन्दर और हृदयस्पर्शी निदर्शन हैं।

उनसे यह भी स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि स्वभावतः विश्व-शान्ति और विश्वबन्धुत्व को चाहने वाली वैदिक धारा का दृष्टिकोण एकांगी न होकर व्यापक ही है। वह कोरे आदर्शों की ही प्रतिपादक नहीं है, अपितु मनुष्य-जीवन की पूरी परिस्थिति को समझ कर चलती है।

वैदिक धारा का सामाजिक जीवन : 'सामाजिक जीवन' का विचार अत्यन्त व्यापक है। अनेक दृष्टियों से सामाजिक जीवन का वर्णन किया जा सकता है। स्पष्टतः इस छोटे से लेख में यह संभव नहीं है। इसलिए यहाँ हम कुछ प्रमुख बातों को ही लेकर सामाजिक जीवन के क्षेत्र में वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि को दिखाना चाहते हैं। सबसे पहले हम समष्टि-भावना को लेते हैं।

समष्टि-भावनाः—समष्टि-भावना को हम सामाजिक जीवन का प्राण अथवा मौलिक सिद्धान्त कह सकते हैं। समष्टि भावना का अर्थ है 'दूसरों के साथ में ही अपने हित के संपादन की भावना'।

यह कौन नहीं जानता कि वर्तमान हिन्दू-धर्म में उसका केन्द्र-विन्दु चिरकाल से बहुत कुछ व्यक्ति-परक रहा है। मनुष्य, समाज से दूर भाग कर केवल अपनी ही भलाई को धर्म के क्षेत्र में भी सोचता है। यह प्रवृत्ति कब से और किन कारणों से हिन्दुओं में चल पड़ी इसका विचार हम यहाँ नहीं करेंगे। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि वैराग्य, संन्यास और मुक्ति की भावनाओं से इसको बल अवश्य मिला है।

इसके विरुद्ध यह देख कर आश्चर्य होता है कि वैदिक प्रार्थनाओं की जिनसे वेद भरे पड़े है सबसे पहली विशेषता उनकी समष्टि-भावना में है। इसलिए वे प्रायः बहुवचनों में ही होती है। उदाहरणार्थ,

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥ (यजु० ३०।३)

---

१. देखिए—ऋग्० १०।१०३।१०।११—उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि। उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः। अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु॥

अर्थात् हे देव सवितः ! हमारे लिए जो वास्तविक कल्याण है, उसे हम सब को प्राप्त कराइए।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ (यजु० ३०।३५)

अर्थात्, हम सब सवितृ-देव के उस प्रसिद्ध बरणीय तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं जो हम सब की बुद्धियों को प्रेरणा प्रदान करे।

इत्यादि[1] प्रार्थनाओं में बहुवचनों का ही प्रयोग किया गया है। स्वभावतः वैयक्तिक स्वार्थों में लिप्त मनुष्य के सामने समष्टि-भावना का यह आदर्श कितना महान् और आवश्यक है ! समाज की उन्नति और रक्षा के लिए यह समष्टि-भावना आवश्यक है यह सिद्ध करने की बात नहीं है। वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि का स्पष्टतः यह एक सुन्दर निदर्शन है।

इसके अतिरिक्त वेदों के सांमनस्य सूक्तों में भी जिनका उल्लेख हम अभी ऊपर कर चुके हैं स्पष्टतः इस सामाजिक उत्कृष्ट भावना (समष्टि-भावना) का सुन्दर उपदेश मिलता है। जैसे,

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानना उपासते ॥ (ऋग्० १०।१९१।२)

अर्थात्, हे मनुष्यो ! जैसे सनातन से विद्यमान, दिव्य शक्तियों से संपन्न, सूर्य, चन्द्र वायु, अग्नि आदि देव परस्पर अविरोध भाव से, मानो प्रेम से अपने-अपने कार्य को करते हैं, ऐसे ही तुम भी समष्टि-भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त होओ ऐकमत्य से रहो और परस्पर सद्भाव से बरतो।

यही नहीं, वेदमन्त्रों में तो समष्टि-भावना के व्यावहारिक प्रतीक सह-भोज तथा सह पान तक का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जैसे—

सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे (यजु० १८।९)

अर्थात्, अपने साथियों के साथ सह-पान और सह-भोज मुझे प्राप्त हों।

चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था :—वैदिक धारा के सामाजिक जीवन के प्रसंग में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था के विषय में कुछ कहना अत्यन्त आवश्यक है। ऊपर मनुस्मृति के उद्धरणों में स्पष्टतः कहा गया है कि ब्राह्मण आदि चारों वर्णों का प्रारम्भ वेद से ही हुआ है।

वैदिक वाङ्मय का सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त ("सहस्रशीर्षः पुरुष" इत्यादि)

---

१. इसी प्रकार "संगच्छध्वं संवदध्वं.... (ऋग्० १०।१९१।२) "अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्..." (यजु० ४०।१६) "भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा..." (यजु० २५।२१) इत्यादि सहस्रों मन्त्रों में बहुवचनों में प्रार्थनाएँ पायी जाती है।

स्पष्टतया वैदिक धारा के उसी तृतीय काल की रचना है। थोड़े बहुत भेद से यह चारो वेदों में आया है। इसी सूक्त में निम्न-लिखित मंत्र आता है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ (ऋग्० १०।९०।१२)

अर्थात्, ब्राह्मण इस विराट् पुरुष का मुख-स्थानीय है, क्षत्रिय बाहु-स्थानीय और वैश्य ऊरु-स्थानीय है। शूद्र मानो उसके पैरों से उत्पन्न हुआ है।

सब व्याख्याकारों और वैदिक आचार्यों के अनुसार निर्विवाद रूप से उक्त पुरुष-सूक्त में विश्वव्यापी विराट् पुरुष का बर्णन है। इस प्रसंग में उक्त मंत्र का वही अर्थ हो सकता है जो हमने ऊपर दिया है।

उक्त मंत्र स्पष्टतः आलंकारिक प्रक्रिया द्वारा ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में परस्पर अङ्गाङ्गि-भाव के संबंध को बतलाता है। अभिप्राय यह है कि जैसी किसी जीवित शरीर में मुख से लेकर पैर तक सब अंगों में परस्पर गहरा अङ्गाङ्गि-भाव का परस्पर आश्रयाश्रित-भाव का संबंध होता है वैसे ही समाज रूपी शरीर में चारों वर्णों का परस्पर गहरा संबंध है। शरीर में कोई दूसरे अंग की उपेक्षा नहीं करता, एक की पीडा में सब व्याकुल हो जाते हैं, कोई भी अंग अपने लिए नहीं अपितु दूसरे अंगों के हित में ही काम करता है। वास्तव में किसी भी समुन्नत समाज के विभिन्न अंगां के परस्पर संबंध के विषय में इससे अच्छा दृष्टान्त हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार उपर्युक्त मंत्र स्पष्टतया एक सभ्य और समुन्नत समाज के विभिन्न वर्गों को ब्राह्मण आदि चार भागों में बाँट कर उनमें परस्पर घनिष्ठ अङ्गाङ्गि-भाव के आदर्श संबंध का प्रतिपादन करता है। यह संबंध पारस्परिक सहयोग और सामंजस्य के आधार पर ही हो सकता है किंचित्मात्र भी संघर्ष की भावना उसको समूल नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। समाज का इस प्रकार का चित्रण हमारे मत में वैदिक धारा की व्यापक और वैज्ञानिक दृष्टि का एक परम उज्ज्वल निदर्शन है।

चारों वर्णों के परस्पर संबंध में यह आदर्श स्थिति वास्तव में कब और कितने काल तक रही यह कहना कठिन है। तो भी कम से कम आदर्श रूप में उसकी स्थिति में संदेह नहीं हो सकता। इसको पुष्टि उन मंत्रों से और भी होती है जिनमें स्पष्टतया समस्त समाज और शुद्रों सहित सब वर्णों के प्रति ममत्व-बुद्धि और हित-भावना का वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ,

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम्॥ (यजु० १८।४८)

अर्थात्, शोभा और दीप्ति के निधान भगवन्! आप हमारे ब्राह्मणों में दीप्ति को धारण कीजिए! हमारे क्षत्रियों को दीप्तिमान् कीजिए! हमारे वैश्यों और

शूद्रों को दीप्ति-युक्त कीजिए ! और इस प्रकार हमारे समाज में सब ओर दीप्ति के प्रसार द्वारा मुझे सदा दीप्तिमान् कीजिए !

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ (अथर्व १९।६२।१)

अर्थात्, भगवन् ! मुझे देवों में (=देवताओं में, अथवा विद्वानों में) प्रिय बनाइए ! मुझे क्षत्रियों में प्रिय बनाइए ! मुझे शूद्रों और वैश्यों में तथा अन्य सब प्राणियों का भी प्रिय बनाइए !

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च……॥ (यजु० २६।२)

अर्थात्, भगवन् ! मुझे ऐसा बनाइए कि मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अर्थात् सारी जनता के लिए कल्याण करने वाले ज्ञान का प्रचार और प्रसार कर सकूँ ।

कैसी सुन्दर और उदात्त भावना है इन वेद मंत्रों की ! किसी एक वर्ग के लिए नहीं, किन्तु संपूर्ण समाज और सारी जनता के प्रति । वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है ?

यह ठीक है कि यही चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था क्रमशः विकृत होती हुई देश के लिए अभिशापरूप हो गयी । उसने परस्पर अविश्वास, संघर्ष और विद्वेष का रूप धारण कर लिया । शूद्र के प्रति तो कठोर दृष्टि चरमसीमा तक पहुँच गयी । परन्तु यह कितने संतोष और आह्लादकर विस्मय का विषय है कि वेदमंत्रों में उस संकीर्ण-भावना का चिह्न भी नहीं है । चारों वेदों में शूद्र के प्रति अन्याय्य अथवा कठोर दृष्टि कहीं भी नहीं मिलेगी ! अपनी इन्हीं उदार और उदात्त भावनाओं के कारण वैदिक धारा हम भारतवासियों के लिए सदा से श्रद्धा और सम्मान की वस्तु रही है और आगे भी रहेगी ।

चातुराश्रम्य-व्यवस्थाः—लेख के आरम्भ में दिये गये मनुस्मृति के उद्धरणों के अनुसार, ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के समान, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चारों आश्रमों का प्रारम्भ भी वेद से ही हुआ है । यहाँ केवल इतना निर्देश कर देना पर्याप्त होगा कि जहाँ तक केवल वेद-मन्त्रों का संबंध है, हमें उनमें स्पष्ट रूप से चारों आश्रमों का उल्लेख अभी तक नहीं मिला है ।

ऐसा होने पर भी, ब्रह्मचर्य और गृहस्थ इन दो आश्रमों के संबंध में वेद-मन्त्रों में जो उत्कृष्ट और भव्य विचार प्रकट किये गये हैं, उनको हम बिना किसी अतिशयोक्ति के भारतीय संस्कृति की स्थायी अमूल्य संपत्ति कह सकते हैं ।

वेदों के अनेकानेक मन्त्रों में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ का बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ, अथर्ववेद के एक पूरे सूक्त (११।५) में ब्रह्मचर्य की महिमा का ही वर्णन है। जैसे—

ब्रह्मचारी ब्रह्म[1] भ्राजद् बिभर्त्ति।
तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः॥ (अथर्व० ११।५।२४)
ब्रह्मचारी ''श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्त्ति। (अथर्व० ११।५।४)
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ (अथर्व० ११।५।१७)

अर्थात्, ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करने वाला ही प्रकाशमान ज्ञान-विज्ञान को धारण करता है। उसमें मानो समस्त देवता वास करते हैं। ब्रह्मचारी श्रम और तप से युक्त जीवन द्वारा सारी जनता को पुष्टि प्रदान करता है। ब्रह्मचर्य के तप से ही राजा अपने राष्ट्र की रक्षा में समर्थ होता है। ब्रह्मचर्य द्वारा ही आचार्य शिष्यों के शिक्षण की योग्यता को अपने में संपादन करता है।

यहाँ स्पष्ट शब्दों में राष्ट्र की चतुरस्र उन्नति के लिए और मानव-जीवन के विभिन्न कर्तव्यों के सफलतापूर्वक निर्वाह के लिए श्रम और तपस्या द्वारा विद्या-प्राप्ति (=ब्रह्मचर्य) की अनिवार्य आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। मन्त्र में 'श्रम' और 'तपः' ये दो शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं। क्या आजकल की अत्यन्त कठिन शिक्षा-समस्या के लिए उनसे कोई प्रेरणा और संकेत नहीं मिल सकता? श्रम और तपस्या पर निर्भर ब्रह्मचर्य-आश्रम की उद्भावना वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि का निःसन्देह एक समुज्ज्वल प्रमाण है।

गृहस्थ-आश्रम के संबंध में सबसे उत्कृष्ट विचार हमें वेदों के विवाह-संबंधी सूक्तों[2] में तथा सांमनस्य-सूक्तों में मिलते हैं। विस्तार के भय से यहाँ केवल दो-चार उद्धरण देना पर्याप्त होगा।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं'''
मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः (ऋग्० १०।८५।३६)
समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। (ऋग्० १०।८५।४७)
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि। (ऋग्० १०।८५।२४)
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। (ऋग्० १०।८५।२७)

---

१. तु—सर्वेषामपि भूतानां यत्तत्कारणमव्ययम्। कूटस्थं शाश्वतं दिव्यं, वेदो वा, ज्ञानमेव यत्॥ तदेतदुभयं ब्रह्म ब्रह्म-शब्देन कथ्यते। तदुद्दिश्य व्रतं यस्य ब्रह्मचारी स उच्यते॥ (रश्मिमाला ११।५–६)

२. देखिए—ऋग्वेद १०।८५ तथा अथर्व० १४।१७२।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसिदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीताम्......(ऋग्० १०।८५।३२)
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। (ऋग्० १०।८५-४६)
इहैव स्तं मा वि यौष्टं......(ऋग्० १०।८५।४७)
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे। (अथर्व० १४।२।२७)

अर्थात्, हे वधु ! हम दोनों की सौभाग्य-समृद्धि के लिए मैं तुम्हारे पाणि का ग्रहण कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि मैंने तुम्हें देवताओं से प्रसाद रूप में गृहस्थ-धर्म के पालन के लिए पाया है—

समस्त दैवी शक्तियाँ हमारे हृदयों को परस्पर अनुकूल कर्तव्यों के पालन में सावधान और जलों के समान शान्त तथा भेद-भाव से रहित करें !

विवाह का लक्ष्य यही है कि पति-पत्नी दोनों गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो कर संयम तथा सच्चरित्रता का पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए अपना पूर्ण विकास कर सकें।

अयि वधु ! तुम पति-गृह में पहुँच कर गृहस्थ के कर्तव्य-पालन में सदा जागरूक और सावधान रहना !

वे दुर्भावनाएँ, जो प्रायः पति-पत्नी के जीवन में भेद और विराग उत्पन्न कर देती हैं तुम दोनों के बीच में कभी न आएँ। तुम दोनों सच्चरित्रता के साथ इस कठिन गृहस्थ धर्म का पालन करो !

हे वधु ! तू पतिगृह में सास-ससुर के लिए सम्राज्ञी के रूप में प्रेम और सम्मान का पात्र बन कर रहना !

पति-पत्नी तुम दोनों जीवन में एकमत हो कर रहो, तुम्हारा वियोग कभी न हो !

हे वधु ! तुम्हारा गृहस्थ-जीवन सारी जनता के लिए सुख देने वाला हो !

वैवाहिक जीवन के पवित्र और महान् लक्ष्य की ओर स्पष्ट संकेत करने वाले इन उदात्त विचारों पर टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। देखना तो यह है कि भारतीय इतिहास के मध्य-काल के उन लज्जाजनक विचारों से ये कितने भिन्न हैं, जिनके अनुसार स्त्री को 'उपभोग की सामग्री' 'नरक का द्वार' (= नारी नरकस्य द्वारम्), 'ताडन का अधिकारी' और 'आदमी की दासी' तक कहा गया है।

इसी प्रकार वेदों के सांमनस्य सूक्तों में[1] गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में जो सुन्दर भाव प्रकट किये गये हैं, वे भी वैदिक धारा की एक महान् निधि हैं। उदाहरणार्थ,

---

१. सांमनस्य-सूक्तों में पारिवारिक जीवन के साथ-साथ समाज तथा मानव-मात्र के प्रति भी सौहार्द और सद्भावना का प्रतिपादन किया गया है।

सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

(अथर्व० ३।३०।८१।३)

अर्थात्, हे गृहस्थो ! तुम्हारे पारिवारिक जीवन में परस्पर ऐक्य, सौहार्द और सद्भावना होनी चाहिए। द्वेष की गन्ध भी न हो। तुम एक-दूसरे को उसी तरह प्रेम करो, जैसे गौ अपने तुरन्त उत्पन्न हुए बछड़े को प्यार करती है।

पुत्र अपने माता-पिता का आज्ञानुवर्ती और उनके साथ एक-मन होकर रहे। पत्नी अपने पति के प्रति मधुर और स्नेह-युक्त वाणी का ही व्यवहार करे !

भाई-भाई के साथ और बहिन-बहिन के साथ द्वेष न करे !

तुम्हें चाहिए कि एक-मन होकर समान आदर्शों का अनुसरण करते हुए परस्पर स्नेह और प्रेम को बढ़ाने वाली वाणी का ही व्यवहार करो।

पारिवारिक जीवन में स्वर्गीय सुख और शान्ति लाने के लिए इससे अच्छा उपदेश और क्या हो सकता है ?

राजनीतिक आदर्श :—राजनीतिक आदर्शों के विषय में भी वैदिक मंत्रों के अनेक ऐसे विचार हैं, जो वैदिक धारा की व्यापक दृष्टि को स्पष्टतः प्रमाणित करते हैं।

सभ्यता के इतिहास में राज-संस्था अति प्राचीन काल से चली आ रही है। वैदिक काल में भी इसकी स्थिति थी, ऐसा वेद-मंत्रों से ही स्पष्ट प्रतीत होता है। ऐसा होने पर भी, वेद-मंत्रों में जन-तंत्र की भावना और जनता अथवा प्रजा के पक्ष का समर्थन यत्र तत्र मिलता है। उदाहरणार्थ,

"विशि राजा प्रतिष्ठितः" (यजु० २०।९)

अर्थात्, राजा की स्थिति प्रजा पर ही निर्भर होती है।

"त्वां विशो वृणतां राज्याय" (अथर्व० ३।४।२)

अर्थात्, हे राजन् ! प्रजाओं द्वारा तुम राज्य के लिए चुने जाओ।

"विशस्त्वा सर्वा वांछन्तु" (अथर्व० ४।८।४)

अर्थात्, हे राजन् ! तुम्हारे लिए यह आवश्यक है कि समस्त प्रजाएँ तुमको चाहती हों।

ऐतरेय-ब्राह्मण में तो यहाँ तक कह दिया है कि,

"राष्ट्राणि वै विशः" (ऐत० ब्रा० ८।२६)

अर्थात्, प्रजाएँ ही राष्ट्र को बनाती हैं।

इसके अतिरिक्त, वेद-मंत्रों में यह भावना भी स्पष्टतया देखी जाती है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके सब अंगों का विकास हो और समस्त जनता की समृद्धि और सुख ही उसका प्रथम ध्येय हो[1]।

राजनीतिक आदर्शों के सम्बन्ध में वेद-मंत्रों की ये उदार और उदात्त भावनाएँ वैदिक-धारा के लिए वास्तव में गर्व और गौरव का विषय है।

वैयक्तिक जीवन : अन्त में, वैयक्तिक जीवन के सम्बन्ध में वेद-मंत्रों की विचार-धारा का संक्षेप में निर्देश करके हम इस लेख को समाप्त करते हैं।

वैदिक उदात्त भावनाओं आदि के विषय में जो कुछ हम कह चुके हैं, उससे वैदिक-कालीन वैयक्तिक जीवन पर काफी प्रकाश पड़ता है। तो भी वैयक्तिक जीवन के विकास की दृष्टि से वैदिक धारा के आदर्शों के विषय में यहाँ कुछ कहने की आवश्यकता है।

ऋत और सत्य, निष्पाप-भावना, श्रद्धा, आत्म-विश्वास, ब्रह्मचर्य, व्रत, श्रम और तपस्, वीरता और शत्रु-संहार (= वृत्र-हनन) आदि की महिमा से ओत-प्रोत वेद-मंत्रों से यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि वैदिक धारा की दृष्टि से वैयक्तिक जीवन का सर्वांगीण विकास आवश्यक समझा जाता था। इसीलिए वेद-मंत्रों में बौद्धिक तथा नैतिक विकास के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य के लिए गंभीर प्रार्थनाएँ पदे-पदे देखने में आती हैं।

वेद की बुद्धि-विषयक प्रार्थनाएँ प्रसिद्ध हैं[2], जिनमें गायत्री-मंत्र (= तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्। यजु० ३।३५) सुप्रसिद्ध है।

नैतिक प्रार्थनाओं का दिग्दर्शन हम वैदिक उदात्त-भावनाओं के प्रसंग में करा चुके हैं। उसी प्रसंग में दीर्घायुष्य और पूर्णायुष्य की सुन्दर प्रार्थनाओं का भी संकेत किया जा चुका है।

शारीरिक स्वास्थ्य के लिए महत्त्व-युक्त प्रार्थनाओं के कुछ उदाहरण हम नीचे देते हैं—

---

१. तु० "आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर''' महारथो जायताम्।''''''जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवा''''वीरो जायताम्।''''''फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ (यजु० २२।२२)

२. देखिए—"मां''''''मेधाविनं कुरु''''''॥ मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।'''(यजु० ३२।१४।१५)

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि।...
...यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आ पृण॥ (यजु० ३।१७)

अर्थात्, अग्ने! तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, मेरे शरीर को पुष्ट करो। तुम आयु को देने वाले हो, मुझे पूर्ण आयु दो। मेरे शारीरिक स्वास्थ्य में जो भी न्यूनता हो उसे पूरा कर दो।

वाङ्‌ म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्।
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पदयोः प्रतिष्ठा...... (अथर्व० १९।६०।१-२)

अर्थात्, मेरे समस्त अंग पूर्ण स्वस्थता से अपना-अपना कार्य करें, यही मैं चाहता हूँ। मेरी वाणी, प्राण, आँख, और कान अपना-अपना काम कर सकें। मेरे बाल काले रहें। दाँतों में कोई रोग न हो। बाहुओं में बहुत बल हो। मेरी ऊरुओं में ओज, जाँघों में वेग और पैरों में दृढ़ता हो।

आयुर् यज्ञेनकल्पतां...प्राणो...अपानो...व्यानो...चक्षुर्...
श्रोत्रं वाग्...मनो...आत्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा॥ (यजु० ३२।३३)

अर्थात्, प्राकृत जगत् में काम करने वाली अग्नि, वायु आदि दैवी शक्तियों के साथ-साथ सामञ्जस्य का जीवन (= यज्ञ) व्यतीत करते हुए मैं पूर्णायुष्य को प्राप्त कर सकूँ; मेरी प्राण, अपान आदि शक्तियाँ तथा चक्षु आदि इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य ठीक तरह कर सकें; और इस प्रकार मेरे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो—यही मेरी आन्तरिक कामना है, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा और प्रार्थना है।

"अश्मा भवतु नस्तनूः" (यजु० २९।४९)

अर्थात्, हमारी प्रार्थना है कि हमारा शरीर पत्थर के समान सुदृढ़ हो!

जो कुछ ऊपर कहा गया है, उससे स्पष्ट है कि वैदिक धारा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी व्यापक दृष्टि में है। वह व्यष्टि और समष्टि दोनों दृष्टियों से मानव के सर्वांगीण विकास को चाहती है। जीवन की सब परिस्थितियों में मानव सफलतापूर्वक अपना पूर्ण विकास कर सके, यही उसका प्रधान लक्ष्य है। भारतीय संस्कृति के उत्तर-कालीन शब्दों में हम कह सकते हैं कि वैदिक धारा का सदा से मुख्य ध्येय यही रहा है कि मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों की, अथवा अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति कर सके। इसी से मनुष्य-जीवन के कर्तव्यों के विषय में उसका दृष्टि-कोण, एकांगी या एकदेशी न होकर, सदा से व्यापक रहा है। यही उसके भारतीय संस्कृति के विकास में व्यापक और शाश्वतिक प्रभाव का रहस्य है।

वेदमूर्ति श्री रटाटे जी का जीवन ऋषिसम था। ऐहिक समृद्धि तथा यश पाने के विषय में निस्पृहत्व, अपरिग्रहत्व, वेदपरायणता उनके जीवन की विशेषतायें थीं।

वेदमूर्ति युगल की अविस्मरणीय भेंट

लाहौर से निर्वासित होने के वाद पण्डित सातवलेकर जी ने औंध को अपना कार्य क्षेत्र बनाया और वेद कार्य को आगे बढ़ाकर समस्त विश्व में वैदिक ज्योति फैलाने का संकल्प लेकर उन्होंने अपने सभी अन्य चित्रकारी आदि कार्यों का परित्याग कर दिया।

औंध में आने के वाद उन्होंने सर्वप्रथम चारों वेद संहिताओं के शुद्ध मुद्रण की योजना बनाई। इस कार्य के लिए उन्हें कतिपय ऐसे विद्वानों की आवश्यकता हुई कि जो पं० सातवलेकर जी के इस कार्य में सर्वतोमना सहयोग दे सकें। अतः उन्होंने सर्वत्र ऐसे वेदविद्वानों की खोज शुरू की और अनेक स्थानों की यात्रा करते हुए वे वाराणसी भी आये। यों तो वाराणसी के वेदिक विद्वानों में अग्रगण्य वेदमूर्ति श्री रटाटे जी का नाम पं० सातवलेकर जी तक पहुँच चुका था, पर साक्षात् दर्शन न हो पाये थे। पण्डित जी वाराणसी पहुँच कर वेदमूर्ति श्री रटाटे जी से मिले और उनसे अपने कार्य की योजना वताकर उसमें उनकी सहायता मांगी। वेदमूर्ति जी ने भी इस कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

औंध में आकर पण्डित जी ने वे० मू० श्री रटाटे जी को अपने पास बुला लिया। वे भी औंध में पण्डित जी की संस्था "स्वाध्यायमण्डल" के तत्त्वावधान में वेद संशोधन का कार्य करने लगे। पण्डित जी वे० मू० रटाटे जी की प्रतिभा को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। ऋग्वेद का हर एक मन्त्र मानों श्री रटाटे जी के सामने साक्षात् विग्रह धारण करके उपस्थित हो जाता था। उनके वारे में तो ऋग्वेद का "उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे" यह मन्त्रभाग चरितार्थ हो गया था।

वेद प्रकाशन के क्षेत्र में जिन दो व्यक्तियों ने पण्डित सातवलेकर जी को अत्यधिक प्रभावित किया था वे थे वेदमूर्ति श्री रटाटे तथा वेदमूर्ति श्री सखाराम येङ्गूरकर।

एक संस्मरण :—एक वार पण्डित जी वे० मू० रटाटे जी के बारे में अपना एक संस्मरण सुनाते हुए वोले—"एक दिन हम दोनों (पण्डित जी तथा वेदमूर्ति) अध्ययन कक्ष में वैठकर ऋग्वेद के मुद्रण कार्य में तल्लीन थे। वीच में मैंने श्री रटाटे जी से कहा–'ऋग्वेद संहिता के अब तक जितने संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उन सभी में जर्मन वेद विद्वान् प्रो० मैक्समूलर द्वारा सम्पादित ऋग्वेद संहिता सर्वशुद्ध है, ऐसा मेरा विचार है।" यह सुनकर वे० मू० श्री रटाटे जी वोले—"हाँ! आपका कहना अधिकांश में सत्य हो सकता है, सर्वांश में नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि अवतक

सम्पादित किए गए ऋग्वेद संहिताओं में मैक्समूलर के ऋग्वेद का संस्करण सर्वाधिक शुद्ध है, पर उसमें भी कतिपय अशुद्धियाँ रह गई हैं।" यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। तब वे० मू० रटाटे ने वे अशुद्धियाँ मुझे बताई—"मैक्समूलर के ऋग्वेद में १।१८०।९; ५।५२।३; ५।५२।८; ५।८७।३; ६।१२।५ तथा १०।४२।५ स्थानों पर क्रमशः "स्यन्द्रा, स्यन्द्रासो, स्यन्द्राः, स्यन्द्रासो, स्यन्द्रो, स्यन्द्रं" ये पद छपे हैं। ये अशुद्ध पाठ हैं। शुद्ध वैदिक पाठ हैं—"स्पन्द्रा, स्पन्द्रासो, स्पन्द्रा, स्पन्द्रासो, स्पन्द्रो, स्पन्द्रं"। इसी तरह ऋ० १।१८१।५ में मैक्समूलर का पाठ है—"मथ्ना रजांसि" जब कि शुद्ध वैदिक पाठ है—"मथ्रा रजांसि"। यह कहकर श्री रटाटे जी ने अनेक प्रमाणों से इस बात को सिद्ध भी करके दिखा दीया। मैं वेदमूर्ति रटाटे जी की इस प्रतिभा को देखकर आश्चर्यचकित रह गया।"

गम्भीर अर्थज्ञान—पं० सातवलेकर जी श्री रटाटे की विद्वत्ता से जो अत्यधिक प्रभावित हुए उसका एक और भी कारण था और वह था उनका (श्रीरटाटे जी का) गंभीर अर्थज्ञान। आजतक जितने भी वेदपाठी हुए हैं उनमें से अधिकांश वेदपाठियों की अवस्था "अधीत्य वेदं न विजानाति अर्थम्" की हो रही है। पण्डित सातवलेकर जी यह कहा करते थे कि पेशवाई काल में ३ लाख रुपये वार्षिक दक्षिणा वेदपाठियों को दी जाती थी। पर वे वेदपाठी वेदों का सस्वर वेदपाठ मात्र करना जानते थे, तन्निहित अर्थज्ञान से वे नितान्त अनभिज्ञ रहते थे। उन्होंने वेदों को कण्ठस्थ करके वेदों की रक्षा की, इसलिये वे हमारे लिए पूज्य हैं, यदि वे अर्थज्ञान में भी कुशल होते, तो सोने में सुगन्ध हो जाता। वेदमूर्ति श्री रटाटे जी "वेदम् अधीत्य विजानाति अर्थम्" की श्रेणी के थे। वे वेदपाठी तो थे ही वेदों के गंभीर ज्ञाता भी थे। उनकी बुद्धि वेदार्थों की गहराई तक पहुँच गई थी। पर वेदार्थ के बारे में अनेक कठिनतम स्थलों पर पण्डित जी को वेदमूर्ति जी से अमूल्य मदद मिली।

इन्हीं सब कारणों से पं० सातवलेकर जी की श्रद्धा वेदमूर्ति रटाटे जी पर अटूट हो गई और यह श्रद्धा अन्त तक बनी रही।

वेदमूर्ति श्री रटाटे जी का जीवन वस्तुतः वेदमय जीवन था। वेद ही एक मात्र उनके उपास्य थे। ऐसे वेदमूर्ति के चरणों में मेरे अनन्त प्रणाम।

सुहृद्वरं स्व० रामचन्द्र शास्त्री रटाटे, एक संस्मरण

लें० वेदाचार्य अनन्तराम डोगरा

बहुत दिन की पुरानी बात है कि मैं उत्तरमीमांसा का अध्ययन करने स्वर्गीय महामहोपाध्याय नित्यानन्द पर्वतीय के चरणों में उनके निवास स्थान पर जाया करता था। वहाँ मुझे पर्वतीय महोदय के उच्चारित पाठ का अलभ्य लाभ हुआ करता था और साथ ही एक दिन अनुपम लाभ हुआ स्वर्गीय रामचन्द्र भट्ट रटाटे जी का परिचय। जिस प्रकार पर्वतीय महाराज का धवल जीवन था वैसे ही शुद्ध सात्त्विक जीवन उनके पार्श्ववर्ती रटाटे महोदय का था। परिचय होने के बाद ज्यों ज्यों उनसे सौहार्द बढा त्यों त्यों मुझे रटाटे जी की अमायिकता और स्नेहासिक्त व्यवहार का अनुभव हुआ। सुहृद्वर रामचन्द्र भट्ट रटाटे यों तो ऋग्वेदी थे परन्तु उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन किया था और सभी पर समानाधिकार रखते थे।

गुरुवर नित्यानन्द जी के श्रीचरणों के प्रसाद से रटाटे जी का तथा मेरा दृढ़तर बन्धुत्व स्थापित हो गया। बन्धुत्व के नाते परस्पर व्यवहार भी स्थापित हो गया। एक बार मैं उन्हें अपने साथ एक महीने के लिए एक अनुष्ठान में ले गया। वह अनुष्ठान मेरे ही आचार्यत्व में अनुष्ठित हो रहा था। उसमें दक्षिण द्वार के द्वारपाल स्थान पर श्री रटाटे जी विभूषित थे। उस अनुष्ठान में काशी मण्डल के अतिरिक्त पैंतालीस वैदिक विभिन्न वेदाध्यायी भी आमंत्रित थे। स्वाभाविक है कि पण्डित समाज एक स्थान पर एकत्रित होने पर अनेकों प्रकरणों को चर्चा करें। होता भी ऐसा ही था। उस समय देखा गया कि भाई रटाटे सभी प्रकरणों पर अधिकार के साथ बोलते थे।

उनकी मेधा अनुपम थी। जो पढ़ा वह समग्र हर समय उपस्थित। ऐसी कुछ विशेषताएँ थी जिनके कारण उनकी ख्याति थी, प्रतिष्ठा थी और पण्डित समाज में सम्मान था। काशीस्थ पण्डित समाज ने उन्हें "वैदिकमार्तण्ड" की उपाधि से सम्मानित किया। वैसे तो उन्हे अनेकों स्थानों पर सम्मान प्राप्त हुआ था परन्तु वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालय ने भी उन्हें आजीवन २०० रु. मासिक अनुदान दिया जो कि विश्वविद्यालय द्वारा सम्मानित विद्वानों को ही दिया जाता है।

आज वह हमारे बीच नहीं हैं। मैंने एक मित्र खोया, और वैदिक वाङ्मय ज्ञाताओं में जैसे एक वैदिक मार्तण्ड अस्त हो गया।

रटाटे जी तन्त्रशास्त्र के भी ज्ञाता थे। एक समय कलकत्ते में उन्होंने काली मन्दिर में कालिकासहस्र नाम कण्ठ से पाठ किया। मैं साथ था। उनको गुरुप्रवर श्री पन्त जी ने अग्निहोत्र भी दिलाया था।

श्रद्धांजलि

सदा छायाकांक्षी नम्र सोमनाथ वैद्य

श्री स्व० वे० शा० सं अग्निहोत्री रामचन्द्र शा० रटाटे जी के दिवंगत हुए आज ३ वर्ष हो रहे हैं। ये महान् श्रौत स्मार्त ऋग्वेदादि वेदों के ज्ञाता स्वयं कर्मशील व आदर्शवादी उपदेष्टा रहते हुए श्री दरभंगा वेद विद्यालय और बाद में वाराणसेय सं० वि० विद्यालय के आमरणान्त सं० प्राध्यापक रहे। इनकी वेदादि शास्त्रों से परिमार्जित विशुद्ध वाग्धारा से अनेकानेक विद्यार्थी वैदिक हो इस काशी तथा संपूर्ण भारत में ख्याती प्राप्त हैं। स्व० रटाटे जी के काशी में क्रमशः पिता श्रीकृष्ण शास्त्री व पितामह विनायक शास्त्री धुरंधर विद्वानों में थे। स्व० रटाटे शास्त्री जी, तो इस पुण्य काशी नगरी के आधार स्तम्भ थे और जब तक रहे तब तक बड़े-बड़े विद्वान् भी इनसे वेद शास्त्रों का संशय दूर कर इनकी प्रतीभा तथा स्वभाव से प्रसन्न हो अपने अपने कार्य में लग जाते थे। ऐसे महात्मा पितृकल्प स्व० रटाटे जी के श्री चरणों में मैं श्रद्धाजंलि समर्पित करता हूँ।

चतुर्वेद-वेदमूर्त्ति स्व० श्री रामचन्द्र भट्ट रटाटे जी के प्रति

ले० सत्यदेव वासिष्ठ

सादरं सहस्रशः प्रणामाः। प्रसन्नवदन, प्रत्युत्पन्नमति, निर्भीक, स्पष्टवादी, निज स्मृति में अनेक ग्रन्थ राशी को मुखर बनाये हुए जीवित पुस्तकालय-रूप, इस प्रकार अनेक गुणों वाले पूज्य गुरुदेव श्री रामचन्द्र भट्ट जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि—अर्पित कर्ता (काल—१९३० से १९३३ तक) निरन्तर—मैंने इनसे अथर्ववेद पढ़ा।

दर्श-पौर्णमास का प्रयोग सीखा, मैं उनका प्रायः कृपामय-स्नेहपात्र था, जब मैं कभी उनके पास पढ़ने में विलम्ब से जाता, या कुछ दिनों के व्यवधान से जाता, तो पूछते थे इतने दिन क्यों नहि आये, मैं कहता था—

रात को देर में सावकाश होता हूँ, तो करुणासागर गुरुदेव जी ने कहा—सत्यदेव-शास्त्री, यह मेरा द्वार पढ़ने वाले छात्र के लिए २४ घण्टे खुला है; कभी आ सकते हो, अब देर हो गई का बहाना नहीं माना जायगा, इस घटना ने मेरा जीवन बदल दिया, मैंने भी अपने जीवन में ऐसा ही किया—पढ़ने वाला जिज्ञासु जब भी आया इसे तभी बताया—यहाँ तक कि सारी-सारी रात भी जागते बीत जाती थी। यह उनका गुण मुझमें आया। एक बार वाराणसी में दरभंगा वैदिक पाठशाला–नीलकण्ठ महादेव, पर मैं वेद पढ़ने जाता था, मेरी उस समय सामवेद की पाठशाला में उपस्थिति होती थी, श्रीशंकर राम जी त्रिपाठी सामवेदी, हमारे गुरुजी थे, उस समय एक पण्डित रामावतार शर्मा षट्तीर्थी आये, मैं उनके साथ आदरणीय श्रीरटाटे जी के पास गया, उन पं० जी ने रँग का उच्चारण जानने की इच्छा व्यक्त की—परम पूज्य श्रीगुरुदेव ने झट-शिक्षा का श्लोक बोलकर रँग का उच्चारण बताया वह मुझे इस समय तक ज्यों का त्यों याद है। प्रायः करके मैं अपने जीवन में उस रंग के उच्चारण को सुनाता रहा हूँ। उन्हें अमृतसर में एक यज्ञ पर बुलाया, तो मैं उनकी सेवा में रहा करता था। तो मैंने देखा कि पिंगल पर उनको बड़ा अधिकार था, मैंने श्लोक बोला तो उन्होंने उसका लक्षणसूत्र झट बोला।

मेरा वेदाभ्यास पूरा होने पर–चतुर्वेदी की उपाधि मुझे देने में तो वे प्रमुख थे, पुनः पृथक् पृथक् इतर वेद पाठियों ने भी हस्ताक्षर कर दिये, इस प्रकार उनका आभार मेरे ऊपर है। चूँकि मैं पंजाब का रहने वाला हूँ अतः इच्छा होने पर भी मैं पुनः पुनः वाराणसी में जाकर उनके वचनामृत का आनन्द न ले सका। लगभग १० वर्ष पूर्व के एक श्रीरंगनाथ के मन्दिर के शताब्दि समारोह पर बुलाने पर भिवानी जि० हिसार में पधारेथे, मैं कुछ अस्वस्थ था, तो भी मन्दिर में गया, तो जैसे ही मैंने प्रणाम किया, मुझे देखकर पुत्रवत् स्नेह से—मुझे पूछा—अहो, सत्य देव्र बेटा! तुम यहाँ कैसे, ? मैंने कहा महाराज, मैं यहाँ सनातन धर्मप्रेम गिरि आयुर्वैदिक कालेज, लाहौर वाले में पढ़ाता हूँ। आप मुझे सेवा बताईये, तो दूसरे दिन का सरदारवो (द्राक्ष) से मैंने सत्कार किया, वे बोले बस अब मैं तुम्हें पाकर समझता हूँ कि मैं वाराणसी में ही हूँ। उनके साथ उनके पुत्र नारायण शास्त्री एवं अन्य वेदपाठी भी थे।

इस प्रकार उनकी गुण गरिमा कहाँ तक गाऊँ, उनके गुण-स्वभाव की मुझपर अमिट छाप पड़ी है। मैं यथाशक्ति उनकी सेवा भी करता रहता था, अकस्मात् १९-९-६७ के प्राप्त पत्रों में वे० मू० रटाटे स्मृ० ग्र० समिति का पत्र प्राप्त करके चित्त में बड़ा विशाद हुआ। वेद की चलती फिरती मूर्त्ति के अब हम दर्शनों से वञ्चित हो गये हैं, अतः मेरा मस्तिष्क उन की गुणगरिमा के प्रति बार-बार नमस्कार करने लग गया। ईश्वर उनको पुण्य लोकों में स्थान दें ऐसी अनधिकार पूर्ण प्रार्थना है॥

वेदमूर्ति रटाटे शास्त्री का स्मरण

सत्यांशु मोहन मुखोपाध्याय

काशी हमारी धार्मिक राजधानी है। स्मरणातीत काल से साधु, महात्मा, विद्वान्, साधक इसको अपनी उपस्थिति और साधनाओं से गौरवान्वित करते आ रहे हैं। अध्ययन, अध्यापन, मूलग्रन्थ और टीकाओं के निर्माण में महाराष्ट्र के विद्वानों का स्थान ऊँचा है। आर्यविद्या का ऐसा कोई विभाग नहीं जो इन विद्वानों के द्वारा उन्नति को न पहुँचाया गया हो। वैदिकों में उन विद्वानों का विशिष्ट स्थान रहा है। आज भी वैदिक कहने से महाराष्ट्र वैदिक का ही बोध होता है।

जिन विद्वानों की कृपा से वेद और वैदिक स्वाध्याय आज भी सजीव हैं उनमें स्वर्गत रामचन्द्र शास्त्री रटाटे जी अन्यतम रहे हैं। साग्निक रटाटे जी का दर्शन करने का सौभाग्य हमें रटाटे जी के सम्मानित पड़ोसी कैलासवासी पण्डित बटुक[1] नाथ शर्माजी के भवन में प्राप्त हुआ था। पण्डितजी विद्वान् थे और विद्वानों का आदर करते थे। उनका निवासस्थान एक तीर्थ था जहाँ दूर और निकट के स्थानों से विद्वज्जन आया करते थे। पण्डितजी अपना सब काम छोड़ कर उनसे शास्त्रालाप करते थे और उचित आदर करते थे। स्वयं वे एक विभूति ही थे। साहित्य में तो उनकी गति अबाध थी। शास्त्रान्तरों में उनका प्रवेश विलक्षण रहा है। वेद और वैदिक साहित्य से उनका घनिष्ठ परिचय था। इस प्रसङ्ग में रटाटे जी से उनका सम्मिलन लगा रहता था।

पण्डितजी प्रतिवर्ष अपने निवासस्थान पर वसन्तपूजा की व्यवस्था करते थे। उन अवसरों पर रटाटे जी का समुचित प्राधान्य रहता था। रटाटे जी प्रायः सभी वेदों का पारायण करने और कराने में समर्थ थे। काशी की नगरी में भी अथर्ववेद का पठन-पाठन-अभ्यास अतीत को स्मृति सी हो गई थी। रटाटे जी के परिश्रम और निष्ठा से उसका पुनरुज्जीवन हो सका। वे "ब्राह्मणों" का भी सस्वर पारायण और अभ्यास करते और कराते थे। शास्त्रीजी वेदमूर्त्ति ही थे। सर्वदा वे वेदों की उपासना में लगे रहते थे।

निष्ठावान् आर्यजनों को अपनी कृतियों से रटाटे जी ने कृतार्थ किया है। हम उनके ऋणी हैं और रहेंगे। हमारा कल्याण इसी में है। रटाटे जी का स्मरण दिलाने वाले विद्वानों को हम अभिनन्दित करते हैं।

---

१. दुर्गाघाट स्थित् स्वनिवासस्थान में पं० बटुकनाथ शर्मा जी ने स्व० रटाटे जी से सामवेद की शिक्षा प्राप्त की थी। (सम्पादक)

श्री रटाटे जी एक पहेली भी हैं।

श्री विष्णु शास्त्री चितले

उत्तर भारत में हम महाराष्ट्रीयों की बस्ती इसवी सन् १७८२ में सिंधिया का राज्य गवालियर में स्थिर हो जाने के कारण तथा पेशवाओं को चित्र कूट बांदा एवं (कानपुर) विठुर में आकर बस जाने से अत्यन्त बढ़ गई। अनेकों परिवार अनेकों कारणों से काशी में भी आ कर बस गये। इन्हीं में पंडित रामचन्द्र शास्त्री रटाटे जी के पितामह भी काशी में आकर बस गये। सौभाग्य से ग्वालियर के सरदार श्री यमाजी पंत पोतनीस का आश्रय भी मिला जो अबतक चालू भी है। श्री रामचन्द्र शास्त्री रटाटे जी के पिता दो भाई थे। एक श्री गोपाल शास्त्री रटाटे और दूसरे श्रीकृष्ण शास्त्री। गोपाल शास्त्री जी का अध्ययन श्री पूर्णानंद स्वामी के पास हुआ था श्रीकृष्ण शास्त्री के श्री रामचन्द्र शास्त्री सब से बड़े पुत्र थे। आपने चार वेदों, कर्मकाण्ड एवं शास्त्रों का भी अध्ययन किया था। आप अपने अधीत सभी विषयों के कसौटी पर कसे हुए विद्वान् थे। उनके विरुद्ध वाद करना या उनके मनखिलाफ बात करना एक टेढी खीर थी। ऐसे वे तेजस्वी थे। अनेकों यज्ञों में निमन्त्रित होने के निमित्त ये आसेतुहिमाचल परिभ्रमण किये थे। आप काशी के दरभंगा राज्य के वेदपाठशाला में अथर्व वेद के अध्यापक भी थे। आप आहिताग्नि भी थे, हरेंक इष्टी के दिन सौ, दो सौ ब्राह्मणों का भोजन उनके यहाँ होता था जो एक साधारण सी बात थी। आप इतने तेजस्वी तथा अपने विषय के उच्च कोटि के विद्वान् थे कि भारत सरकार के स्थानीय वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के आप प्रथम वैदिक सम्मानित प्राध्यापक पद पर नियुक्त किये गये।

आपका प्रथम विवाह काशी के लेले घराने की एक सुशील कन्या से हुआ था, इस पत्नि के साथ कुछ वर्ष अयोध्या में भी रहे थे, पर अचानक दैवयोग से आपकी इस प्रथम पत्नीने बिदा ली और उनको द्वितीय विवाह का रास्ता खुला कर दिया। इस द्वितीय विवाह के अनन्तर ही आपका भाग्य विशेष रूपमें जगा और उन्होंने अग्निहोत्र का आधान किया। इनकी द्वितीय पत्नी श्री० सौ सीताबाई, रटाटे मेरी पितृभगिनी थी अत एव मुझे श्री रटाटे जी को अनेक अवसरों पर अनेक पहलुओं से देखने का अवसर मिला है, जिन्हें मैं क्रमशः स्मृति के रूपमें लिखूँगा।

आपकी द्वितीय पत्नी सौ० सीताबाई रटाटे की आपके घरमें आने की घटना भी एक अनोखी घटना है, जो श्रवणीय एवं मनोरंजक भी है।

आप की पत्नी सीताबाई का मैकेका जोशी घराना सतारा के वाई गाँव का एक अत्यन्त सुसंपन्न परिवार है। इस परिवार के अनेक विशिष्ट दान धर्म प्रसिद्ध हैं। सीताबाई के पिता की मृत्यु के कारण ऊब कर विरक्त भाव से अपने छोटे दो पुत्रों एवं दो कन्याओं को लेकर आपकी माता काशीवास के हेतु काशी जी में आ पहुँची। उस समय उन्होंनें अपने साथ विपुल द्रव्य भी लाया था। जो सहज में लुट गया। तव सीताबाई नन्हीं मुन्नी सी थी, किसी न किसी प्रकार दुःख के दिन काटनेवाली वह औरत बीमार पड़ गई, ऊब कर मृत्युके दो एक दिन पूर्व सीताबाई को लिये एक पीपल के पेड़ के नीचे पड़ी थी। इन्हींमें से एक करुणामयी किसी औरत ने बात-चीत के सिलसिले में कहा—"मैं इस लड़की को संभाल लूँगी तुम अब शान्ति से अपने प्राण छोड़ो, यह कह कर उसने इस लड़की को जो लड़की फोड़ों और फुनसियों से भी भरी थी, उसे उठा लायी, यह उठाकर लाने वाली औरत जहाँ, मेरी पितामही उमाबाई भी अपने तीन पुत्रों और तीन पुत्रिओं के साथ रहती थीं उसी मकान में रहनेवाली थी, इस फोड़े फुन्सी भरी लड़की को घर में उठा लाना, एक जघन्य कृत्य मानकर उसके घरमें ऐसा कलह आरंभ हुवा की लोग दहल गये। इस कलह को शांत करने के हेतु मेरी पितामही ने इस लड़की को पालने पोसने का वचन देकर इस कलह को शांत कराया, तब से उसके जीवन तक हमारे घर से मायके का रिश्ता बराबर चला आ रहा है। मेरे पितृव्य श्री श्रीधर भट चितले जी ने सीताबाई का विवाह बड़ी होने पर श्रीरामचंद्र शास्त्री रटाटे के साथ किया। जिस दिन पीपल के पेड़ के नीचे पड़ी बीमार औरत का देहावसान हुवा तब उसकी उत्तरक्रिया एवं दाहसंस्कार में दैवयोग से श्रीरामचन्द्र शास्त्री रटाटे तथा मेरे चाचा भी थे। इस प्रकार उनकी पत्नी की पूर्व कहानी को देख कर कहना भी पड़ता है कि–दैवगतिविधि कुछ निराली ही रहती है। सौ० सीताबाई रटाटे का वाई का नाम 'चंद्री' मेरे घर का 'गंगूबाई' तथा रटाटे जी से विवाह के पश्चात् उनका नाम सीताबाई रटाटे हुवा। इनसे रामचंद्र शास्त्री को पाँच पुत्र तथा ३ कन्याएँ हुईं। इनके विवाह के उपरांत ही रटाटे जी का वास्तविक भाग्योदय हुआ।

श्री रामचन्द्र शास्त्री रटाटे एक उच्च कोटि के तान्त्रिक भी थे। इनकी बैठक काशी के जड़े महोदय के यहाँ तथा कृष्णानन्द मठ में रहती थी। आप मन्त्रशास्त्र के भी विद्वान थे। इन्हें श्री महा भैरव का साक्षात् दर्शन हुआ था। यह एक अत्यन्त गोपनीय रहस्य है। पण्डित श्री गोडवाले महाराज की पूर्ण कृपा से इन्हें दशमहाविद्या की उपासना प्राप्त हो चुकी थी, श्री रटाटे जी पर प्रसन्न होकर गोडवाले महाराज ने एक ही रात्री में संपूर्ण उपदेश देकर आशिर्वाद दिया। और आपको दश महाविद्या की कृपा हो गई। इसीके बलपर वे अनेक विषमताओं पर विजय पाते थे।

एक समय इलाहाबाद में अंतर्राष्ट्रीय विद्वत्सम्मेलन के अवसर पर काशी के म० म० पं० श्री गंगाधर शास्त्री तैलंग की ओर से तीन प्रतिनिधि भेजे गये थे, जिनमें म० म० पं० लक्ष्मण शास्त्री तैलंग, म० म० पं० रामशास्त्री तैलंग एवं रामचन्द्र शास्त्री रटाटे जी थे, संभवतः इसमें डॉ० गंगानाथ झा० महोदय जी का आधिपत्य था। इन्हें सभी वेदों के पुरुषसूक्तों का पाठ करना था। विदेशों के अनेक विद्वान् भी वहाँ उपस्थित थे।

एक बार आपने आँग्रे के बाड़े में एक महती सभा में विजयपत्र के इच्छुक दशावधानी महोदय को परास्त किया था।

(अर्थशास्त्र० १।१५।१९) के अनुसार आपके नाना ने आपको विविध प्रकार के पशु-पक्षियों के रहस्य को जानने के लिए पूरा मकान दे दिया था। जहाँ आपने कोकिला, मैना, मयूर, लाल, कबूतर, तथा शुकादि पक्षी सैकडों की संख्या में पाले थे। इसी प्रकार दो अश्व, हरिण, आदि भी रखे थे। इनकी देखभाल के लिए चार वनारसी नियुक्त थे। आप स्वयं अवकाश के समय यहाँ जाते थे।

रटाटे जी बराबर कहते थे कि मनुष्य अपनी नियत साफ रखकर सभी का अनुभव कर सकता है। च, छ, को छोड़कर और कुछ भी निन्दनीय नहीं है। वे कहते थे कि ज्यादा से ज्यादा अनुभव कर लेने चाहिएँ, जिससे जीवन पूर्ण हो जाय।

आपके शिष्यों में से सखाराम भट्ट वैद्य, नारायण भट्ट घुले, रामचन्द्र गोपीनाथ भट्ट आठवले, अमृतराम पण्ड्या, भास्कर भट्ट रंगण्या, पं० काशीनाथ व्यास पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु प्रभृति प्रसिद्ध थे।

अग्निहोत्र के प्रमुख ऋत्विज-श्रीरामशास्त्री (तात्या) केलकर, सीतारामजी, पुरोहित भिकं भट्ट पटवर्धन, रामशास्त्री पराडकर, दत्तु दी० पानगावकर, गणेश भट्ट जोशी इत्यादि थे। विट्ठल मन्दिर में आपने चातुर्मास्ययाग किया था। जो अत्यन्त प्रशंसनीय रहा है।

आपको गाय की भी परीक्षा थी। गाय के शास्त्र के भी उत्तम ज्ञाता थे। हम उनके रिश्तेदार होने के कारण जब कभी उनके पास बैठते थे और उनकी तवियत प्रसन्न रहती थी तो वे अनेक प्रकार के गोपनीय ज्ञान को समझाते थे। बात-चीत के सिलसिले में कभी वे यज्ञसंस्था, की सप्तसोम संस्था पर चर्चा करते, तो कभी यज्ञीय हिंसापर चर्चा करते। एक समय तो उन्होंने एक मृत्यु की घटना के अवसर के सिलसिले में संपूर्ण शवसाधना का वर्णन एवं ज्ञान दिया जो मुझे आज तक याद है। उनके सामने हमलोग छोटे से बालक होने के कारण उनसे कुछ प्राप्त न कर सके यह एक निराली बात है—हम संस्कृतज्ञ होने से कभी तो वे हमें शक्ति उपासना के ज्ञानदान का अधिकारी समझते तो कभी अंग्रेजी पढ़ने से नास्तिकता की चर्चा से तथा एक छोटे बालक होने से हमें तांत्रिक ज्ञानदान का अनधिकारी भी समझते थे। ऐसे साधारण गृहस्थ के समान होते हुये भी रटाटे जी एक योगी के समान थे। उनके वास्तविक रूपको जान लेना एक पहेली अवश्य बनी है।

प० पू० वे० मू० रटाटे जी के पत्रों के अंश

लाहौर से ब्रह्मचारी श्रीब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के कई पत्र प्राप्त हुये हैं जो इनकी एवं रटाटे जी की सन्निकटता के परिचायक हैं। जिज्ञासु जी किस प्रकार रटाटे जी के सम्पर्क में आये, इस सम्बन्ध में पं० गोपाल शास्त्री जी 'दर्शन केशरी' ने पूज्य रटाटे जी के प्रथम वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर आयोजित सभा में कहा था—"वेदों का संशोधन करते समय जिज्ञासु जी को एक ऋचा मिली। उस ऋचा का सन्दर्भ प्राप्त करने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण भारत को छान डाला लेकिन कहीं भी उनकी शंका का समाधान नहीं हुआ। अन्ततोगत्वा पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के पास वे गये। सातवलेकर जी ने उन्हें रटाटे जी के पास भेज दिया। यहाँ आने पर जिज्ञासु जी की शंका का तुरंत समाधान हो गया और उसी दिन से जिज्ञासु जी इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हें अपना गुरुवत् मानने लगे।" इसी प्रकार के और भी कई संस्मरण दर्शन केशरी जी के पास आज भी हैं।

शापुर नरेश के राजगुरु पं० यमुनादत्त षट्‌शास्त्री एवं प्रायवेट सेक्रेटरी श्री बसन्ती लाल माथुर के दर्जनों पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमे रटाटे जी के शापुर नरेशके सम्पर्क में रहने का आभास होता हैं।

स्व० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के १९३० के बाद के अनेक पत्र प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पंडित जी से आपकी काफी घनिष्ठता थी।

वाँसवाड़ा (राजस्थान) से श्री धन शंकर जी नागर अथर्ववेदी का एक पत्र प्रकाशन समिति के संयोजक के पास आया है। इससे यह मालुम होता है कि स्व० पं० रटाटे जी केवल अपने ही प्रदेश एवं शहर में प्रसिद्ध न थे अपितु समस्त भारत में आपकी ख्याति थी प्रस्तुत अंश उसी पत्र का है—"पत्र पढ़कर हृदय पर आघात पहुंचा कि अथर्ववेद, वेदांग एवं श्रौतस्मार्त के पूर्ण ज्ञाता, कर्मठ, तथा विद्यादान में पूर्णरूपेण उदार श्री रामचन्द्र जी रटाटे अपनी अमर कीर्ति फैलाते हुये आज हमसे सर्वदा के लिये स्थूल देह विसर्जन कर स्वर्गारोहण करलिए। दूर होते हुए मैंने अपने पिता श्रीलाल शंकर जी से स्वर्गस्थ के सम्बन्ध में विपुल गुणगाथा श्रवण की है। अत एव मुझ पर भी उनकी अहैतुकी कृपा थी।" हमारे पिता व हम दोनों भाई सांगवेद विद्यालय रामघाट वाराणसी में उनसे पढ़े हैं।

---

१. स्व० रटाटे जी पत्रादि को सुरक्षित रखने के विरोधी थे।

स्व० रटाटे जी के गुरु पं० गणेश भट मार्तण्ड जी की काशी की जनता के नाम एक हस्तलिखित विज्ञप्ति प्राप्त हुई है जिसमें आपने लिखा है।

"इधर ३०-३१ वर्ष से प्रसिद्ध पं० रामशास्त्री रटाटे अग्निहोत्री ने हमारे पास अथर्ववेद का अध्ययन किया और उनको म० म० पं० गंगाधर शास्त्री वैदिक-श्रौत-स्मार्त धुरंधर ने श्रीमान् अयोध्यानरेश के पास आवश्यकता पड़ने पर भेजा। इन्होंने अध्ययन करते हुए महाराज को अथर्ववेद सुनाया और तीन-चार वर्ष तक वहाँ रहे।"

महाराजा विकानेर के आर्मी मिनिस्टर श्री विष्णुदत्त शर्मा का दि०२-१०-३७ का एक हस्तलिखित पत्र मिला है जिससे यह जाना जा सकता है कि स्वयं विकानेर नरेश रटाटे जी की इज्जत करते थे। पत्र का एक अंश इस प्रकार है—

"आज १२ दिन व्यतीत हो गये आपका कोई पत्र नहीं प्राप्त हुआ। यहाँ जल्दी है। खुद महाराज आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं इस वास्ते आप अपनी वृत्ति स्थिर करके उत्तर दीजिये।

इसके कुछ ही दिन बाद स्व० रटाटे जी दरवार में राजकीय कर्मकाण्डी के पद पर नियुक्त कर दिये गये।

स्थानीय काल भैरव के पास एक मकान में नवग्रहों की सलक्षण मूर्तियों का मन्दिर है। उस मन्दिर की एक मूर्ति खण्डित हो गई थी। उस मूर्ति की पुनः स्थापना के लिए रटाटे जी ने काशी के धर्मानुरागियों से एक लिखित निवेदन किया था जिसकी एक हस्तलिखित प्रति मराठी एवं हिन्दी में रटाटे जी के संग्रह में मिली है। पं० जी ने ही उक्त मन्दिर में मूर्तियों की स्थापना करवाई थी।

स्व० रटाटे जी के पत्रों में एक पत्र भरतपुर के चिरंजी लाल जी ब्रह्मचारी का प्राप्त हुआ है। उक्त पत्र से इन दोनों की सन्निकटता का आभास होता है।

अहमदाबाद से श्री कैलाश शंकर अथर्ववेदी का एक पत्र समिति को मिला है। अपने इस पत्र में आपने लिखा है—

"मैने अपने मातामह श्रीजयदेव जी एवं पिता श्री लाभ शंकर जी से आप (स्व० श्री रटाटे जी) की गुणगाथा श्रवण की है। तदुपरांत मेरे पर तो आप श्री की महती कृपा थी। आप श्री के स्वर्गवास हो जाने से अथर्ववेद की उन्नति होना मुश्किल है। लगता है अब अथर्ववेद की जड़ शिथिल पड़ जायेगी।"

श्रीयुत आदरणीय स्व० वेदमूर्ति रामचन्द्र शास्त्री रटाटे जी का स्मृति ग्रन्थ निकल रहा है बड़े सौभाग्य की बात है। बीस साल पहले हम यात्रा निमित्त से काशी आये थे, उस समय हमारी उनकी मुलाकात हुई। चर्चा के बाद हमे ज्ञात हुआ आप

पूर्ण गाणपत्य हैं। मार्गदर्शन के विषय में चर्चा हुई। उसके बाद सन् १९६३ के साल में जो मार्गदर्शन दिया उससे हमें बड़ा संतोष मिला और उन्ही की कृपा से आनंद कर रहे हैं उन्हे शतः शतः प्रणाम।

ब्रह्मचारी
चैतन्य स्वरूप गणपति स्वरूप
हारीज

पं० अग्निष्वात्तशास्त्री जी लिखते हैं आपसे सर्वप्रथम परिचय स० १९१३-१४ में ऋषीकेष में हुआ था। उन्हें सम्पूर्ण सद्शग्रन्थ ऋग्वेद सस्वर कंठाग्र था। उस समय तक उन्होंने सम्पूर्ण अथर्ववेद भी कंठाग्र कर लिया। अथर्ववेद का कार्य ये ही अकेले कर सकते थे। हजारों के बीच इनकी ध्वनि सुस्पष्ट सुनाई पड़ती थी। काशी के वैदिक ब्राह्मणों पर आपका विशेष प्रभाव था।

पण्ड्या जी लिखते हैं कि—श्री रटाटे जी को पाण्डित्यपूर्ण प्रतिभा पितृत्व की विरासत में मिली थी। एक बार श्री काले जी ने १४ वर्ष की अवस्था में आपको स्वाहाकार के लिये आज्ञा दी। उनकी अलौकिक बाल प्रतिभा को देख कर यजमान गद्‌गद् हो उठे। एक बार कुछ मनमौजी शिष्यों के साथ विन्ध्याचल यात्रा में जब गाड़ी स्टेशन से आगे चली गई तो आपने शिष्यों से चलती गाड़ी से कूद पड़ने को कहा और स्वयं भी कूद पड़े उस समय आप ८५ वर्ष के थे। आपको माँ का साक्षात्कार भी हुआ था। जिसका संकेत उसी समय आपने शिष्यों को दिया।

शिष्यैः सह वे० मू० रामचन्द्रशास्त्री
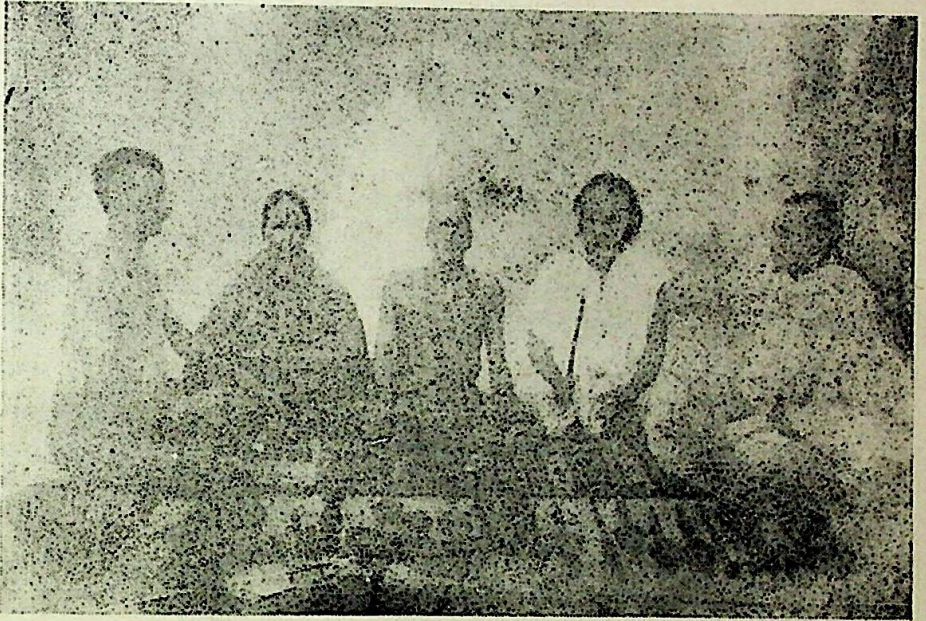
यज्ञपात्रैः समायुक्तो स्वशिष्यैश्च समन्वितः।
सशक्तिको वेदमूर्तिः राजते याज्ञिको बुधः॥

गु० व० वाल दीक्षित काले

जाताः शताब्द्यामस्यां ये ऋग्वेदीया द्विजोत्तमाः।
तेष्वयं प्रथमः काले प्रख्यातो बालदीक्षितः॥

परिशिष्ट

काशी की वैदिक एवं श्रौतादि परंपरा

ले० दा० वि० कालचिंट एम० ए० बी० एड० एम० म्यूझ०

वैदिक कहलाना अत्यन्त कठिन है। प्राचीन काल में विविध वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वाले को ही वैदिक कहा जाता था। यह अध्ययन केवल बुद्धिगत न होकर कण्ठगत होता था। शैशवावस्था से ही ब्राह्मण-पुत्रों की वाणी शुद्ध करने के प्रयत्न किये जाते थे। एतदर्थं इन्हें संस्कृत श्लोक पाणिनीय शिक्षा आदि पढ़ाई जाती थी। बालक को उपनयन के पूर्व वेदाङ्गो की शिक्षा दी जाती थी और बाद में वेद पढ़ाया जाता था। सामान्यतः १६ से १८ तक की अवस्था तक बालकों को वेद-ग्रन्थ कंठाग्र हो जाते थे। बाद में विकृति का अध्ययन होता था।

संपूर्ण वेद दश ग्रन्थो में विभाजित हैं। यथा-संहिता, ब्राह्मण और आरण्योपनिपद् शाखा कहलाती है। निरुक्त सूत्र (श्रोत-स्मार्त-धर्म) अष्टाध्यायी और शिक्षा[1] चतुष्टय इन सभी का अध्ययन करने वाले को दशग्रन्थी कहा जाता है। प्रसिद्ध है कि महाराष्ट्रियों का वेद मन्त्रों का उच्चारण अत्यन्त स्पष्ट, सुस्वर एवं सुमधुर होता है जा विशेषता अन्य जातियों में प्रायः अनुभूत नहीं होती। इसलिए पञ्चद्राविडेतर एतद्देशीय लोग महाराष्ट्रियों का लोहा मानते थे। वेद की परीक्षा महाराष्ट्रियों में ब्राह्मणभोजन एवं वसन्तपूजा के अवसरों पर होती थी। जिसमें ३-४ घंटे तक एकरंग उच्च स्वर में वैदिक मंत्रो को कहना पड़ता था। शास्त्री लोग भी वेद पढ़ते थे लेकिन वे अपने को विशुद्ध वैदिक तुल्य नहीं समझते थे। वे वेदाध्ययन पंच महायज्ञार्थ करते थे। वैदिक का एक स्वतन्त्र क्षेत्र और सम्मान था। काशी में लगभग ५ सौ वर्षों से महाराष्ट्रिय, परम्परागत निवासी रहे हैं लेकिन पेशवाओं के समय में वैदिकों का चरमोत्कर्ष हुआ था। काशी में वसन्तपूजा का प्रारम्भ पेशवाओं ने ही किया है तथा वेदोत्कर्षार्थं अनेक प्रकार के दान, वर्षासन तथा जागीरे भी दी थीं। पेशवाओं ने काशीस्थ पाँच मूर्धन्य वैदिको को पृथक् पृथक् १६ सहस्र स्वर्ण मुद्राओं से सम्मानित किया था। जिसमें तिलक एवं राम दीक्षित फडके आदि थे। शतवर्ष पूर्व यहाँ पाँच सौ वैदिको का जमघट था। आज भी काशी में जो वैदिक वर्तमान हैं उनके संबन्ध में स्पष्टतः यह कहावत चरितार्थ हो रही है कि 'खंडहर गवाही दे रहा इमारत बुलंद थी'।

१ पाणिनीय शिक्षा, लगध ज्योतिष, पिङ्गल छन्द, शौनकीय निघण्टु। उपर्युक्त इन सातों ग्रन्थों को गाथा कहते हैं। शिक्षा कल्प (सूत्र) व्याकरण, छन्द, ज्योतिष एवं निरुक्त इन्हें षडङ्ग कहते हैं।

वेद में यज्ञकाण्ड भी वर्णित है। तदनुसार यहाँ श्रौत-स्मार्त भी अपनी चरम सीमा पार कर चुके थे। यहाँ अनेक श्रौतयाग एवं ग्रन्थ भी लिखे गए।

मैं अब यहाँ कुछ विशिष्ट वैदिकों एवं श्रौत-स्मार्तियों का अति संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास कर रहा हूँ।

काशी में प्राचीन काल से ही वैदिकों की अनेक पाठशालाएँ होती थीं। जहाँ पर विद्यार्थी तैयार होते थे। इधर १०० वर्षों से ऐसी पाठशालाएं घर-घर थीं। लेकिन उनमें भी प्रमुख रूपसे ये पाठशालाएँ थीं।

ऋग्वेद १—श्री वे० मू० मामा पेण्डशे जी की पाठशाला—यह प्राचीन पाठशाला थी जो पक्के महाल में शीतला घाट के पास रतन फाटक पर स्थित थी। इस पाठशाला के प्रमुख वैदिक शिष्यों में वे० मू० गोपी नाथ भट आठवले—घनान्त दशग्रन्थी वैदिक थे। छोटी अवस्था में ही इन्होंने प्रणवपूर्वक पद-पारायण, जटापारायण और वृद्धावस्था में घनपारायण भी किया। आप श्रौत और स्मार्त भी जानते थे। आपका वंश परम्परागत तन्त्र एवं मन्त्र शास्त्री रहा है। इनका अन्त शतचण्डी अनुष्ठान में हवन का सप्तशती पाठ पढ़ते हुए हुआ। इनका वंश वर्तमान है।

इसी परम्परा के अन्य ये दो स्नातक थे—वे० मू० ढुण्ढिराज भट वेहेरे तथा बालकृष्ण भट खाण्डेकर।

२—वे० मू० दिनकर अण्णा जोशी पाठशाला—इसमें बालदीक्षित काले, रामकृष्ण जोशी, रामजी जोशी तथा विनायक दीक्षित जोशी जैसे पाँच पुरुषों ने परम्परया अध्यापन किया। यह पाठशाला पहिले शीतला घाट पर थी पश्चात् भटकचेरी पर स्थानान्तरित हुई।

वे० मू० दिनकर बालकृष्ण जोशीः—ज० १८१० ई० मृ० १८७७ ई० आपके पिता बालकृष्ण भट्ट जी को बड़ी आराधना करने के पश्चात् प्रौढ़ावस्था में एक दिव्य पुत्र प्राप्त हुआ जो भविष्य में वैदिक-जगत् के भीष्म पितामह सिद्ध हुए। आपको संपूर्ण शिक्षा-दीक्षा पिता के पास ही हुई। आपने एक पाठशाला स्थापित की जो चार पीढ़ियों तक बराबर चलती रही। आपके दो पुत्र थे रामकृष्ण एवं राम जी। एवं प्रिय शिष्य बाल दीक्षित काले। आपके ज्येष्ठ पुत्र अति बुद्धिमान् थे। दिनकर भट्टजी जब परलोक चलने लगे तो उन्होंने शिष्य बाल दीक्षित को दोनों पुत्र सौंप दिए तथा कहा—'गुरु दक्षिणा के रूप में तुम्हें इन्हें तैयार करना है'। जिसे बाल दी० ने सादर स्वीकार किया। दिनकर भट्ट जी विलक्षण प्रतिभा, स्वच्छन्दवृत्ति एवं सर्वजित वैदिकों में से थे।

वे० मू० बाल दी० काले—जी का आविर्भाव इस धरती पर कब हुआ यह ठीक ज्ञात नहीं है, सम्भवतः आपका प्राकट्य ब्रह्मावर्त में १८३८ ई० में हुआ है। आपके पूर्वज शास्त्री कहलाते थे। आपके पिताजी का नाम पं० हरिदत्त शास्त्री था। बाल दी० का पदान्त सदशग्रन्थों का अध्ययन ब्रह्मावर्त के धूपकर गुरुजी के पास हुआ था। क्रम के लिए योग्य गुरु की खोज में ये काशी आए। उस समय काशी में यह परम्परा थी कि बाहरी वैदिकों को बैठकों में जाकर चर्चा करनी पड़ती थी। तदनुसार आपने भी परम्परा का योग्य निर्वाह ही नहीं अपितु अपना वर्चस्व कायम किया। इसी सिलसिले में आप जोशी जी के पास भी गए थे। अन्ततोगत्वा आपने जोशी जी को ही अपना गुरु मनोनीत किया। उनके यहाँ जाने पर उन्होंने आपके सामने दो अनुवन्ध रखे १–बाल दी० 'तुम्हें यदि मेरे पास पढ़ना है तो अभी बने हुए पौए में से आधा कटोरा लगाना होगा। २—मैं तीसरी मंजिल से संथा दूँगा जो तुम्हे पहली मंजिल से सही २ रोकनी होगी। शिष्य ने बड़ी विनम्रता से तत्क्षण स्वीकार कर एवं कुछ ही महीनों में संपूर्ण क्रम कण्ठभूषित किया। बाद में गुरु जी की आज्ञा से पाठशाला भी चलाई। आपका सम्पूर्ण समय अध्ययन-अध्यापन में ही व्यतीत होता था। वे प्रति शिवरात्री को पैदल पंचकोशी एक दिन में करते थे। माघ कृष्ण एकादशी से तीन दिन में सूर्य की साक्षी में दश-ग्रन्थों का पारायण कर चतुर्दशी को प्रयाग के लिए पैदल प्रस्थान करते थे तथा अमावस्या के दिन वहाँ मुण्डन एवं श्राद्धादिक सम्पन्न कर प्रतिपद के सायंकाल में काशी लौट आते थे। आपने "ऐतरेय ब्राह्मण" पढ़ते समय गुरुके लिए जलार्थ स्वपरिश्रम से कुआँ खोद दिया था। आप आहिताग्नि थे। बारह-बारह सौ सूर्य नमस्कार और बारह सौ गायत्री जप करके छात्रों के लिए दो सौ गगरा कूपोदक निकालते थे। स्व० रटाटे जी जब अपने इन सिद्धान्त के पक्के एवं दयालु गुरु जी के आँखों देखे संस्मरण सुनाते तो उनके नेत्रों से आदराश्रु निकलते थे एवं वे सहसा कह उठते थे कि अरे वे हम छात्रों के माता-पिता थे ऐसे पुरुष अब नहीं होंगे।

वे० मू० रामकृष्ण जोशी :—का संपूर्ण अध्ययन बाल दी० के पास हुआ आप एक पाठी थे आप अल्पकाल में ही स्वर्गस्थ हो गए। आपने बाल दी० के पश्चात् पाठशाला में पढ़ाया था।

वे० मू० रामजी जोशी :—आप बड़े ही सीधे स्वभाव के कर्मठ वैदिक थे। आपने भी इस पाठशाला में अनेक योग्य वैदिक तैयार किए।

वे० मू० विनायक नारायण दीक्षित जोशी :—ज० १८८९ ई० मृ० १९४९ ई० इन्होंने अपने मातुल भिकं भट्ट पटवर्धन जी से दशग्रन्थों का १८ वर्ष की अवस्था में अध्ययन कर लिया था। आप दिनकर अण्णा जोशी की पाठशाला में अन्तिम पीढ़ी

के अध्यापक नियुक्त हुए। आपके दोनों पुत्र वेद पढ़े, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र वेणीमाधव दी० युवावस्था में ही गत हुए। इस समय नारायण (बाळ) दी० परम्परा निभा रहे हैं।

वे० मू० विनायक भट्ट पाँचगाँवकर :—आपने भी जटान्त सदशग्रन्थ तैयार किये थे। ये स्वतन्त्र वृत्ति के व्यक्ति थे। आपके ज्येष्ठ पुत्र बाळं भट्ट क्रमान्त वैदिक हैं।

वे० मू० रामचन्द्र शास्त्री रटाटे :—इस ग्रन्थ के स्मृति नायक ही हैं।

वे० मू० बाबू भट्ट रामडोहकर :—परम्परागत वैदिक कुलोत्पन्न बाबू भट जी ने क्रमान्त अध्ययन किया था। आपका आचरण अत्यन्त अनुकरणीय था। आपके ज्येष्ठ पुत्र नागेश्वर भट दशग्रन्थ पढ़े हैं।

वे० मू० सोन दी० काले :—आप बाळ दी० के एकमात्र पुत्र थे। क्रमान्त अध्ययन किया था। सोमयाग भी किया था।

वे० मू० चुन्नीलाल दवे—खेलावाड़ जाति के थे। वे० मू० बाळ दी० की मन्त्रशास्त्र की विद्या एकमात्र आपको ही मिली थी। आप दशग्रन्थी वैदिक थे।

वे० मू० कृष्ण दी० महाडकर :—इन्होंने जटान्त सदशग्रन्थ का अध्ययन किया था। अध्ययन के पश्चात् उपस्थिति कठिन होती है इसलिए आपने बाद में भी विशेष तैयारी की थी। वसन्तपूजा अर्थात् मन्त्रजागरण में आपका विशेष प्रभाव था। आपने हैदराबाद में जटा पारायण किया था। आपके पुत्रों में से दामोदर दी० अच्छे वैदिक थे।

रामकृष्ण दी० फडके :—प्रसिद्ध वैदिक कुलोत्पन्न फडके जी सुस्पष्ट एवं अत्यन्त सुस्वर पाठ करने के लिए अपने समय के एकमात्र वैदिक थे। गुरु बाळ दी० ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या का विवाह आपसे कर दिया। आपने पुण्यपत्तन एवं ग्वालियर में जटा पारायण किया था। पूना में आपको वसन्त पूजा में सम्मानपूर्वक किमदी दुशाला ओढ़ाया गया तथा वहाँ के लोगों ने आपके सम्बन्ध में यह शब्द कहे "अभो तक उत्तर भारत से आकर दक्षिण में सम्मान प्राप्त करने वाले एकमात्र फडके जी ही निकले" दक्षिण भारत में सम्मान प्राप्त करना कोई खेल नहीं है। ये बड़े मिलनसार व्यक्ति थे।

आपके ज्येष्ठ पुत्र विनायक दी० पिता जी से भी विशेष बुद्धिमान् थे। एकबार ग्वालियर में पिता जी की कुछ अस्वस्थता देख "चक्री" की वसन्त पूजा में स्वयं गए और सभी को परास्त कर दिया। श्रौत-स्मार्त के योग्य ज्ञाता विनायक दी० को विद्या क्षेत्र की हरएक बात तेजी से चूभती थी। एक विशेष घटना पर आपने सिद्धान्त कौमुदी तैयार की, इतना ही नहीं आप विविध कलाओं के भी जानकार थे। जैसे :—चित्र-कला, काष्ठकला, प्रस्तरकला आदि। आप ४०-४५ की स्वल्प आयु में दिवंगत हुए।

आपके पश्चात् आपके अनुज नारायण दी० ने बड़ी लगन से तैयारी प्रारम्भ की। आप दिन रात पढ़ते ही रहते हैं। आपने ध्रुपद का भी उत्तम अध्ययन किया है।

वे० मू० कृष्णं भट्ट पुराणिक :—काशी का पुराना घराना धर्माधिकारी और पुराणिक जी का था। कृष्णं भट्ट जी दशग्रन्थ क्रमान्त अध्ययन किए थे। यह अच्छे स्मार्तकर्मकाण्डी भी थे। आप 'क्रम' बहुत अच्छा कहते थे। प्राचीन याज्ञिकी इनके साथ समाप्त हो गई। आपके वंश में नाना शास्त्री ने 'प्रति वार्षिक पूजा-कथा संग्रह' ग्रन्थ लिखा है। इनके पुत्र राजाराम भट्ट जी भी अच्छे वैदिकों में थे। इनका वंश चल रहा है।

वे० मू० रामकृष्ण भट्ट गोरे (जोशी)—यह भी दशग्रन्थी बुद्धिमान् व्यक्ति थे। इनको विकृति संधि एवं कुण्डमण्डप का बहुत अच्छा ज्ञान था। इनके पुत्र दत्तात्रय रामकृष्ण गोरे (जोशी) मथुरा में ऋग्वेद के अध्यापक हैं।

वैदिक भूषण वे० मू० गोपाल भट्ट गोरे (जोशी)—इन्होंने काशी में घनान्त दशग्रन्थ का अध्ययन किया। इनके गुरु रामजी जोशी थे। इन्होंने बडौदा में जटा पारायण और काशी में गायत्री महाराज के यहाँ संपूर्ण दशग्रन्थों का पारायण किया। ये अल्पायुषी थे। इनके पुत्र अच्छे शिक्षित हैं।

वे० मू० सोमनाथ जी सोलापुरकर :—आप भी दशग्रन्थी वैदिक थे। आपने संपूर्ण संहिता का पारायण काशी में तथा बाहर भी किया। 'पुण्यपत्तन' में इनका सत्कार भी हुआ। एकबार आपने तैलंग स्वामी के मठ में उनकी पुण्यतिथि पर एक बैठक में (२१ घण्टे में) सम्पूर्ण संहितापारायण किया था। इस प्रकार का कार्य इधर शत वर्षों में किसी ने न किया न सम्भव ही है।

वे० मू० गोविन्दाचार्य सोलापुरकर—आप शान्तचित्त के जटान्त दशग्रन्थ अध्ययन किए हुए वैदिक थे। खैरीगढ़ में संपूर्ण ऋक्संहिता स्वाहाकार इन्होंने जैसा कहा वैसा आज कोई भी नहीं कह सकता। ये अल्पायु थे।

वे० मू० वामन गंगाधर देव :—(सन् १८८९–१९३९ ई०) आप भी ऋग्वेद के दशग्रन्थी अच्छे वैदिक थे। आपके दोनों पुत्र—डा० श्रीकृष्ण देव और विश्वनाथ देव श्रेष्ठ वैदिकों में हैं।

इसी परम्परा के अन्य शिष्य–आत्माराम आचवल, विष्णु नारायण (पाध्ये) गुर्जर, विरेश्वर भट्ट रामडोहकर, राजाराम भट पटवर्धन, गोपीनाथ भट अरावकर, काशीनाथ भट महाबलेश्वरकर प्राध्यापक (चिंचवड), बेट्ठ पुराणिक, दामोदर भट जोशी, त्र्यम्बक भट, विनायक भट पुराणिक, गणेश भट पुराणिक, विनायक भट भोलपुरकर, सोनशास्त्री पाटनकर, दत्तु दी० पुरोहित, डॉ० श्रीकृष्ण वामन देव दत्तात्रय रामकृष्ण गोरे।

२ बालं भट्ट सप्रे की पाठशाला :—इनके दो शिष्य अत्यन्त ख्यातनाम हुए। विश्वनाथ (बबूजी) कोटिभास्कर तथा महादेव बालकृष्ण सप्रे।

४ डोंगरे जी की पाठशाला—ब्रह्माघाटस्थित शेणावाई मठ। इस पाठशाला में वे० मू० भिकंभट पटवर्धन तथा अनन्त (बाबागुरु) पटवर्धन अध्यापक रहे हैं।

वे० मू० विनायक भट्ट जी डोंगरे—(सन् १८३०-१६०४ ई०) इनका ऋग्वेद का अध्ययन ब्रह्मावर्त में तत्सत् गुरु के पास हुआ। विनायक भट्ट जी ने गुरु आज्ञानुसार काशी आकर वेद पाठशाला आरंभ की और सैकड़ों शिष्यों को पढ़ाया। यह परोपकारी भी थे। वैदिक मण्डली में इनका बहुत सम्मान था और इन्हें 'गुरुजी' के नाम से ही सम्बोधित किया जाता था। काशीनाथ भट हर्डीकर, सोन भट आचवल, महादेव दीक्षित चितले, रामचन्द्र खेड़ावाल, नारायण दी० जोशी एवं भिकंभट पटवर्धन इनके वरिष्ठ शिष्यों में थे।

घनसम्राट् काशीनाथ भट्ट हर्डीकर—आप वे० मू० विनायक भट्ट डोंगरे जी के शिष्य थे। इन्होंने वे० मू० गजानन पाटनकर से जटा, घन, इन विकृतियों का मार्मिक अध्ययन किया। इनकी वाणी द्रुत और स्पष्ट थी। वे० मू० डोंगरे जी को पढ़ाते समय कोई शंका होने पर वह हर्डीकर जी से ही पूछते थे। इससे विशेषाधिकार का स्पष्टीकरण होता है। काशीनाथ जी महान् तपोनिष्ठ वैदिक थे। आप हैदराबाद की सभा में विभिन्न वैदिकों के बीच एकमात्र घनान्तो सिद्ध हुए। आप गणपति के विशिष्ट उपासक थे। इनके पुत्र वे० मू० गंगाधर भट्ट जी दशग्रन्थी वैदिक थे। इनका वंश आज नहीं है।

वे० मू० श्री भिकंभट पटवर्धन—स्व० श्री व्यंकटेश उर्फ भिकंभट जी स्वयं महान् विद्वान् होते हुए भी विद्यादान में अति उदार थे। इन्होंने हजारों शिष्यों को पढाया। इन्हें 'वैदिक महर्षि' कहना अनुचित न होगा।

वे० मू० अनन्तराम (बाबागुरु) पटवर्धन—आपने ऋग्वेद का अध्ययन पिता के पास किया। आप इस समय काशी के उत्कृष्ट वैदिकों में वर्तमान है। आप सांगवेद विद्यालय में वेदाध्यापक भी हैं।

वे० मू० बालकृष्ण महादेव सप्रे—इनका ऋग्वेद का संपूर्ण अध्ययन वे० मू० भिकंभट पटवर्धन के पास हुआ था। आपने दशग्रन्थों की क्रमान्त परीक्षा इंदौर में दी और प्रथम स्थान प्राप्त किया। बिना त्रुटि के वेदोच्चारण करना आपकी विशेषता है। ये एकक्षण भी व्यर्थ नहीं बिताते। विश्वनाथ देव जी ने अपने घन की तैयारी आपही के पास की है। आप बड़े मिलनसार एवं परोपकारी हैं। कोल्हापुर में आपने घनकी परीक्षा देकर प्रथम स्थान प्राप्त किया था। :आपने अनेक शिष्य तैयार किये हैं।

वे० शा० स० गणपति रामकृष्ण हेब्बार—आपका संपूर्ण जीवन अध्ययनाध्यापन में बीत रहा है। आपने ऋग्वेद का अध्ययन वे० मू० भिकंभट पटवर्धन से किया है। आप कई शास्त्रों के साथ-साथ कई आधुनिक भाषाओं के विद्वान् हैं। आपने न्यायादि कठिन शास्त्रों का अध्ययन पण्डिराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ जी से किया है। आप महायोगी, तपस्वी और महापुरुष हैं।

श्री डोगरे जी की पाठशाला के अन्य शिष्य—दत्तु दीक्षित पानगाँवकर, मुकुन्द देवस्थली, गंगाधर भट्ट हर्डीकर, गणपति पित्रे, बाबू पाध्ये, रघुनाथ भट केलकर, गोपाल भट्ट फणसलकर, (ब्र० भू० वेदानन्दस्वामी) विष्णु भट केलकर, सीताराम दी० फडके, विनायक दीक्षित जोशी, गणेश भट तोत्रे, (बाबू) ढुण्ढिराज बालकृष्ण देव, गोविन्द दीक्षित पुरोहित, राजाराम वासुदेव भट खाण्डेकर, पुरुषोत्तम भट पाँचगावकर, केशव भट प्रभुणे, नारायण भट तोत्रे, बाबू दीक्षित चितले, सोन भट देव, विश्वनाथ भुस्कुटे, बाबू भट बामोरीकर, गंगाधर भट मराठे (लक्कड), विश्वनाथ दीक्षित पाँचगावकर, शम्भु भट पाध्ये, विष्णु अण्णा पाटणकर, गणपति पाटनकर, सदाशिव भट करमरकर, सखाराम भट अयाचित, राजाराम भट अयाचित, अनन्तराम पन्त पुन्ताम्बेकर, गणपति देव रंगनाथ भट जोशी, यशवन्त अनन्त पटवर्धन, विश्वनाथ वामन देव (ऋग्वेदाचार्य, घनपाठी) प्रभाकर केलकर और राजाराम घुले।

५ वे० मू० विनायक भट काले की पाठशाला—भैरवनाथ स्थित चमरिया गली ! यह पाठशाला कुछ ही काल में बन्द हो गई। इसमें अग्रलिखित वैदिक तैयार हुए—वे० मू० गोपीनाथ भट्ट आठवले (आप का विवरण पीछे आ गया है) बैजनाथ भट्ट रायकर, गणेश भट्ट जोशी, बाबू दी० जडे। हरिकृष्ण मोघे। भाऊ कात्रे।

वे० मू० बाबू दीक्षित जडे—आप का घराना वेद, श्रौतस्मार्त और तंत्र के लिए प्रसिद्ध था। इनके पिता रामचन्द्र दीक्षित जड़े अधिकारी पुरुष थे। इनके यहाँ वेद, श्रौतस्मार्त एवं तन्त्र की असाधारण और अलभ्य पुस्तकें थीं। बाबू दीक्षित जी प्रत्येक प्रश्न का उत्तर सटीक देते थे। यही उनके विद्वत्ता का परिचायक था। आप दरभंगा पाठशाला में अध्यापक थे।

वे० मू० वैजनाथ भट्ट रायकर—आप क्रमान्त दशग्रन्थ अध्ययन किए हुए उत्तम वैदिक थे। आप श्रौत-स्मार्त, उत्तम कर्मकाण्ड एवं सामगान के पूर्ण विद्वान् थे। इनका कन्यावंश वर्तमान हैं।

वे० मू० गणेश भट्ट जोशी—आपने भा० दी० पानगाँवकर से श्रौत स्मार्त विषय का और विनायक भट्ट काले के पास क्रमान्त अध्ययन किया था। आप श्रौत स्मार्त एवं गणित की विशेष मार्मिक बातों को जानते थे। दुर्भाग्य से आप किसी शिष्य को तैयार न कर सके। इनका वंश विद्यमान है।

६ रामचन्द्र भट्ट ललित की पाठशाला—पथर गली में—इसमें भी अत्यल्प छात्र ही तैयार हुए। भैया पेंढ़ारकर, हरि भाऊ पेंढ़ारकर, (इन दोनों का प्रारम्भिक अध्ययन वे० मू० पटवर्धन जी के यहाँ हुआ) दामोदर सोमण। मुकुन्द भट्ट सप्रे।

७ वे० मू० काशीनाथ भट्ट हडों कर की पाठशाला—भट्टकचेरी स्थित कानभट्ट की खोली में, ढवले का वाड़ा। काशीनाथ भट्ट जी के पश्चात् इनके सुपुत्र गंगाधर भट्ट जी ने भी अन्त तक इसी पाठशाला में अध्यापन किया। इस पाठशाला में अग्रलिखित वैदिक तैयार हुए। गोपाल भट्ट केलकर, विनायकी दीक्षित फडके, रामचन्द्र भट्ट आठवले, चिन्तामणि दीक्षित-फडके, नारायण दी० फडके, रामेश्वर भट कवि, शम्भो केलकर, गंगाधर रामडोह्कर, दामोदर शास्त्री केलकर,

८ सोनशास्त्री पाटनकर की पाठशाला—सांगवेदविद्यालय द्वार संचालित भट्ट कचेरी पर स्थित थी।

९ रामचन्द्र भट्ट खेलावाड़ की पाठशाला—सूत टोला।

कृष्णयजुर्वेद, तैत्तिरीय शाखा—ऋग्वेद के पश्चात् यजुर्वेद का स्थान आता है। चरणव्यूह के अनुसार यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ तथा महाभाष्यकारानुसार १०१ शाखाओं के होने का विवरण उपलब्ध होता है। इधर सौ वर्षों से काशी में कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के हिरण्यकेशी, सत्याषाढ़ी, आपस्तम्भी, बौधायनी एवं भारद्वाजी सूत्रों के विद्वान् हुए हैं।

यहाँ कतिपय परम्परागत पाठशालाओं का विवरण दिया जा रहा है।

१ वे० शा० सं० पं० राजाराम शास्त्री कालेंकर—(ज० सं० १८३३-मृ० सं० १९१७) की पाठशाला, घासीटोला। कृष्णयजुर्वेदीय तैतिरीय शाखाध्यायी वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न कालेंकरजी का पूर्व उपनाम अभ्यंकर था। यज्ञोपवीतोपरान्त दश वर्ष की बाल्यावस्था में ही आपके पिता श्रीगोविन्द शास्त्री ने आपको तत्कालीन "काश्यामेकः काशीनाथः" उक्ति को चरितार्थ करनेवाले, पं० काशीनाथ शास्त्री अष्टपुत्रे जी के चरणों में व्याकरणाध्यपनार्थ सौंप कर दिवंगत हुए। आपने अपने परमगुरु श्रीजगन्नाथ शास्त्री से भी अध्ययन किया था। आप समस्त विशिष्ट विद्याओं में पारंगत थे साथ में मल्लविद्या में भी आप पीछे नहीं थे। आपके शिष्यों में श्रीकृष्णानंद सरस्वती, तथा पं० बालशास्त्री विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके यहाँ हर समय श्रोत-स्मार्त की ही चर्चा चलती थी। सर, जाँन साहब ने आपको भारतदेशीय धर्मशास्त्र सम्मति दानार्थ विशिष्ट पद पर नियुक्त किया था। सर बॉलन टाइन महोदय ने काशी राजकीय महाविद्यालय में 'सांख्य शास्त्राध्यापक' पद पर आपको नियुक्त किया था। श्रौत एवं सपरिष्कार व्याकरण पद्धति के आप विशिष्ट विद्वान् थे।

२. वे० मू० श्रीकृष्ण भट देवधर की पाठशाला, रतन फाटक

आपका परिचय हमें प्राप्त नहीं हो सका है, फिर भी इस बात को पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अग्रिम सभी पाठशालाएँ आपकी ही अनुचर थीं। इसीसे आपके महत्व का ज्ञान हो जाता है।

३. वे० मू० बालकृष्ण भट नेने की पाठशाला, रतन फाटक

इस पाठशाला के शिष्यगण—भिकू दीक्षित लेले, पं० रुद्रंभट्ट, माधव भट नेने, गोपाल शा० नेने, शंकर शा० द्रविड, गोविन्द शा० द्रविड, गोविन्द भट मेहेंदले, माधव दी० ओक, भोण भट्ट मैसूरकर, वासुदेवदी० तोरो, बाबा दी० ओक, राम दी० ओक, हर भट गोडबोले, राजाराम भट्ट लेले, रामदी० तोरो, मोरभट्ट वर्कले, मणिराम भट चांदेकर, वासुदेव भट लेले, महादेव भट लेले, काशीनाथ शा० साठे, अप्पा दी० रानाडे, रघुनाथ भट खरे, गोविन्द भट दाते, जग्गू भट गद्रे, बालकृष्ण शा० बापट, हरभट व्यास, काशीनाथ बालं भट गोडबोले, लक्ष्मण भट शिघोरे, नाना भट शिघोरे, कृष्णं भट शिघोरे, हर भट वैशंपायन, गोविन्द भट एवं नारायण भट वैशंपायन।

उपर्युक्त सभी पंचग्रन्थी घनान्त और श्रौत-स्मार्त के पूर्ण विद्वान् थे।

४. वे० मू० भिकू दी० लेले की पाठशाला—वे० मू० आहिताग्नि वेणी-माधव (भिकूदीक्षित) विद्याधर लेले (ज० शके १७६०—मृ० शके १८४०) आपका कृष्णयजुर्वेद का क्रमान्त अध्ययन हुआ था। इन्हें श्रौत स्मार्त कर्म का भी अच्छा ज्ञान हुआ था। ये अग्निहोत्री भी थे। आपने सैकड़ों शिष्यों को तैयार किया जिनमें प्रमुख नाम इस प्रकार हैं।

भैया गुरु दाते, कृष्ण दीक्षित बापट, गोविन्द दी० बापट, बालंभट खरे, नाना दाते, वासुदेव भट देवजी राम भट तोरो गोपाल भट देव, राम भट देव, माधव भट गोखले, वासुदेव भट तोरो, राम भट जी तैलंग, गोपूनाना शारंगपाणी, अण्णा शास्त्री साठे, विठ्ठल दी० लेले, राधाकृष्ण भट तैलंगी, कृष्ण भट खरे, गंगाधर भट लेले, नारायण शास्त्री पालंदे, बाबू भट दाते, मुकुन्द दी० ओक, दामोदर भट दाते, रामकृष्ण भट गोड़बोले, दामोदर भट पायगुण्डे, विश्वनाथ भट साठे, परशुराम भट लेले, काशीनाथ भट वर्कले, सखाराम समुद्रकर, बालंभट तैलंग, गोविन्द भट लेले, माधव भट गंगाधर भट चांदेकर, लक्ष्मीकान्त (अक्कू) देव आचार्य, बाबू भट वर्कले, करंदीकर, श्रीधर भट गोडबोले, गणेश भट (सोमनाथ) बापट, कृष्ण भट बापट।

५. वे० मू० बाबू दी० यज्ञंबारु की पाठशाला—क्षेमेश्वरघाट-आप अच्छे श्रौती थे। आपके अनेक शिष्यों में से सीताराम प्रयाग वासी तथा गजानन जोशी मुख्य थे।

६. चन्द्रशेखर शा० द्रविड की पाठशाला—दूध विनायक। राम शा० वर्कले, मणिजी द्राविड़ इस पाठशाला के शिष्यों में थे।

७. वे० मू० रामभ० जी देव की पाठशाला—वे० मू० सोभनाथ भट्ट वापट जी ने अपने अन्य साथियों के साथ शेष अध्ययन इसी पाठशाला में किया था।

८. वे० मू० अनंतराम भट्ट गोड़वोले की पाठशाला—बीबीहटिया—इसमें बहुत से शिष्य तैयार हुए। आप मल्लविद्या में विशेषकर मल्लखंभ के सर्व-प्रधान आचार्य थे।

९. वे० मू० गणेश भट वापट की पाठशाला—आंग्रेवाड़ा। शिष्य-वासुदेव दी० बापट० वासुदेव भ० लेले आदि

१०. वे० मू० सोमनाथ भट वापट की पाठशाला—कान भ० की खोली। यह पाठशाला अभी भी विद्यमान है। आपने कई शिष्यों को तैयार किया और कर रहे हैं। श्रौत स्मार्त परम्परा के आप एक मात्र विद्वान् हैं। आपने अपने घर की साम गान की परम्परा अभी तक अक्षुण्ण बना रक्खी है। शिष्य—चिन्तामणि पालंदे, नारायण भट दातार, भास्कर भट वैशंपायन।

वे० मू० गंगाधर राजाराम लेले—(ज० शके १८१२–मृ० शके १८७३—आपके पिता भी अच्छे वैदिक थे। इनके गुरु वे० मू० भिकू दीक्षित लेले थे। आपने कई परीक्षाएँ पास की और पुरस्कृत भी हुए थे। इन्होंने पद और जटा के पारायण कई बार किए। आपका अनेक बार सम्मान भी हुआ। आपका वंश वर्तमान है।

वे० शा० सं० काशीनाथ विश्वनाथ साठे—(सन् १८५०–१९२६ ई०) आपका जन्म सांगली में हुआ था। वाद में यह काशी आए और यहाँ अध्ययन कार्य किया।

वे० मू० मोरेश्वर भट वर्कले—आप कृष्ण यजुर्वेद के सर्वोच्च वैदिक थे। यह अच्छे सामवेदी भी थे। श्रौतस्मार्त कर्मकाण्ड का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। इनके पुत्र वाबू वर्कले बड़े उत्कृष्ट वैदिक थे, जो अल्पावस्था में चल वसे। दूसरे पुत्र संगीताध्यापक हैं।

शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनीशाखा के वैदिक

प्रभाकर भ० गोडसे
बालकृष्ण भ० गोडसे,
गणेश शास्त्री गोडसे
नारायण भ० व्यवहारे
मङ्गलेश्वर पाठक पञ्चानन
चिन्तामणि देव बुचके
चिन्तामणि दीक्षित (प्रयागवासी)
वहिरं भ० ओंढेकर
वामन भट ओंढेकर
नारायण भट ओंढेकर
रघुनाथ भट ओंढेकर
जयराम शास्त्री जोशी
केशव भ० काले
नारायण भ० काले
आत्माराम जी निर्मले
नारायण भ० चित्रकूटकर
गौरीनाथ दीक्षित दावजी भ०
राजा दी० दिवेकर
विश्वनाथ भ० चाँन्देकर
भिकं भ० डोलहारे
राजाभाऊ खेचरे
लक्ष्मण भ० अन्यार्थी
नामदेव जी पातुरकर
हरिभाऊ पातुरकर
गणेश भ० वड़े
कुन्दन जी मिश्र
वब्बू पाठक पेड़गाँव कर
रामचन्द्र पाठक कावले
गोपीनाथ भट भिकं भट
बद्रीनाथ गणोरकर

गोपाल भ० वड़े
जगन्नाथ भ० कोतुलकर
गंगाधर जी कर्पे
गणेश भ० (वब्बूजी) जी निर्मले
महादेव भ० वाजपेयी
गंगाधर भ० वाजपेयी
आत्माराम भ० वाजपेयी
रामचन्द्र भ० काळे
गोपाल भट वादळ
सोमनाथ पाठक सप्तर्षि
गणेश दीक्षित दावजी भट
बालकृष्ण दीक्षित दावजी भ०
वालं भ० औंढेकर
काशीनाथ भ० औंढेकर
भैय्या जी वाजपेयी
रामचन्द्र हरिभाऊ पातुरकर
विश्वनाथ भ० गणोरकर
महादेव भ० आडकर
महादेव भ० पाँचगाँवकर
गोपीनाथ भ० पाँचवाँवकर
हरिराम भ० कावले
बाबू भ० काले
शम्भू भ० भुसारी
शम्भू जी मण्डलीकर
गोविन्द रामजी, बंसीधर जी,
आ० मन्नोजी मिश्र
राम भ० वाशिंकर
मणिराम भट औंढेकर
काशीनाथ भट पातुरकर
रमानाथ कंठाले

यजुर्वेदीय विद्वानों से यजुः शाखाध्यायियों का परिचय पूछने पर भी प्राप्त—न हो सका, अतः नाम मात्र ही दिये जा रहे हैं ।

गणेश भट महाजन
गणेश भट मार्कण्डेय
कृष्ण भट रशिंकर
दामोदर भट पातुरकर
लक्ष्मण भट अटाले
विद्यानाथ उर्फ छोटू पाठक
नारायण भट कण्ठाले
सखाराम दी० दाऊजीभट
राम भाऊ जोशी
दत्तू जी मण्डलीकर
विनायक भ० वाजपेयी
ढुण्ढिराज भट वाजपेयी
काशीनाथ भट गोडसे
गंगाधर भट चाँदेकर
म. म. प्रभुदत्त गौड,
म. म. विद्याधर जी गौड
शिवदत्त जी
वेणी रामजी
श्रीनाथजी
नरसिंह जी

मङ्गलेश्वर बादल
मार्तण्ड शास्त्री घोड़ेकर (वेदाचा
काशीनाथ भट मंत्रथकर
आत्माराम जी नेवासकर
राजाराम भट निर्मले
श्रीकृष्ण भट गोडसे
रामनाथ जी सारस्वत
गंगाधर पन्त पर्वतीय
हीरालाल जी औदिच्य
नारायण जी सारस्वत
लक्ष्मीकान्त दाउजी भट
काशीनाथ भट चाँदेकर
अमरनाथ जैतली
रामचन्द्र भट वाबू भट खुण्टे
द्वारकादत्त व्यास
गयादत्त व्यास
पुरुषोत्तम पाण्डे
दामोदर पाण्डे
अग्निनारायण जी
देवीप्रसाद जी

वै० प्र० कृपाकृष्ण जानी—मृ० सं० १९२० कात्यायन श्रौत-सूत्र के मर्मज्ञ। इसी परम्परा में-सखाराम पाठक, धर्माधिकारी, चिन्तामणि दी० नमस्कारे, नानाजी मेहेरकर, पं० जगन्नाथ सप्तर्शि, श्रीविष्णु जानी याज्ञिक, श्रीगौरीनाथ दी० और गणेश दी० दाउजी भट हुए हैं। इस परम्पराने काशी में शतपथ की रक्षा की है।

श्री नरहरि भट सप्तर्षि (पाठक) भी कात्यायन श्रौतसूत्र के महान् ज्ञाता थे आपने 'श्रौतनारसिंह' एवं 'संस्कार भास्कर' ग्रन्थ—लिखे हैं। आपका वंश श्रौत के लिये प्रसिद्ध है।

गणेश शास्त्री गोडसे—आपका वेद, शास्त्र, एवं श्रौत-स्मार्त पर समान अधिकार था। आप अयोध्यानरेश के दरबार को सुशोभित करते थे। आज भी इस वंश में प्रतिभासम्पन्न विद्वान् विद्यमान हैं।

गणेश दी० जावजी भट जी का वंश भी श्रौत एवं अध्यापनार्थ प्रसिद्ध है।

वाराणसी के काण्वशाखीय वैदिकों का संक्षिप्त परिचय

काण्व शाखा के अनेक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। जिनमें सुरेश्वराचार्य भी थे। भगवान् श्रीकृष्ण भी काण्वानुयायी थे, जिसका उल्लेख श्रीधराचार्य ने अपनी भागवत की टीका में किया है। 'काण्वत्वादनुदितहोमः' राजसूयादि में आध्वर्यव कर्म काण्वानुसारी हुआ था। दक्षिणद्वार निर्णय ग्रन्थान्तरोंमें पढ़ने में आता ही है। इधर सौ वर्षों से लगभग २५-३० घनपाठी हुए हैं। जिनके नाम मात्र यहाँ दिए जा रहे हैं।

वेणी राम जी चौकले, सरदार रंगभट खोड, सरदार गोपीनाथ भट खोड (घनपाठी), आपने नागपुर, उम्मेड, पवनी, चन्द्रपुर, वणी, वह्राड इत्यादि स्थानों में विजय प्राप्त की। रामभाऊ उत्तरेश्वरी उत्तम घनपाठी थे। आपने अपने घर पर पाठशाला चलाई।

महादेव भट पेठकर (घनपाठी) आपकी घरेलू पाठशाला में ४०–५० छात्र पढ़ते थे। काशी नाथ भट घनसांगलीकर (अंध) उत्तम घनपाठी थे।

साधारण घनपाठी ढोली, तांबोली, राजणकर, अभालदेव, सात्विक, उवही, क्षीरसागर, गोपालभट क्षीरसागर (त्रिपदी) लक्ष्मण भट क्षीरसागर, (त्रिपदी) गणेश शास्त्री व्याकरणाचार्य, कृष्ण शास्त्री साहित्याचार्य, कृष्णंभट्ट बालापुरकर (त्रिपदी) अनन्तराम भट सालोडकर, भिकंभट पेठकर, (घनपाठी) आपने भी पूर्वजों की पाठशाला को और समृद्ध किया।

नारायण भट उत्तरेश्वरी, श्रौत–स्मार्त (घनपाठी) मारुति भट आचार्य, पौराणिक, श्रौत-स्मार्ती घनपाठी एवं षट् दर्शनों के भी ज्ञाता थे। आपने तिरुपति और पंढरपुर में 'शतपथ' का पारायण किया और भी अनेक स्थानों पर वेदपारायण किए। आपने सहदेवपुर जि० बडौदा तथा काशी में वेदपाठशाला स्थापित कर सैकड़ों छात्रों को तैयार किया।

७५ वर्ष पूर्व कीर्तनाचार्य भास्कर बोआ फुलंबरीकर (शाखापाठी) थे।

आलती, गंगाधर भट भालेराव (त्रिपदी) महादेव शास्त्री खणंग, रामजी गेठे, लक्ष्मीनाथ जी गेठे, नारायण राव गेठे—ये काण्व शाखियों में बहुत बड़े जमीनदार थे। जिला कचहरी इन्हीं की जमीनदारी में है।

वर्तमान मण्डली में—वे० शा० सं० रामाचार्य पुराणिक (घनपाठी) आपने काशीस्थ सांगवेद विद्यालय के माध्यम से अनेक छात्र तैयार किये हैं जिनमें आपके सुपुत्र श्रीलक्ष्मीकान्त भी हैं। गोविन्द भट पोखरकर। आप सदाचार सम्पन्न वैदिक हैं। आप बयालीस वर्षों से तन-मन-धन पूर्वक तैलंग स्वामी की सेवा कर रहे हैं। वे० शा० सं० बालाजी पेठकर (घनपाठी) तथा लक्ष्मीकान्त खणङ्ग (शाखापाठी) हैं।

सामवेद—राणायनी शाखा वे० मू० बालशास्त्री बापट—की पाठशाला—आपने सैकड़ों शिष्य तैयार किये काशी में वर्तमान सभी सामगगण आपही की परम्परा के हैं। आप श्रेष्ठ उपासक भी थे।

सामवेद कौथुमी शाखा—इस शाखा के कुछ प्रमुख वंश रामघाट निवासी नागर वंशोत्पन्न गणेशगुरु एवं जनार्दन जी सामवेद, एवं तन्त्र में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। श्री जनार्दन जी तो महाराज कश्मीर, रणवीर सिंह के मित्रकल्प ही थे। कश्मीर नरेश की दैवी कृपा से उस वंश में दो पुत्र हुवे—जिनमें एक का नाम रणवीर दत्त ही रखा गया। आपने अनेक पुस्तकें लिखीं। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री दुर्गादत्त 'सन्मार्ग' में सम्पादक एवं स्थानीय गोयनका विद्यालय में अध्यापक रहे। आपने भी पुस्तकें लिखीं हैं। आपके अनुज गौरीदत्त एवं शिवदत्त जी योग्य सामवेदी हैं। इसी वंश में श्री वत्सराजजी अत्यन्त ख्यातनाम हुवे हैं तथा पुस्तकें भी लिखी हैं।

स्व० आदित्य राम त्रिपाठी सामवेदी—आपके विनायक राम एवं सूरज राम दो पुत्र थे। सूरजराम कलकत्ता संस्कृत विद्यालय एवं गोयनका संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी में अध्यापक थे। विनायक राम त्रिपाठी—आप दरभंगा पाठशाला में अध्यापक थे। आपने अनेक शिष्य तैयार किये। आपके पुत्रों में से श्री शंकरराम भी योग्य विद्वान है आप भी परम्परागत अध्यायन कार्य कर रहे हैं। आपके पुत्र श्री शिवराम जी योग्य सामवेदी हैं। विनायक राम जी के द्वितीय पुत्र गणेश राम जी भी योग्य विद्वान् थे। इनके पुत्र भी श्री गोपालराम जी योग्य सामवेदी हैं।

स्व० सूर्यरामजी सामवेदी एक योग्य विद्वान् थे। आप के कई पुत्र थे जिनमें दलपतराम जी का नाम विशेष प्रसिद्ध है। दलपतराम जी के पुत्रों में देवशंकर और हरिशंकर। आ० हरिशंकर जी के पुत्रों में स्व० लक्ष्मीशंकर और ऋषिशंकर जी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लक्ष्मीशंकर जी बहुत बड़े विद्वान् थे और ऋषिशंकर जी ने कई श्रौतयज्ञ किये हैं। सम्प्रति ये गोयनका संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक हैं। आप योग्य सामवेदी हैं। इस वंश में अनेक अग्निहोत्री हुए हैं।

इसी प्रकार गणेशराम जी नागर, सूर्यराम जी, गोपालराम जी गोविन्द राम जी एवं सुमतराम जी के नाम सामवेदियों में प्रसिद्ध थे।

अथर्ववेद

श्री जयदेव जी आप को सांगवेद विद्यालय का आश्रय था। आप इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ अथर्ववेदी थे। अन्य-गणेश भट मार्तण्ड, वैजनाथ भट सोमण, श्रीभगवानी लाल जी नागर, जगन्नाथ घुले, जगन्नाथ शा० फाटक, डॉ० मनोहर लाल नागर एवं नारायण शा० रटाटे।

सम्प्रति काशी में विद्यमान अथर्ववेद की परम्परा के आचार्य वे० मू० रटाटे जी ही थे।

उपर्युक्त पाठशालाओं का समोसे अन्वेषणपूर्वक अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि वास्तविक कार्यद्रष्टि से ये पाठशालाएँ आज के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों से बहुत आगे बढ़ी हुई थीं। केवल अपव्यय, दिखावा एवं द्रव्यलोभ ही न था। इन्हीं पाठशालाओं ने आज तक वेद का संरक्षण किया है। ये विभिन्न कारणों के साथ २ प्रमुखतः द्रव्याभाव से लुप्त प्राय हो रही हैं। यदि इन्हें शासन की ओर से आवश्यक द्रव्य मिले तो ये पुनः सजीव होकर आधुनिक वैज्ञानिक-क्रांति युग के लिए पूर्णतः नवीन एवं महान् उपलब्धियाँ प्रदान कर सकती हैं। आज कल नामधारियों को तो हजार दो हजार सहज मिलते हैं। किन्तु काम करनेवाले वास्तविक सदाचारी सारस्वतों को प्राणरक्षणार्थं चौथाई पेट भोजन भी नहीं मिलता। यह है हमारे प्रगतिशील समाज का एक नमूना।

गत शताब्दि के प्रमुख श्रौत-यागों का संक्षिप्त परिचय

१ पं० शिरोमणि जी—नेपालवासी, ने 'अत्यग्निष्टोम' एवं साग्निचित्यसर्व-पृष्ठाप्तोर्याम' याग किए। इन यागों में लगभग २ लाख रु० खर्च किए गए थे। इस याग के संयोजक पं० गंगाधर शा० तैलंग थे, जिन्होंने यज्ञ का सम्पूर्ण भार समकालीन मूर्धन्य विद्वान् श्री वामनाचार्य जी को सौंपा था। आपने इस याग में कात्यायन सूत्रानुसारी (यजमान के सूत्र से) प्रयोग करवाया था जब कि आप स्वयं ऋग्वेदी थे।

यह याग क्रमशः चैतन्यबड बंगाली बाड़ा तथा रामकटोरा स्थित बाग बौलिया में सम्पन्न हुए थे। प्रथम याग के अध्वर्यु—आत्माराम भट वाजपेयी होता–सिताराम दीक्षित पुरोहित, उद्गाता—भिकू दीक्षित लेले तथा ब्रह्मा—नारायण भट जोशी थे। दूसरे याग में अध्वर्यु—गंगाधर भट वाजपेयी, होता—सीताराम दीक्षित पुरोहित, उद्गाता—भिकू दीक्षित लेले एवं ब्रह्मा—गणेश भट गोडसे थे।

पं० शिरोमणि जी नेपाल के एकमेव राजमान्य श्रौती थे। उनके इस याग की स्मृति विद्वानों के श्रीमुखों से बराबर सुनी जाती थी।

२ नमस्कारे—उपनाम के अग्निहोत्री जी ने काशी में कूष्माण्डा दुर्गा के तालाब के समीप रेणुका मन्दिर के प्रांगण में 'आग्निचित्य सर्वपृष्ठाप्तोर्याम' याग सम्पन्न किया। इस याग की इष्टिकाएँ कुछ वर्ष पूर्व वहाँ की दीवालों में चुनी हुई दृष्टिगोचर होती थी। कुछ दिन पूर्व सड़क निर्माण योजना के अन्तर्गत ऐतिहासिक इटें नष्ट हो गई। स्व० रटाटे जी के मुख से सुनने में आया है कि इस शताब्दि में एक पति पत्नी का यागान्त नमस्कार में ही प्राणान्त हुआ था।

३ हर दीक्षित काले—जी ने स्वकाष्ट से सम्पादन कर बंगाली बाड़े में सं० १९१४ में 'अग्निष्टोम' याग किया। आप आश्वलायन सूत्रीय शाकल शाखी थे।

४ श्री पाण्डुरंग दीक्षित भट—ने सं० १९४५ शीतलाघाट पर बुन्दीपरकोटे के प्रासाद में 'सोमयाग' किया था जिसमें अध्वर्यु—बाबू दीक्षित गोडसे तथा होता—विनायक भट गोडबोले थे।

५ श्री विनायक शास्त्री गाडविल—राजचिकित्सक (ग्वालियर) ने काशी आकर भैरव बावड़ी में (काल भैरव के समीप) सं० १९४८ में कष्ट से द्रव्य सम्पादित कर 'आप्तोर्याम' याग किया। उसमें अध्वर्यु—वे० मू० पुराणिक, होता—व्यङ्कू दीक्षित बापट एवं उद्गाता—पं० बाल शास्त्री रानाडे थे।

६ पं० बालशास्त्री रानाडे—ने राजमन्दिर स्थित स्वकीय यज्ञशाला में सं० १९५० में 'सोमयाग' किया था। इसमें अध्वर्यु—वे० मू० धारप गुरु जी, होता—वे० मू० भैय्या दीक्षित जोशी एवं प्रतिप्रस्थाता—वे० मू० भिकू दीक्षित लेले थे।

७ परम्परागत विद्वान् श्रीसदाशिव दीक्षित जावजी भट—ने सं० १९५० में सतीचौतरा स्थित 'लच्छी राम धर्मशाला में 'अग्निष्टोम याग' किया। इसमें अध्वर्यु-सोमनाथ पाठक, होता—रघुनाथ गणूरकर तथा उद्गाता—शंकर भुसारी थे।

८ श्री सोन दीक्षित काले—ने सं० १९६८ में 'सोमाधान' से ही अग्निहोत्र का प्रारम्भ किया। काशी के रहिस राजा मुंशी माधोलाल जी ने अपने भुलनपुर स्थित आम्रवाटिका में अपने खर्च से उस याग को सम्पन्न कराया था। जिसमें अध्वर्यु—सोन दीक्षित पानगाँवकर, होता—लखू नाना नाफडे, उद्गाता—बालंभट बापट तथा ब्रह्मा—काशीनाथ भट पुराणीक थे।

९ श्री घुण्डिराज दीक्षित (झोन शास्त्री) केलकर—ने काशी से बाहर अनेक सोमादि याग किए थे। आपकी यज्ञशाला रतनफाटक पर थी।

१० श्री भिका जी पंत शेष—ने श्रीमान् काशी नरेश की सहायता से रामनगर में लगभग सं० १९७४ में 'सोमयाग' किया। इसमें अध्वर्यु—भालचन्द्र दीक्षित पानगाँवकर, उद्गाता—गोपाल दीक्षित लेले, आग्निध्र—रामकृष्ण भट वझे एवं ब्रह्मा—राजाराम दीक्षित पानगाँवकर थे। श्री भिकाजी पंतशेष अति प्राचीन परम्परागत धर्मशास्त्र एवं मीमांसा इत्यादि शास्त्रों में निपुण थे। आपका घराना काशी नरेशाश्रित है।

११ ऋकशाखीय, पौराणिक प्रवचन कर्ताः - श्री सदाशिव शास्त्री सोमण ने स्वोपार्जित द्रव्य से बंगाली बाड़े में १९५८ में अग्निष्टोम याग किया। जिसमें—अध्वर्यु-श्रीभीलचन्द्र दी० पानगाँवकर, ब्रह्मा नारायण दीक्षित जोशी, होता, रामचन्द्र भट काले, उद्गाता-भैया जी सप्रे, प्रतिप्रस्थाता—श्री सीताराम दी० पुरोहित, थे।

१२ श्री श्रीयज्ञेश्वर दी०—महाबलेश्वकर जी ने बंगाली बाड़े की प्राचीन यज्ञ भूमि में १९६८ में सोमयाग किया। जिसमें—अध्वर्यु–राम दी० तोरो, प्रति-

प्रस्थाता-श्रीविठ्ठल दी० लेले, उद्गाता-श्रीरामकृष्ण दी० जोशी तथा आग्निध्र—श्रीराम भाऊ देव।

१३ श्रीपुरुषोत्तम शास्त्री, आपस्तम्ब सूत्रीय द्रविड़ देशीय— ने हरिश्चन्द्र घाट पर १२६६ वि० में मद्रप्रान्तीय श्रीशतावधानी विश्वनाथ शास्त्री श्रौती के आध्वर्यव एवं राम जी जोशी के होतृत्व में सोमयाग किया।

१४ अहिताग्नि शीतल पाण्डेय-काशीवासी सरयूपारीण ब्राह्मण कात्यायन सूत्रीय ने चैतन्य बड (बङ्गालीटोला) पर सोम याग किया। जिसमें-अध्वर्यु-विष्णु (पाठक) कावले। प्रतिप्रस्थाता गौरी शंकर बान्धवकर। ब्रह्मा—गणेश भट्ट गोडसे। यह याग १२७२ वि० में हुआ था।

१५ रघुनाथ जी अग्निहोत्री—कात्यायन सूत्रीय गौड ने १९७८ वि० अस्सी घाट पर लक्ष्मीनाथ, सप्तर्षि के आध्वर्यव एवं लक्ष्मण भट गणोरकर के औद्गातृत्व में याग सम्पन्न किया। १९८० वि०

१६ श्रीगंगाधर जी सारस्वत अग्निहोत्री—कात्यायनानुसारी ने १९८० वि० में काशी देवी के निकट सप्तसागर तलाव पर सोम किया था। जिसमें अध्वर्यु— लक्ष्मीनाथ (पाठक) सप्तर्षि, होता नारायण भट उत्तरेश्वरी। उद्गाता-बालकृष्ण दी० जावजी भट्ट।

१७ शशिभूषण अग्निहोत्री—जी ने सप्तसागर पर १९७२ वि० में अग्निष्टोम किया था। जिसमें अध्वर्यु—आत्माराम भट वाशिंकर। प्रतिप्रस्थाता-काशीनाथ जी गोडसे। उद्गाता-बाबू दीक्षित जडे होता श्री सीताराम दी० (बापू) चितले। ब्रह्मा-लक्ष्मण भट वाशिंकर। वर्तमान काल में श्रीऋषिशंकर सामवेदी जी ने भी अनेक सोमादि याग किये हैं।

अग्निहोत्रियों की सूची

श्री त्र्यम्बक शास्त्री सहस्रबुद्धे	गणेश शास्त्री सहस्र बुद्धे
रामेश्वर भट वझे	बाल दी० जोशी
तात्या शास्त्री केलकर	बालकृष्ण शास्त्री केलकर
विष्णु शास्त्री सोह	भिकु दी० लेले
बाल दी० काले	आबा दी० पुरोहित (साठ वर्ष अग्निहोत्र)
	बाल दी० तोरो
गंगाधर शास्त्री थत्थे	बाल दी० यज्ञंवारु
सुब्रह्मण्य शास्त्री द्रविड	गणेश शास्त्री वेत्तगिरि
भोलानाथ जी	प्रद्युम्नदत्त जी गोड़
श्रीधर भट पानगावकर	म० म० विनायकशास्त्री वेताल

वंशीधर शास्त्री (चातुर्मास्ययाजी)	वालशास्त्री रंगप्पा
देवनाथ शास्त्री सरयूपारिण	वायुनंदन मिश्र
मन्नू जी सारस्वत	सप्तर्षि लक्ष्मी नाथ पाठक
सिद्धनाथ शास्त्री (शाकद्वीपीय, चातुर्मास्य जी)	कृष्ण पंत शेष
	अप्पा भट रानडे
रतन दीक्षित नागर (शांखायन)	भवानीलाल जी नागर (चातुमास्ययाजी)
हरिशंकर सामवेदी (चातुर्मास्ययाजी)	वंशीधर शर्मा गौड़
श्रीनाथ जी भारस्वत अधान से १ वर्षतक	गिरिधर शर्मा सारस्वत
जोखन राम (धर्मसंघ)	गोकुल नाथ जी नायिक

कुछ अन्य अवशिष्ट मूर्धन्य श्रौतियों एवं विशिष्ट वैदिकों का परिचय—

वे० शां० सं० पं० वालशास्त्री रानडे—ज० वि० सं० पौ० कृ० दशमी १८९६। आपका नाम विश्वनाथ था, किन्तु सबके प्यारे होने से 'वाल' रखा गया। तीसरे वर्ष ही आपके पिता श्री गोविन्द भ० आपको श्रीरामकृष्ण दी० धारप गुरुजी के चरणों में समर्पण कर परलोकवासी हो गये।

उपनयन के वाद धारप गुरुजी द्वारा आपको कृष्ण यजुर्वेद की शिक्षा प्राप्त हुई। आपकी तीव्र बुद्धि होने से एक दो वार कोई विषय देखने से ही बुद्धिस्थ हो जाता था। वेद पठन के पश्चात् आप गुरुजी के साथ ब्रह्मावर्त गए। चित्रकूट में इस ब्रह्मचारी ने अत्यल्पावस्था में ही वालखिल्यसूक्त कह कर समस्त लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। पश्चात् ग्वालियर में जाकर आपने पं० वाल शास्त्री वापट जीसे छै महीनों में ही वैयाकरण सिद्धान्त कोमुदी एवं पं० कुप्पाशास्त्री से पूर्वमीमांसा पढा। पं० मोट शास्त्री से अक्षपाददर्शन पढा।

वि० सं० १९१२ में बब्बाशास्त्री की कन्या से विवाह हुआ। पश्चात् काशी में आकर आपने परम गुरु काशीनाथ शास्त्री से व्याकरणशास्त्र का रहस्य जाना।

१९२१ में आप काशीराजकीय पाठशाला में प्रिं० ग्रीफिथ महोदय के विशेष आग्रह पर साङ्ख्य शास्त्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। श्रीमान् रा० रा० दिनकर राव राजवाडे की माता के आग्रह पर आपने अंग्रेजी भाषा का भी अध्ययन किया था।

प्रिं० गफ़ महोदय के विशेष आग्रह पर आपने काशी विद्या सुधानिधि पत्र में अनेक ग्रन्थों का संशोधन किया था।

१९२४ में आप अपने गुरुदेव के साथ राजामण्डी के विशेष आग्रह पर उसकी राजधानी में पधारे एवं उसकी अपार भक्ति देख उसे गंणपति की दीक्षा देकर शिष्य स्वीकार किया। पश्चात् काशी आकर विनायक शास्त्री के आप्तोर्याम याग में औद्गात्रृत्व किया।

१९२९ गुरु के साथ तीर्थ यात्रा एवं १९३१ में स्वगुरु राजाराम शास्त्री के ब्रह्मीभूत होने पर पाठशालाध्यक्ष के विशेष आग्रह पर धर्मशास्त्राध्यापक पद सुशोभित किया। १९३४-में आपने पाठशाला छोड़ दी।

१९३७ में श्रीरामकृष्ण दी० के विशेष आग्रह पर यज्ञार्थ आपने तृतीय विवाह किया तथा माघ शु० पू० को ज्योतिष्टोम याग किया।

१९३९ में आपने एक ब्राह्मण बालक को दत्तक लिया जिसका नाम विष्णु दी० रखा गया। १९३९ के आषाढ दशमी को आपने अपनी यज्ञशाला में शिव गणेशादि मूर्तियों की स्थापना की एवं श्रावण कृ० त्रयोदशी को शिवसायुज्य प्राप्त किया।

आपके निर्मित ग्रन्थ

१—वेदान्तसूत्र भाष्य भामती टिप्पणी

२—स्वगुरुनिर्मित विधवोद्वाह शङ्कासमाधि ग्रन्थ की दोषाभासनिरास नाम की टीका। (१९२६ वि०)

३—व्याकरण महाभाष्य टिप्पणी

४—परिभाषेन्दु टिप्पणी (सारासारविवेकनामिका)

५—बृहज्ज्योतिष्टोम पद्धति।

पं० वामनाचार्य वेरुलकर—अपने अष्ट वसु तुल्य आठो भाइयों में ज्येष्ठ वामनाचार्य अपने समय के सर्वश्रेष्ठ धुरंधर श्रौती एवं शास्त्री थे। आपकी मेधा अलौकिक थी। आपके संस्कृत एवं अंग्रेजी में भी कुछ ग्रन्थ लिखने का संकेत मिलता है। आपके अनुज माधवाचार्य भी अति बुद्धिमान् थे उन्होंने अग्रज की आज्ञा से ४० दिनों में यजुर्वेद कण्ठ कर लिया था। आपके विद्या क्षेत्र के अनेक चमत्कार हैं। आप का० रा० पाठशाला में श्रौताध्यापक थे। तत्कालीन समस्त पंडितों पर आपकी धाक थी।

वैदिक सार्वभौम विश्वनाथ उर्फ बब्बू जी कोटीभास्कर :—असाधारण चतुरस्र श्रौत-स्मार्त के धुरंधर एवं ज्योतिष तथा गणित के योग्य विद्वान् थे।

वे० मू० वासुदेव गणेश भट्ट खाण्डेकर—इनके पिता कोल्हापुर महाराज के पौराणिक थे वासुदेवजी का संपूर्ण वेदाध्ययन 'चिपोकर' के पास हुआ। पिता जी के अभाव में आपका अध्ययन चालू रखना असंभव हो गया फिर भी माता ने दूसरों के यहाँ मेहनत करके धन कमा कर पुत्र को पढ़ाया। आप असाधारण ग्रन्थ-पाठी थे। खाण्डेकर जी निरभिमानी, निर्व्यसनी, व्यवहारज्ञ पुरुष थे। उस समय की वृद्ध मण्डली इन्हें 'चिक्कटपाठी' अर्थात् अक्षर-अक्षर याद करने वाले कहती थी।

वे० शा० पं० श्रीरामशास्त्री पराडकर उच्चकोटि के वैदिक श्रोती-स्मार्ती एवं सदाचार सम्पन्न विद्वान् थे।

वे० मू० भालचन्द्र दीक्षित पानगाँवकर—दीक्षित जी जटान्ती दशग्रन्थी हुए, चारों सूत्रों के श्रौत कर्म जानने वाले महापुरुष थे। आप वामनाचार्य के अन्तिम शिष्य थे। इनके सुपुत्र वे० मू० दत्तात्रय दीक्षित, पिता के नाम को चला रहे हैं।

वे० मू० सीताराम दीक्षित पुरोहित—आप संपूर्ण दशग्रन्थ अध्ययन किए हुए श्रोत स्मार्त कर्म में निपुण थे। इनके पिता अग्निहोत्रि भी थे। इनका आचरण ऋषि जैसा था। आप त्यागी शांत वृत्ति के महापुरुष थे। एक बार यज्ञ में आपने आश्विनशास्त्र से काशी के सभी वैदिकों को प्रभावित कर लिया। सभी ने उनका सम्मान किया। इनका वंश-क्रम चल रहा है।

वे० मू० गजानन भट पाटनकर–घनपाठ के साथ-साथ आप उच्चकोटि के त्यागी एवं तपस्वी थे। आपके जीवन में कुछ चमत्कारिक घटनाएँ हुई हैं। पत्नी के दिवंगत होने पर आपने तीसरी बार संपूर्ण सामग्री सहित गृह दान किया था। अन्त में आप शुष्क भिक्षा माँगकर जोवन निर्वाह करते थे। गन्धवती का बगीचा एवं मकान में आप वार्षिक भंडारा भी करते थे।

दुर्गाघाट पर प्रतिष्ठित श्री गणेश की विशाल मूर्ति आपने बालाजी घाट से लाई हुई थी। सम्भवतः यह घटना परमहंस श्री तैलङ्गस्वामी द्वारा स्वमठ में शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित करने के समय की है। वे० मू० काशीनाथ भट्ट हर्डीकर ने आप से 'घन' की मार्मिक शिक्षा प्राप्त की थी।

प्रस्तुत लेख के अन्त में 'वे० मू० रटाटे स्मृति-ग्रन्थ समिति' के संयोजक महोदय को मैं कथमपि भूल नहीं सकता जिन्होंने अपने 'काशी का सांस्कृतिक इतिहास' के लिये किये संकलन में से हमें यह सम्पूर्ण वैदिकइतिहास दिया है। इसके साथ ही मैं उन महर्षिकल्प वैदिकों का पुण्यस्मरण करता हुआ वर्तमान वैदिकों के योग्य योग-क्षेम पूर्वक दीर्घायुष्य की कामना भगवान् विश्वनाथ एवं माता अन्नपूर्णा से करता हूँ। इति शम्।